

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180992

UNIVERSAL
LIBRARY

॥ श्रीः ॥



कबीरसागर—

सप्तम खंड—

बोधसागर

भारतपथिक कबीरपंथी—

स्वामी श्रियुगलानन्दद्वारा सशोधित ।

स्वामी श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष—“श्रीवेङ्कटेश्वर” स्टीम-प्रेस,

बम्बई

मं० १९२२, सं० १८५३.



मुद्रक और प्रकाशक—

स्वमराज श्रीकृष्णदास,

मालिक—“श्रीवेङ्कटेश्वर” स्टीम प्रेस, बम्बई.

पुनर्मुद्रणादि सर्वाधिकार “श्रीवेङ्कटेश्वर” यन्त्रालयाधीन हैं।



सत्य नाम ।



श्री कबीर साहिब ।



सत्यमुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष,
मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरतियोग, संतायन,
धनी धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शननाम,
कुलपतिनाम, प्रबोध गुरुवालापीर, केवल
नाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क
नाम, पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज
नाम, उग्र नाम, दया नामकी,
वंश ब्यालीसकी दया ।

अथ श्रीबोधसागरे ।

द्वादशस्तरंगः ।

श्रीग्रन्थ निरञ्जनबोध ।

ज्ञानी वचन चौपाई ।

काल निरंजन निर्गुणराई । तीन लोक जिहिं फिरे दुहाई ॥
सात द्वीप पृथ्वी नौ खण्डा । सप्त पताल इक्कीस ब्रह्मण्डा ॥
सहज सुन्नमें कीन्ह ठिकाना । काल निरंजन सबहीने माना ॥
ब्रह्मा विष्णु और शिव देवा । सब मिल करें कालकी सेवा ॥

(६)

निरंजनबोध ।

चित्रगुप्त धर्म बरियारा । लिखनी लिखें सकल संसारा ॥
चौरासी लाख अरु चारों खानी । लिखनी लिखे सकल सब जानी ॥
पशु पक्षी जल थल विस्तारा । बन पर्वत जल जीव विचारा ॥
काल निरंजन सबपर छाया । पुर्ष नामको चिह्न मिटाया ॥
सत्तर युग ऐसेहि चलि गयेऊ । पुर्ष शब्द एक चितमें ठयेऊ ॥

पुर्ष वचन ।

तबहीं पुर्ष ज्ञानी सों कहऊ । धर्मराय अति प्रबल जो भयऊ ॥
यह तो अंश भया बरियारा । तीन लोक जीव कीन्ह अहारा ॥
ताहि मारकै देव उठाई । जग जीवनको लेव छुडाई ॥
ज्ञानी बचन-साखी ।

दोहा-करि प्रणाम ज्ञानी चले, करन हंसके काज ।

जोपै काल न मानि है, तुम्हीं पुर्षको लाज ॥

चौपाई ।

मान सरोवर ज्ञानी आई । काल कठिन तब छेकी धाई ॥
काल कठिन गर्जे बहु वारा । मस्तिक साठ सूढ बरियारा ॥
सत्तर योजन गर्जे दंता । प्रलय जो कीन्हों काट अनंता ॥
कान एक आँखें चौरासी । औ मुख आठ हाथ लिये फांसी ॥
छत्तीस नाम ताहि पुन जानी । बोलै वचन बहुत इतरानी ॥
तीन दंत पाछेको फेरी । यहि विधि तीन लोक किये जेरी ॥
एक दंत पाताल चलावा । तहां जाय वासकको खावा ॥
दूजो दन्त पृथ्वी चलि आई । देव ऋषि जग दैत्यन खाई ॥
तीजो दन्त गयो आकाशा । चन्द्र सूर्य खाये कैलासा ॥
ब्रह्मा वेद पढत तहां आये । शंकर ध्यान करत तब खाये ॥
लीन्हें खाय विष्णुको धाई । सकल खाय पुनि धूर उडाई ॥
गर्जे दन्त अग्नि सम भाई । तीन लोक खाई दुनियाई ॥

ज्ञानी वचन ।

ज्ञानी देखे दृष्टि पसारा । यातें नाहिं बचे संसारा ॥
ज्ञानी बोले शब्द बरियाई । तूँही काल खाइ दुनियाई ॥

निरञ्जन वचन—साखी ।

दोहा ।

जाहु ज्ञानी घर आपने, मानों वचन हमार ।
तीन लोक पुर्पहि दिये, स्वर्ग पताल संसार ॥

ज्ञानी वचन—साखी ।

चौपाई ।

बोले ज्ञानी शब्द अपारा । मोकहँ दीन्ह पुर्प टकसारा ॥
साखी ।

मैं जो पठयो पुर्पको, करन हंसके काज ।
कालहि मार सिंगार हों, दीन्ह सकल मोहे साज ॥

चौपाई ।

मारा काल शब्दका झारा । टूटे दन्त न करै पसारा ॥
निरञ्जन वचन ।

तबै निरञ्जन बोले बानी । कैसे हंस छुडाई ज्ञानी ॥
जगके माह कीन्ह हम बासा । पशु पक्षी जल थलमें आसा ॥
तीन सौ साठ पैठ हम लाई । तामें सकल जीव उरझाई ॥
जे दिनते हमने पैठ लगाई । दिन दिन उगझे सुझत नाहीं ॥
तापर काम क्रोध हम डारी । तृष्णा सकल जीवकहँ मारी ॥
इनमें जीव बन्धे सब झारी । कैसे हंसहि लेव उवारी ॥
तापर कीन्हो एक हम काजा । पाप पुण्य थापे हम राजा ॥
शुभ अरु अशुभ दोइ दल साजा । ऐसे अलख निरञ्जन राजा ॥

(८)

निरञ्जनबोध ।

ज्ञानी बचन ।

सत्त शब्द हम बोले बानी । बचन हमारे छूटे प्रानी ॥
गहै शब्द जब मन चित लाई । भाजै काल जीव लेव छुडाई ॥

काल बचन ।

तबै काल अस बोले बानी । सकल जीव बस हमर ज्ञानी ॥
तीन सौ साठ पैठ उझैरा । कैसे हंसन लेव उबैरा ॥
गंगा जमुना सरस्वती जानी । पुष्कर गोदावरी कुछ का मानी ॥
बद्री केदार हम का ठाऊं । जहां तहां हम तीर्थ लगाऊं ॥
मथुरा नगर उत्तम जो जानी । जगन्नाथ जस बैठे ध्यानी ॥
सेतुबन्ध पुन कीन्ह ठिकाना । पुष्कर क्षेत्र आय जम थाना ॥
हिंगलाज जिव जैहै सोई । कालका नगरकोट महँ होई ॥
गढ गिरनार दत्तको थाना । ताहि घर जम बैठ निदाना ॥
कमरू माह कमिशा देवी । नीमखार मिसरख जम लेवी ॥
नगर अजुध्या रामहिं राजा । खैहें दइत बांध सब साजा ॥
याही पैठ जग जीव भुलाई । किहि विधि हंस देव मुक्ताई ॥

ज्ञानी बचन ।

तब ज्ञानी अस बोले बानी । जमते जीव छुडावहुँ आनी ॥
पुर्प नामको कहूँ समझाई । जम राजा तब छोड पराई ॥
घाट बाट बैठे उरझैरा । हमरे शब्दते होय निबैरा ॥
मुना रे काल दुष्ट अनयाई । शब्द सग हंसा घर जाई ॥

निरंजन बचन ।

का ज्ञानी दहो अधिकारा । हमरी नहिं छूटे जम जारा ॥
पांच पचीस तीन गुण आही । यह लै सकल शरीर बनाई ॥
तामें पाप पुण्यका वासा । मन बैठे ले हमरी फांसा ॥

जहां तहां सब जग भर्मावै । ज्ञान संघ कछु रहन न पावै ॥
एक शब्दकी केतक आसा । हमरे है चौरासी फांसा ॥

ज्ञानी वचन ।

बोले ज्ञानी शब्द विचारी । छूटै चौरासी की धारी ॥
छूटै पांच पच्चीस गुन तीनों । ऐसी शब्द पुर्ण मुहि दीन्हों ॥

निश्चन वचन ।

हे ज्ञानी का कर्णें बडाई । हमते नाह छूट जिव जाई ॥
इतने जुग भये का तुम देखा । ज्ञानी हंस न एकै पेखा ॥
का तुम करो का शब्द तुम्हारा । तीन लोक प्रलय तर डारा ॥
साधु सन्त हम देखी गीती । प्रलय परं सकल सब जीती ॥
कर्म रेख बांधै सब साधा । सुर नर मुनि सकलो जग बांधा ॥

ज्ञानी वचन ।

ज्ञानी कहै काल अन्यायी । शब्द बिना तू खाय चबाई ॥
अब तुम कस खेहो बटपारा । पुर्ण शब्द दीन्हों टकसारा ॥
जगके जीवन लेउँ उबार । कर्म रेख तोरो घर न्यारा ॥
पांच पच्चीस और गुन तीनों । इतने मोर हस लेउँ छीनो ॥
पांच जनेकी मेटों आसा । पुर्ण शब्द भाषों विश्वासा ॥
शुभ अरु अशुभ का करे निबेरा । मेटों काल सकल उरझेरा ॥

निश्चन वचन ।

तिरुन काल तब बोले बानी । उरझ जीव सकल जमखानी ॥
कैसे के तुम शब्द पसारो । कौनसी विधि तुम जीव उबारो ॥
ऐसे जीव सकल हैं करनी । कैसे पहुँचें पुर्णके सरनी ॥
जगमें जीव क्रोध विकरारा । कैसे पहुँचें पुर्णके द्वारा ॥
क्रोधी जीव प्रेत अभिमानी । धरि है जन्म नर्ककी खानी ॥

लोभी होय सर्प विकाराग । माटी भखे जीव अधिकारा ॥
 लोभ जन्म मृक अवतारा । कैसे पावै मोक्ष को द्वारा ॥
 विषई विषै सब विपकी खानी । ए सब कहिये जम सहदानी ॥
 ज्ञानी करै करहु वरियाग । हमते कीन्ह सकल निवारा ॥
 जोई ज्ञान होय हमाग । काम क्रोध तें होय नियाग ॥
 तृष्णा लोभहिं देय बहाई । विषै जन्म सब दूर पराई ॥
 उनको ध्यान शब्द अधिकारी । काम क्रोध सब होय नियारी ॥
 नाम ध्यान हंसा घर जाई । कहा दूत जस करों बडाई ॥
 उनपै जम की परै न छाही । तासैं हंसा लोकहिं जाई ॥

निरञ्जन वचन ।

कहैं निरञ्जन सुन हो ज्ञानी । कथि हों ज्ञान तुम्हारी बानी ॥
 जुग्त महातम सबै बताऊँ । नाम तुम्हारे पन्थ चलाऊँ ॥
 तुम तौ एक पन्थ प्रकासा । हम दस पन्थ काल जुग फांसा ॥
 जग के जीव सबै भर्माऊँ । ज्ञानवंत को कर्म दृढाऊँ ॥
 मार जीव को करे अहारा । कथै ज्ञान तुम्हरी टकसारा ॥
 करे कर्म विषै बस भाई । चार वर्ण ले एक मिलाई ॥
 कुलको त्याग होय सों न्याग । चार वर्णको एक विचारा ॥
 ज्ञान हमाग रहै तन छाई । ते सब जीव काल ले खाई ॥
 बेखबरन की करिहैं हांसी । ते जीवन पर हमारी फांसी ॥
 फिर फिर आवै जमकी खानी । वे सब सरन हमारी ज्ञानी ॥
 कैसे पहुँचै पुर्पके सगनी । ज्ञान संधि हमहू दे बगनी ॥

ज्ञानी वचन ।

कहे ज्ञानी सुन कैल विचारा । हंस हमार होय नहिं न्याग ॥
 निसवासर रहै लौ लीना । शब्द विचार होय नहिं भीना ॥
 हंस हमार शब्द अधिकारा । पुर्प प्रताप को करे सम्हारा ॥

नाम जपै अरु सुत लगाई । मिले कर्म लागे नहिं घाई ॥
शब्द मान है शब्द सरूपा । निश्चै हंसा होय अनूपा ॥
उनको नाम भक्तिकी आसा । ताते निरख चलै विश्वासा ॥
निरञ्जन वचन ।

ज्ञानी मोर अपरबल ज्ञाना । वेद किताब भरम हम साना ॥
इन को माने सब संसाग । कलि में गंगा मुक्ती द्वारा ॥
देहीं दान जो उतरे पारा । ऐसे सुमृत कहैं विचारा ॥
यहीं विधि जग जीव भुलाई । जग मरन सब बंध बाँधाय ॥
सूतक पातक वेद विचारा । परछ वेदसे करहि सम्हारा ॥
एकादशी मुक्ति की भाई । जोग जग्य करवे अधिकाई ॥
ज्ञानी वचन ।

सुनहु काल ज्ञानकी सन्धी । छोरो जीव सकलकी फंदी ॥
जब निज बीरा हंसा पावै । जोग बरत तप सबै नसावै ॥
वेद किताबकी छोडे आसा । हंसा करे शब्द विश्वासा ॥
ताके निकट काल नहिं आवे । निज बीरा जा सुत लगावे ॥
बीरा पाय भये बटपारा । शब्द सन्ध पगखै टकसाग ॥
जोग बरत तपहूँ है छारा । अद्भुत नाम सदा रखवारा ॥
जेते हंस सरन हम आई । भक्ति करे तो मिटै धुआई ॥
निरंजन वचन ।

अब तुम ज्ञानी भली सुनाई । मेरो उरझौ सुरझौ नहिं जाई ॥
जो जीवनको भक्ति दृढै हो । शब्द भेद तुम ताहि लखै हो ॥
पावै शब्द होय अभिमानी । कैसे लोकै जैहै सो प्रानी ॥
शब्द पाय नहिं करै विचारा । कैसे पहुँचै लोक तुम्हारा ॥
शब्द पाय कर कर्म जगावै । कैसे ज्ञानी निज घर पावै ॥
शब्द पाय कर चलै न राहा । ज्ञानी कहाँ मुक्ति की थाहा ॥

ज्ञानी वचन ।

तब ज्ञानी बोले मुख बानी । सुनिये काल निरञ्जन आनी ॥
 हंसा भक्ति जो करे हमारे । राखों सदा शब्द निज धारो ॥
 काम क्रोध अहङ्कार विकार । इन को तजे है हंस हमारा ॥
 शब्द हमारे छोड़ै फन्दा । पहुँचै लोक मिटै जमदन्दा ॥
 बीरा नाम पुर्ष को सारा । निर्मल हंस होय उजियाग ॥
 आवागवन बहुरि नहिं होई । काल फांस तज न्यारा होई ॥
 पहुँचै हंस पुर्ष दबीग । अरे काल तोको तज डाग ॥

निरञ्जन वचन ।

निरञ्जन बोले गर्भ सों भाई । मोरं फंद टार को जाई ॥
 कर्म जंजीर बँधा संसार । जो पुन हम जगजाल पसारा ॥
 तीन लोक जो इन औतारा । आवागवनमें फिर फिर पाग ॥
 उपजै विनसै रहै भुलाई । देव ऋषी मुनि सकल जो खाई ॥
 सिद्ध साधु अरु बडे जो ज्ञानी । बांध बांध कर तोपि समानी ॥
 कर्म रख ते कोइ न न्यारा । तीन देव सुर असुर पसारा ॥

ज्ञानी वचन ।

कहे ज्ञानी सुन काल लबाग । करिहीं टूक जञ्जीर तुम्हारा ॥
 हंसन लैहों तुर्त उबारी । पुर्ष शब्द दीन्हों मोहे भारी ॥
 ताहि हुक्म सों मारों तोही । सब संसार तू खाया द्रोही ॥
 खण्ड खण्ड कर तोरों बाना । मारों काल करों पिसमाना ॥
 हंसन की मैं करों मुक्ताई । बहुरन जन्महि भौजल आई ॥
 पुर्ष हंस नोतम है अंशा । ते जग प्रगट कहावै वंशा ॥
 तिनके सरन हंस जो आई । कोट कर्म सब देय बहाई ॥
 स संधि लखि होवें न्यारा । चलते पावे नहिं बटपारा ॥

निरञ्जन वचन ।

मानों ज्ञानी वचन तुम्हारा । हंस ले जाव पुर्ण द्वारा ॥
चौदह काल जगत में म्हारे । घाट बाट बैठे रखवारे ॥
सुर नर मुनि आवें वहि घाटा । दशहि और जो जोवे बाटा ॥
दुर्ग जगाती बडा सिरदारा । विना जगात कोइ उतर न पारा ॥
भोजल नदी घाट नहिं थाहू । उतरन काज कहैं सब काहू ॥

ज्ञानी वचन

कहें ज्ञानी सुन काल सुभाऊ । हमरे हंस की बात सुनाऊ ॥
बखतर ज्ञान शब्द हथियारा । मार दूत को चले अगारा ॥
कोट सिद्ध तेज होय हंसा । जब परवाना आवै बंसा ॥
बंश छाय जब पावहि प्राणी । ताहि न रोकै दुर्गा रानी ॥
कहा काल तुम करो विचारा । हंस हमार उतरि है पारा ॥
सार शब्द है हंस बहोरी । ता चढि जाय कालमुख तोरी ॥
संधि न पावे ते बटपारा । हंसा पहुँचै लोक दुआरा ॥

निरंजन वचन ।

तुमको काल निरञ्जन राई । हे ज्ञानी का को बडाई ॥
पाँव पताल शीस अकाशा । सोरह योजन अत्रिप्रकाशा ॥
गजें काल महा विकरारा । सत्रह लाख लो पाँव पसारा ॥
लपकै जीभ जिम टूटै तारा । जिम बिजली चमकै अँधियारा ॥
सूँढ बढाय दंत अति बाढा । मध्य वेर ज्ञानी कह ठाढा ॥
हमरे पौरुष हम बरियारा । तुम ज्ञानी का करो हमाग ॥

ज्ञानी वचन ।

ज्ञानी पुर्ण शब्द कियो जोरा । पकड सूँढ दांत गहि पाँव ॥
मारेउ शब्द पाँव कर पेली । तोर सूँढ समुद्र गहि मेठी ॥
पुर्णरूप तबही पुन धारा । जौन सूरूप काल औतारा ॥

निरञ्जन बचन ।

भया अधीन दोड़कर जोरी । तुम सतपुरुष सरन हम तोरी ॥
 तुमसों बाल बुद्धि हम धारा । अब तुम करहु मोहिं उद्धारा ॥
 बालक कोट भांति गरियावत । मात पितामन एक नहिं आवत ॥
 तुमहीं पुर्ण दीन्ह मोहे राजू । औ पुन दीन्ह सकल मोहिं साजू ॥
 तिहिं पर हमने गाउं बसावा । लीन्हे सुन्न ठिकान बनावा ॥
 तहां हम साहब जाय रहाई । बिन आज्ञा कछु नाहिं कराई ॥
 अवलग साहेब मैं नहिं चीन्हा । सत्त पुर्ण तुम दर्शन दीन्हा ॥
 दोड़ कर जोर चरणचित लावा । धन्य भाग हम दर्शन पावा ॥
 अब मोहिं साहेब भेद बताई । पाउं चिह्न हंस पहुँचाई ॥

ज्ञानी बचन ।

सुन रे काल निरञ्जन राई । पुर्ण नाम है बीरा भाई ॥
 जो हंसा चित भक्ति समोई । ताको खूट गहै मत कोई ॥
 साखी ।

जो निज बीरा पाय है, आवै लोग हमार ।

ताको खूट गहो मत, सुनो काल बटपार ॥

निरञ्जन बचन ।

चौपाई ।

सुनो गुसाई बिनती मोरी । बीरा पाय करै कछु औरी ॥
 ज्ञान कथै अन्त चित वासा । आवागवन की राखों आसा ॥

ज्ञानी बचन ।

सुनो निरञ्जन बचन हमारा । नहीं सत वह जीव तुम्हारा ॥
 साखी ।

जा घरते जिव आइया, ताह सुध गई खोय ।

गोहराय कहीं मैं जीवसों, जो शब्द पारखी होय ॥

निरंजन बचन ।

चौपाई ।

कहै वाल तुम भली विचारी । संप देख हम कांथ उतारी ॥
उनके निकट दूत नहिं आई । साहब हंस देहों पहुँचाई ॥
साखी ।

साहिब सबको एक है, साहिबका कोइ एक ।
लाखन मध्ये को गिने, कौटिन मध्ये देख ॥
ज्ञानी बचन । साखी ।

जाहु काल घर आपने, शब्द कहौं चितलाहु ।
जो फिर सीस उठाय हो, बांध रसातल जाहु ॥
चौपाई ।

जो पुन गहो हंसकी बांही । बांध रसातल पठाऊँ तोही ॥
निरंजन बचन ।

जब तुम रूप दिखावा मोही । तब हम पुरुष चीन्हा तोही ॥
प्रथमै ज्ञानी हम नहिं जाना । बन्धु जान कीन्हा अभिमाना ॥
ज्ञानी बचन ।

धर्मदास तब सों हम आये । गढ़ रैदास मो धारा पाये ॥
प्रथमहिं सतयुग लागा भाई । नृप हरचन्द भये तहाँ राई ॥
तहाँ जाय शब्द गुहराई । जो चीन्हा सो लोक पठाई ॥
सत युग सत नाम मोरो नाऊँ । देही घर हम मनुष्य कहाऊँ ॥
धर्मदाससों बचन ।

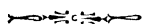
धर्मदास सुनि टेके पाई । तुव प्रताप सकल सुधि आई ॥
काल चरित्र सकल हम जाना । पुर्ण लीला सबही पहुँचाना ॥
जब आपुन आये भौमाहीं । हंस काज जो भयो अब भाई ॥
इति श्री कबीर साहिब और निरञ्जनकी गोष्ठी समाप्त ।

सत्यपुरुषाय नमः ।

अथ श्रीबोधसागरे ।

त्रयोदशस्तरंगः ।

ग्रन्थ ज्ञानबोध ।



कबीर बचन ।

साखी-सत गुरु जीव प्रबोधके, नाम लखावै सार ।

सार शब्द जो कोई गहे, सोई उतरि है पार ॥

चौपाई ।

भवसागर है अगम अपारा । तामें बूड गयो संसारा ॥
पार लगन को सब कोइ धावै । विना नाम कोइ पार न पावै ॥
यह जग जीव थाह नहिं पावै । विन सतगुरु सब गोता खावै ॥
जग जीवों से कहो गुहराई । सतगुरु केवट पार लगाई ॥
यह जग बूड गयो मँझधारा । सतगुरु भक्त भये भवपारा ॥
सत्तनाम जो करे पुकारा । जब भव जल उतरेंगे पारा ॥
सतपुरुष है अगम अपारा । ताको सब में कहों विचारा ॥
आदि अनाम ब्रह्म है न्यारा । निराधार महुँ कियो पसारा ॥
ताहि पुरुष सुमरो रे भाई । तन छोड जिवलोक सिधाई ॥
कहै कबीर नाम गह सोइ । भरम छोड भव पारहिं होई ॥

साखी ।

आदिब्रह्म हिय परखिय, छोडो मरम अजान ।

कहें कबीर जग जीवसे, गहिले पद निरवान ॥

सोरठा ।

भवसागरको पार, विना नाम उतरे नहीं ।

गहिलेव नाम अपार, कहँ कबीर सब जीवसे ॥

चौपाई ।

कहँ कबीर सुनो धर्मदासा । आदि नाम मैं कहों सब पासा ॥
यहि जगसे मैं कहा चिताई । अज्ञानी नहीं माने भाई ॥
जौन जीव को ज्ञान न होई । कहें वचन माने नहीं सोई ॥
और कहे जुलहा मति हीना । ब्रह्मा विष्णु शिवराम न चीन्हा ॥
ऐसे भक्त न देखे भाई । ब्रह्मा विष्णु शिवहिं विसराई ॥
जिन्दा हर का मरम न पाई । जुलहा भक्ति न जाने भाई ॥
ब्रह्मा विष्णु शिव जग उपजाई । इन तीनोंकी यह दुनियाई ॥
रावन छली रामकी नारी । रामचन्द्र कीन्हा रण भारी ॥
हर सीताको रावण लाये । राम लंकपति चिह्न मिटाये ॥
कहांलों वरणों वार न पारा । तीन देवका सकल पसारा ॥

साखी-रामचंद्र वर्णन कहं, त्रयलोकी हैं नाथ ।

जग जिव कहँ समझायके, सुनिये जुलहा बात ॥

चौपाई ।

ऐसे सब जग कहँ गुहराई । धर्मदास मैं तुम्हें सुनाई ॥
आदि नाम मैं भाख सुनाई । यह जग जीव न चेता भाई ॥
आदि नाम सबको दरसाया । जग जीवोंको ज्ञान सुनाया ॥
यह जुलहाको भेद न पाये । अज्ञानी क्यों रार मचाये ॥
आदि नामकी सुधि विसराये । मायामें सब जग लपटाये ॥
सच्चा साहिबको नहीं पाये । रामकृष्ण जग ध्यान लगाये ॥
ऐसे भूल गये संसारा । कैसे उतरें भव जल पारा ॥
कहें कबीर गहो निज नामा । जब पहुँचे अमरापुर गामा ॥
साहब पै जग धरे न ध्याना । तिहुं पुर काल ठगो हम जाना ॥

सब कोइ नाम गहो रे भाई । छोडो दुर्गति औ चतुराई ॥
 भ्रम जाल मनही ना लावो । सत्तपुरुषमें ध्यान लगावो ॥
 दुनियामें भ्रमो मति हीना । जम घर जायँगे नाम विहीना ॥
 यही मता हम जगहि लखाये । धर्मदास विरले जिव पाये ॥

साखी—कहैं कबीर गुन गायके, सुनो जगत यह ज्ञान ।

नीचे त्रयलोकी रहत, ऊपर सतगुरु नाम ॥

कहैं कबीर सुनो धर्मदासा । जग जीवोंकी कथा प्रकाशा ॥
 आदि नाम हम भाख सुनाया । मूरख जीव मरम नहिं पाया ॥
 राम वरन जग कीन्हा भाई । तुम सुनियो में देउँ बताई ॥
 जगत कहै जुलहा अज्ञानी । हरिहरका कछु भेद न जानी ॥
 नीच जात औ भक्त कहाई । हरि के दरस कबहुं ना पाई ॥
 वेद पुराण गीता हम जाना । हमसे नाहक करे बखाना ॥
 हमरो वेद कहे निज बाता । रामचंद्र समरथ है दाता ॥
 चार वेद ब्रह्माने ठाना । जुलहा भूल गये अभिमाना ॥
 ब्रह्मा विष्णुसे और न देवा । ऋषि मुनि करें सबै मिल सेवा ॥
 ले अवतार जीव जग आये । शालग्राममें सुत लगाये ॥
 ब्रह्मा विष्णु शिवहि जग धाये । जुलहा उलटा ज्ञान चलाय ॥
 वेद शास्त्र में हमने जाना । ब्रह्मा विष्णु महेश्वर माना ॥
 सार वेदमें देखा भाई । रजगुण तमगुण सतगुण सांई ॥
 गीता भागवत पुस्तक नाना । निशिदिन जाप करें भगवाना ॥
 आदि भवानी तीनों देवा । इनकी सब मिल साधें सेवा ॥
 ऐसा ज्ञान हमारा होई । जुलहा कहा न मानो कोई ॥

साखी—तीन देव निजके गहे, राखे देवी आस ।

सोइ जीव सुख भोग हैं, हसा करैं विलास ॥

चौपाई ।

ऐसे जग जिव ज्ञान चलाई । धर्मदास तोहि कथा सुनाई ॥
 यही जगत की उलटी रीती । नाम न जाने कालसों प्रीती ॥
 वद रीति सुनियो धर्मदासा । मैं सब भाख कहों तुम पासा ॥
 वेद पुरान में नामहि भाखा । वेद लिखा जानों तुम साखा ॥
 छऊ शास्त्र मिल झगरा कीन्हा । ब्रह्मरूप काहू नहि चीन्हा ॥
 चीन्हो है जो दूसर होई । भर्म विवाद करें सब कोई ॥
 मूल नाम ना काहू पाये । साखा पत्र गह जग लपटाये ॥
 डार पत्रको जो कोइ धरही । निश्चय जाय नरकमें परही ॥
 भूले लोग कहें हम पावा । मूल वस्तु विन जन्म गमावा ॥
 जीव अभागि मूल नहि जाने । डार पत्र में पुरुष बखाने ॥
 पढे पुराण औ वेद बखाने । सत्त पुरुष जग भेद न जाने ॥
 वेद पढे औ भेद न जाने । नाहक यह जग झगडा ठाने ॥
 वेद पुराण यह करे पुकारा । सबहीसे इक पुरुष नियारा ॥
 ताहि न यह जग जाने भाई । तीन देव में ध्यान लगाई ॥
 तीन देव की करहीं भक्ती । जिनकी कभी न होवे मुक्ती ॥
 तीन देव का अजब खयाला । देवी देव प्रपंची काला ॥
 इनमें मत भटको अज्ञानी । काल झपट पकड़ेगा प्राणी ॥
 तीन देव पुरुष गम्य ना पाई । जगके जीव सब फिरें भुलाई ॥
 जो कोइ सत्त पुरुष गये भाई । जा कहँ देख डरे जमराई ॥
 ऐसा सबसे कहियो भाई । जग जीवोंका भरम नशाई ॥
 साखी-रूप देख भरमो नहीं, कहैं कबीर बिचार ।

अलख पुरुष हृदये लखे, सोइ उतरि है पार ॥ .

चौपाई ।

जो जो वस्तु दृष्टिमें आई । सोई सबहि काल धर खाई ॥
 मूरति पूजै मुक्त न होई । नाहक जन्म अकारथ खोई ॥

यह जग करै मूर्तिकी पूजा । करै गर्व हमसे नहिं दूजा ॥
 पण्डित भक्त भये जग माहीं । पाथर पूजत जन्म गमाही ॥
 ऐसे भक्त भये अधिकारि । पीतरकी निज मूर्ति बनाई ॥
 इनसे भक्त और नहिं कोई । जिन अपनी दुरमति नहिं खोई ॥
 आदि ब्रह्मको भेद न पाये । पढ पढ पंडित जग भरमाये ॥
 अंतकाल जम धेरें आई । तब विद्या कुछ काम न आई ॥
 पाथर पूजें पढें पुगना । पढ गुण अर्थ विवेकहि ज्ञाना ॥
 ज्ञान कथे है वार न पारा । सतगुरु भक्त न जान लबारा ॥
 ऐसा मत ब्राह्मणने धारा । चले जात हैं जमके द्वारा ॥
 आदि नाम भूलो मत भाई । असुर अंश दुरमतहि लखाई ॥
 धर्मदास देखो जग रीति । सांचा छोड झूठसों प्रीति ॥

साखी ।

सार शब्द ना जान है, कहैं कबीर बखान ।

यह जग भूले बावरे, गहें न सतगुरु मान ॥

ब्राह्मण भूले बावरे, सरगुण मतके जोर ।

लख चौरासी भोगिहैं, पारब्रह्मके चोर ॥

सरगुण माहिं सार नहिं कोई । निरगुण नाम नयारा होई ॥

निरगुणसे सरगुण है भाई । सरगुणमें यह जग लपटाई ॥

रजगुण सतगुण तमगुण कहिये । सब मिटजाय ज्ञान जो लहिय ॥

तीनों गुण से सरगुण होई । चौथा पद निरगुण है सोई ॥

निरगुण नाथ निरंजन राई । निज उत्पत्ति बनाके खाई ॥

ताके परे इक नाम नयारा । सो साहब है मूल अपारा ॥

उन्हें जगत नहीं जाने भाई । काल अंश राखे भरमाई ॥
 ब्रह्मा विष्णु शिवहि जग झाँके । सत्य कबीर नाम रस छाँके ॥
 नाम अमल रस चाखे कोई । ताको जरा मरन ना होई ॥
 सतगुरु भक्ति करे जो कोई । जाति वर्ण दुरमति सब खोई ॥
 आदि नामको नित गुणगावे । भवसागर में बहुरि न आवे ॥
 आदि नामकी गहे जो आसा । सतगुरु काटे काल कि फांसा ॥
 आदिनाम है गुप्त अमोला । धर्मदास में तुमसे खोला ॥
 गुप्त मता पावे जो कोई । गेही तज बैरागी होई ॥
 आदि नाम गुप्त संसारा । जो पावै जग से हो न्यारा ॥
 धर्मदास यह जग बौराना । कोइ न जाने पद निरवाना ॥
 यहि कारन मैं कथा पसारा । जगसे कहियो नाम नयारा ॥
 यही ज्ञान जग जीव सुनाओ । सब जीवोंका भस्म नशाओ ॥
 अब मैं तुम से कहों चिताई । त्रयदेवनकी उतपति भाई ॥
 साहब कीन्हइक अजब तमाशा । सो सब कहूँ मैं तुम्हरे पासा ॥
 कछु संक्षेप कहों गुहराई । सब संशय तुम्हरे मिट जाई ॥
 भग्न गये जग वेद पुराना । आदि नामका भेद न जाना ॥
 राम राम सब जगत बखाने । आदि नाम कोइ बिरला जाने ॥
 राजाराम सब को यह जग जाने । तुम से ताको भेद बखाने ॥
 ज्ञानी सुन सो हिरदै लगाई । मूरख सुने सो गम्य न पाई ॥
 मा अष्टंगी पिता निरंजन । वे जम दारुण वंशन अंजन ॥
 पहिले कीन्ह निरंजन राई । पीछे से माया उपजाई ॥
 मायारूप देख अति शोभा । देव निरंजन तन मन लोभा ॥
 कामदेव धर्मराय सताये । देवी को तुरतइ धर खाये ॥
 पट से देवी करी पुकारी । साहब मोहे करो उबारी ॥
 टेर सुनो सतगुरु तहँ आये । अष्टंगी को बंद छुड़ाये ॥

धर्मराय को हिकमत दीन्हा । नख रेखासे भगकर लीन्हा ॥
 धर्मराय करें भोग विलासा । मायाको सु रही तब आसा ॥
 धर्मराय अरु माया साजे । तीन लोक तासे उपराजे ॥
 तीन पुत्र अष्टंगी जाये । ब्रह्मा विष्णु शिव नाम धराये ॥
 तीन देव विस्तार चलाये । इनमें यह जग धोखा खाये ॥
 पुरुष गम्य कैसे के पावै । काल निरंजन जग भरमावै ॥
 तीन लोक अपने सुत दीन्हा । सुत्र निरंजन बासा लीन्हा ॥
 अलख निरंजन सुत्र ठिकाना । ब्रह्मा विष्णु शिव भेद न जाना ॥
 तीन देव सो उनको धावें । निरंजनको वे पार न पावें ॥
 अलख निरंजन बड बटपारा । तीन लोक जिव कीन्ह अहारा ॥
 ब्रह्मा विष्णु शिव नहीं बचाये । सकल खाय पुन धूर उडाये ॥
 तिनके सुत हैं तीनै देवा । आंधर जीव करत है सेवा ॥
 रामहिं रूप धरी है माया । जिन लंकाको राय सताया ॥
 दश औतार माया ने धरिया । काल अपर्बल सबको छलिया ॥
 काल पुरुष काहू नहिं चीन्हां । काल पाय सबही गह लीन्हां ॥
 ऐसा राम सकल जग जाने । आदि ब्रह्मको ना पहिचाने ॥
 तीनों देव असुर औतारा । ताको भजे सकल संसारा ॥
 तीनों गुणका यह विस्तारा । धर्मदास में कहों पुकारा ॥

सारखी ।

गुण तीनों की भक्ति में, भूल परो संसार ।
 कहँ कबीर निज नाम विन, कैसे उतरे पार ॥

सोरठा ।

जग जिव है अज्ञान, आदि नाम नहिं जानहीं ।
 मायामें लपटान, जीव जमपुरी जावहीं ॥

चौपाई ।

ऐसा राम कबीर न जाना । धर्मदास सुनियो दै काना ॥
 सुन्न के परे पुरुष को धामा । तहँ साहब है आदि अनामा ॥
 ताहि धाम सब जीवका दाता । मैं सबसों कहता निज बाता ॥
 कहत अगोचर सब के पारा । आदि अनाम पुरुष है न्यारा ॥
 आदि ब्रह्म इक पुरुष अकेला । ताके संग नहीं कोइ चेला ॥
 ताहि न जाने यह संसारा । बिना नाम है जमके चारा ॥
 नाम बिना यह जग अरुझाना । नाम गहे सो संत सुजाना ॥
 सच्चा साहब भजु रे भाई । यहि जगसे तुम कहो चिताई ॥
 धोखा में जिव जन्म गँवाई । झूठी लगन लगाये भाई ॥
 ऐसा जग से कहु समझाई । धर्मदास जिव बोधो जाई ॥
 सज्जन जिव आवै तुम पासा । जिन्हें देव सतलोकहि बासा ॥
 ज्ञानहीनके सुन पट करमा । धर्मदास उनके ये धरमा ॥
 भरम गये वे भव जल माहीं । आदि नाम को जानत नाहीं ॥
 पीतर पाथर पूजन लागे । आदि नाम घटही से त्यागे ॥
 तीरथ बर्त करे संसारे । नेम धरम असनान सकारे ॥
 भेष बनाय विभूति रमाये । घर घर भिक्षा मांगन आये ॥
 जग जीवन को दीक्षा देही । सत्तनाम बिन पुरुषहि द्रोही ॥
 ज्ञान हीन जो गुरु कहावै । आपन भूला जगत भुलावै ॥
 काम क्रोध मद लोभ विकारा । इन्हें न त्यागै साध बिचारा ॥
 ऐसा ज्ञान चलाया भाई । सत साहबकी सुध बिसराई ॥
 यह दुनियां दो रंगी भाई । जिव गह शरण असुर की जाई ॥
 तीरथ व्रत तप पुन्य कमाई । यह जम जाल तहां ठहराई ॥
 यहै जगत ऐसे अरुझाई । नाम बिना बूडी दुनियाई ॥
 जो कोइ भक्त हमारा होई । जात बरण को त्यागै सोई ॥

(२४)

ज्ञानबोध ।

तीरथ व्रत सब देय बहाई । सतगुरु चरणसे ध्यान लगाई ॥
काम क्रोध मद लोभ न तेही । सोई पावै परम सनेही ॥
मनहीं बांध स्थिर जो करही । सो हंसा भव सागर तरही ॥
भक्त होय सतगुरु का पूरा । रहे पुरुष के नित हजूरा ॥
यही जो रीति साधकी भाई । सार युक्ति में कह गुहराई ॥

साखी-सत्तनाम निज मूल है, यह कबीर समझाय ।

दोई दीन खोजत फिरें, परम पुरुष नहिं पाय ॥

सोरठा ।

सत्तनाम गुण गाव, गहै नाम सेवा करै ।

सहज परम पद पाव, सतगुरु पद विश्वास दृढ ॥

चौपाई ।

पाथर पूजत हिंदु भुलाना । मुरदा पूज भूले तुरकाना ॥
कहें कबीर ये दोइ भुलाना । आदि पुरुष कोई नहिं जाना ॥
हिन्दू तुर्क दोई उपदेशा । नाम गहै मिट काल कलेशा ॥
भवसागर कोइ पार न पावे । या जग में सब गोता खावे ॥
भव दरयाव है अगम अपार । पुरुष भक्त उतरेंगे पार ॥
धर्मदास जग कहो समझाई । आदि नाम बिन मुक्ति न पाई ॥
जो जन भजि हैं निरभय नामा । सो हंसा पहुँचै निज धामा ॥
अजर नाम लै लोकहि जाई । दुष्ट काल तब रहे मुरझाई ॥
कर्मत्याग सब भजो एक नामा । कभी न हो भवसागर धामा ॥
ब्रह्मा ने जो राह चलाई । सो सब कहों मैं तुमसे गाई ॥
चार वरण अरु वेद बखाना । जगके जीव सबही उरझाना ॥
जात पांत ब्रह्मा कर दीन्हा । सबमें ऊँच ब्राह्मणको कीन्हा ॥
ब्रह्मा अपने मते चलाये । तीनों गुण जग नाम लखाये ॥
आदि नामकी सुध नहिं पाये । चारों जुग धोखाहि गुमाये ॥

यह ब्रह्मा की है करतूती । जगहि लखाये झूठी रीती ॥
 ब्रह्माने यह जग भरमाया । सत्त पुरुषका भेद न पाया ॥
 तिहुँपुर कालके जाल पसारा । तामें अटके सब संसारा ॥
 जात पांत कोइ भेद न चीन्हा । मिथ्या राह जगहि गह लीन्हा ॥
 ब्राह्मण प्रभुकी भक्ति न जाने । ब्रह्म रूप नाही पहचाने ॥
 सार शब्द ब्राह्मण नहिं जानें । आदि नाम शूद्रही बखानें ॥
 ब्राह्मण धरे शूद्र औतारा । करे भक्ति तिहुँ पुरसे न्यारा ॥
 धन्य शूद्र जो सेवा करई । आदि नामको हियमें धरई ॥
 जाति बरनमें भेद बताऊँ । जो कोइ समझे ताह लखाऊँ ॥
 जाति बरण सब एकहि होई । दूसर जाति नहीं है कोई ॥
 दूसर कर्म जाति है भाई । कर्म करे सो नाम धराई ॥
 जैसो कर्म करे जो भाई । तैसी ताकी जात बनाई ॥
 चार बरण सब एकहि जानो । दूसरे कर्म जो जात बखानो ॥
 जाति बरणका चिह्न न कोई । कैसे जाति दूसरी होई ॥
 दूसरि जाति केहि बिधि माने । जग अज्ञान भेद ना जाने ॥
 जाति पांति होके नहिं आये । यह जगमें झगडा फैलाये ॥
 जाति पांति नाही कोइ न्यारी । एक जाति है सब संसारी ॥
 भगके द्वार जीव सब आये । जन्म मरनमें बहुरि समाये ॥
 राह एक आये संसारा । कौन ज्ञानसे भये न्यारा ॥
 एकइ घरसे सब जिव आये । एक बाप इक माता जाये ॥
 ऊँच नीच सब सम कर जाना । ऊँच नीच सब झूठ बखाना ॥
 डार जनेऊ ब्राह्मण कहलाये । ब्राह्मणिको कहो का पहिराये ॥
 सुनत करा मुसलमानहि कीन्हा । तुर्कानीको का कर दीन्हा ॥
 ना हिन्दू ना तुर्क कहाये । ज्ञान हीन जिव धोखा खाये ॥
 जात बरन मिथ्या कर जानो । सत्त कहे निश्चय कर मानो ॥

यह जग आंधर जानो भाई । नाम न जाने ऊँच कहाई ॥
 ऊँच वही जो नामहि जानें । विना नाम सब नीच कहानें ॥
 ना कोइ वर्ण नहीं कोइ भेषा । शब्द सखी जैहै देशा ॥
 सब मिल भक्ति करो रे भाई । सतगुरु मुखसे यह फरमाई ॥
 यह सतगुरुका ज्ञान है भाई । जो कोइ लखे सो लोक सिधाई ॥
 जात वर्ण हम भाख सुनाई । धर्मदास जगसे कहो जाई ॥
 ऐसा तुम जग जान लखावो । सत्तलोकमें जिव पहुँचावो ॥

साखी—यह जग त्रयगुण भक्तमें, भूल परे धर्मदास ।
 नाम गहे विश्वास करि, जाय पुरुषके पास ॥
 मानो कही कबीरकी, सबको यहै पुकार ।
 भरम जाल सब त्यागदे, गहले नाम अपार ॥

सोरठा ।

जिन सब नाम अधार, विना नाम भव ना तरे ।
 जाय काल दुबार, सत्तपुरुष जो ना गहे ॥

चौपाई ।

कहै कबीर सुनो धर्मदासा । अब निज भेद कहों तुम पासा ॥
 अकह हतो पुनि कहो बखानी । सुर्त लगाय सुनहु मम वानी ॥
 आदि न अंत हती नहिं माया । उत्पति प्रलय हती ना काया ॥
 सोहं ब्रह्म न नहिं ओङ्कारा । काल निरञ्जन नहिं औतारा ॥
 दश औतारन चौबिस रूपा । तब नहिं होता ज्योति स्वरूपा ॥
 जब नहिं लोक दीपविस्तारा । तब नहिं सुकृत करचो संसारा ॥
 जब नहिं चंद्र सूर्य अरु तारा । तब नहिं तीनों गुण औतारा ॥
 वहां नहीं है दिन अरु राती । ऊँच न नीच जात ना पांती ॥
 नाही सुन्न पवन नहिं पानी । समरथ गति काहू नहिं जानी ॥
 आदि ब्रह्म नहिं करे पसारा । आप अकह तब हता नियारा ॥

है अनाम अक्षर के माहीं । निहअक्षर कोइ जानत नाहीं ॥
 अमर लोक जहँ अम्मर काया । अमरपुरुष जहँ आप रहाया ॥
 धर्मदास जहँ वास हमारा । काल अकाल न पावे पारा ॥
 निरभय घर वोही है भाई । रोग न व्यापे काल न खाई ॥
 समरथ घर हैं पैले पारा । सबके ऊपर है निरधारा ॥
 जिनकी गम्य काल नहिं पाई । तीन देवकी कौन चलाई ॥
 मन माया काल गति नाहीं । जीव सहाय बसे तेहिं ठाहीं ॥
 ऐसा है वह देश हमारा । जहांसे हम आये संसारा ॥
 ताकी भक्ति करे जो कोई । भवते छूटै जन्म न होई ॥
 वहां जाय जिव करे विलासा । अमरलोक जिवका नहिं नासा ॥
 कहै कबीर सुनो धर्मदासा । आदि नाम मैं कहा तुम पासा ॥
 जो कोइ माने कहा तुम्हारा । निरभय जाय पुरुषके द्वारा ॥
 मूरख सतगुरु मरम न पावे । भवसागरमें भटका खावे ॥
 सार युक्ति मैं तुम्हें लखाया । गन मुनि काहू भेद न पाया ॥
 भाषा ग्रंथ ज्ञान उपदेशा । तुम अपने घट करो प्रवेशा ॥

साखी-अस सुख है हमरे घरे, कहँ कबीर समझाय ।

सत्त शब्द जो कोइ गहे, अस्थिर बैठे जाय ॥

सोरठा ।

चौथे पद निरवःन, पूरे गुरुसे पाइये ।

कहे कबीर बखान, सत्त मान सतगुरु सही ॥

चौपाई ।

और सुनो गुरुमुखका लेखा । भक्त होय सो करै विवेका ॥
 जो कोइ पान परवाना पावै । ताके निकट काल नहिं जावै ॥
 पान परवाना पावै भाई । नाम गहे अरु भरम नशाई ॥
 तन मन से गुरु सेवा लाई । गुरुसे देव और नहिं भाई ॥
 गुरुसे कपट शिष्य जो राखे । जमराजाके मुदगर चाखे ॥

सोई हंस काल घर जावे । सत्त लोकमें बास न पावे ॥
 निरभय घर कबहुं ना पावै । कोट जन्म तिहि काल सतावै ॥
 भक्ति कर पूजत हैं जो देवा । निश्चय जाय कालकी सेवा ॥
 मनुष्य तन वे कभी न पावैं । लख चौरासी भटका खावैं ॥
 जैसे कर्म करे संसारा । तस भुगते चौरासी धारा ॥
 ना गुरू ना निगुरा पथी । कहा भयो बांचेसे ग्रंथी ॥

साखी-भक्ति करें भरमत फिरे, जग छोडे नहिं सोय ।

कहँ कबीर धर्मदास से, जिनका तरन न होय ॥

सोरठा ।

करनी देय बहाय, आदि नाम कह जानके ।

ता महँ रहै समाय, भरम जाल सब छांडदे ॥

धर्मदास वचन ।

चौपाई ।

धर्मदास तब कहै करजोरी । स्वामी सुनिये विनती मोरी ॥
 हो स्वामी मैं बूझो तोहीं । करके कृपा बताइये मोहीं ॥
 हो अविनाशी ब्रह्म कहाये । यह जगमें तुम कैसे आये ॥
 यह सब भेद बताइय स्वामी । तुम सब घटके अंतर्ग्रामी ॥
 सकल चरित तुम मोहि बतावो । मैं जाते जगजीव चितावो ॥
 यह जग तब पतियावे साई । चारों जुग तुम कहाँ रहाई ॥

साखी-सो अब मोहि बतावहु, तुम गुरु अगम अपार ।

धर्मदास विनती करे, सुनियो हो करतार ॥

कबीर वचन ।

चौपाई ।

कहै कबीर सुनो धर्मदासा । अब यह भेद कहां तुम पासा ॥
 वेद पुराण शास्त्र जग ठाना । भूले जीव न पांय ठिकाना ॥

तीन लोक जिव काल सतावै । ब्रह्मा विष्णू पार न पावै ॥
 सत्त पुरुष तब मोहिं पठावा । जीव उबारन मैं जग आवा ॥
 यहि कारण आयो संसारा । जगके जीव मैं करों उबारा ॥
 जग जीवनको नाम लखावैं । पकड हंस सतलोक पठावैं ॥
 हम हैं सत्तलोकके बासी । दास कहाय प्रकट भये कासी ॥
 ना कोइ वर्ण नहीं कोइ भेशा । सत्त पुरुषके थे हम देशा ॥
 तहँकी रचना अद्भुत भाई । सो मैंने तोहि पहिल सुनाई ॥
 और तोहि मैं कहूँ समझाई । धर्मदास सुन चित्त लगाई ॥
 धरी देह भव सागर आये । धर्मदास तोहि नाम सुनाये ॥
 कलियुगमें काशी चल आये । जब हमरे तुम दरशन पाये ॥
 तब हम नाम कबीर धराये । काल देख तब रह मुरझाये ॥
 जो कोइ हमको चीन्हा भाई । जिनका काल धोक मिटजाई ॥
 देह नहीं अरु दरसै देही । जग ना चीन्हे पुरुष विदेही ॥
 नहीं बाप ना माता जाये । अब गतिहीसे हम चल आये ॥
 हते विदेह देह धर आये । जग जीवोंके बंद छुडाये ॥
 नाम गहे तेहि लोक पठाये । बिना नाम जिव कालहि खाये ॥
 गुप्त रहे नाहीं लख पावा । सो मैं जगमें आन चितावा ॥
 चारों जुग भवसागर आये । आदि नाम जग टेर सुनाये ॥
 नाम सुने शरणागत आवैं । तिनही की हम बंद छुडावैं ॥
 जीव प्रबोध लोक पहुँचावैं । काल निरंजन देख डरावैं ॥
 चारों जुगके चारों नामा । माया रहित रहै तिहि ठामा ॥
 सतजुग सत्त सुकृत कहलाये । त्रेता नाम मुनींद्र धराये ॥
 द्वापरमें करुनामय कहाये । कलियुग नाम कबीर रखाये ॥
 आदि नाम चारों जुग टेरा । सज्जन जीव सुनतही दौरा ॥
 जो जो जीव शरणमें आये । तिनको हमने नाम सुनाये ॥

आदि नाम जो नित गुन गावें । कर विश्वास अमर पद पावें ॥
जो कोई सतगुरु नामको धावें । तिनको साहब पार लगावें ॥
पार होय जो माया त्यागे । जन्म मरनको संशय भागे ॥
माया त्याग वैरागी होई । अजर अमरको पावै सोई ॥

धर्मदास वचन ।

कह धर्मदास सुनो प्रभु राई । भक्त भाव मोहि देव बताई ॥
कबीर वचन ।

भक्तोंकी यह कथा पसारा । धर्मदास सुनियो चित्त धारा ॥
जगमें भक्त भये अधिकारी । जोगी संन्यासी लट धारी ॥
शिव गोरख अरु बहु ब्रह्मचारी । मायाने सबको ठगडारी ॥
इनको ठग जब हम पर धाई । गुप्त नाम हम ढेर सुनाई ॥
लोट गई माया बहुवारी । रहे जीत माया गइ हारी ॥
माया जाल है कठिण अपारा । तासे गन मुनि बैठे हारा ॥
माया जाल परो मत भाई । धर्मदास जग कहो गुहराई ॥
भवसागर है भक्त बहुतेरा । जिनको तुमसे कहो निबेरा ॥
मौनी भये मुखहु नहिं बोलें । भेष बनाये घर घर डोलें ॥
अंगहि भस्म गले बिच माला । मढिया बैठ सुने मतवाला ॥
धूनि रमाइ रिया सरकावें । गगन चढाय के जग भरमावें ॥
कान फाड शिर जटा बढाये । माथे चन्दन तिलक लगाये ॥
वस्त्र रँगा जोगी बन आये । सतगुरु मिले न भेष बनाये ॥
बहुत करें जप तप रे भाई । आदि नाम कोई नहिं पाई ॥
पाहन सेवें भक्त कहावै । चंदन तेल सिंदूर चढावै ॥
मानुष जन्म बडे तप होई । नाम बिना झूठे तन खोई ॥
साधु युक्ति अस चाल बताऊँ । धर्मदास म तुम्हें लखाऊँ ॥
काम क्रोध लोभ अहंकारा । सोई साधु जिन इतने मारा ॥
सूखा फीका करे अहारा । निशिदिन सुमरे नाम हमारा ॥

तत्त्व प्रकृति और बल माया । इनहिं जीत तब साधु कहाया ॥
 अन्त कपट सब देय बहाई । क्षमा गंगमें बैठ नहाई ॥
 हार जीत और अभिमाना । इनसों रहित साधुको ज्ञाना ॥
 बिहँसत बदन भजनको आगर । शीतल दया प्रेम सुखसागर ॥
 सब षट् कर्म छोड अज्ञाना । धर ले केवल निर्गुन ध्याना ॥
 धन्य धन्य जग साधु है सोई । जिन अपनी दुरमति सब खोई ॥
 ऐसी रहन साधुकी भाई । जब हंसा निरभय पद पाई ॥
 यह भक्तोंकी कथा सुनाई । निरभय पद कोइ विरले पाई ॥
 साधू लक्षण तुम्हें सुनाया । गन मुनि काहू भेद न पाया ॥
 आदि नामको नित गुन गावो । सोवत जागत ना बिसरावो ॥
 सत साहिब है सबसे न्यारा । ताहि जपे होवे भव पारा ॥
 भक्त अनेक भये जग माहीं । जोग करै पै युक्ति न पाहीं ॥
 जोगहि युक्ति नाम विन नाहीं । झूठी माया आन लगाहीं ॥
 नाम बिना सबही विधि हीना । नाम बिना है ज्ञान विहीना ॥
 नामहि गहै तेहि निहसंसा । नाम बिना बूडे सब हंसा ॥
 नाम निरक्षर सुधि जब पावा । काल अपर्बल निकट न आवा ॥
 माया त्याग भजो निज नामा । तब जिव जाय पुरुषके धामा ॥
 सबसे कहो पुकार पुकारी । कोइ न माने नर अरु नारी ॥
 सत्य पुरुषकी युक्ति न पाई । हृदय धरें नहिं सत्यको भाई ॥
 शिव गोरख सोइ पार न पावे । और जीवकी कौन चलावे ॥
 कहें कबीर सुनो मम बानी । जोग युक्ति में कहों बखानी ॥
 अब गेहीका सुनो विचारा । धर्मदास में कहों पुकारा ॥
 गेही भक्ति करे जो कोई । अब मैं तुमसे भाखों सोई ॥
 गेही भक्ति सत्त गुरुकी करई । आदि नाम निज हृदये धरई ॥
 गरु चरननसे ध्यान लगावै । अन्त कपट गुरुसे ना लागै ॥

गुरु सेवामें सब फल आवैं । गुरू विमुख नर पार न पावैं ॥
 गुरू बचन निश्चय कर मानैं । पूरे गुरुकी सेवा ठानैं ॥
 बिन विश्वास भक्ति परकाशा । प्रीति विना नहिं दुविधा नाशा ॥
 मीन मांस मद निकट न जाई । अंकुर भक्ष सो सदा कराई ॥
 गुरुसे शिष्य करै चतुराई । सेवा हीन नर्कमें जाई ॥
 परधन पाहन समझे भाई । झूठ बचन हृदये नहिं लाई ॥
 पर तिरिया माता सम माने । झूठ छोड सत्यहिको जाने ॥
 जीवपै दया करै रे भाई । बुरे कर्म सब देय बिहाई ॥
 हृदये दया प्रीति ना होई । सतगुरु सपने मिले न सोई ॥
 नाम नेह गुरु सुतै लगावे । आदि नामको पल पल ध्यावे ॥
 लेवै पान मुक्ति सहदानी । जाते काल न रोकै आनी ॥

साखी—पुरुष नाम निशि दिन गहो, शब्द करो परतीत ।

अंक नाम निज पाइया, जहो भवजल जीत ॥

सोरठा ।

भर्म तजे यम जाल, सत्तनाम लौ लावई ।

चले संतकी चाल, परमार्थ चित दे गहे ॥

चौपाई ।

गेही भक्त आरती आने । प्रति पूनोकी आरति ठाने ॥
 अमावस आरती नहिं होई । ताहि भवन रह काल समोई ॥
 पाख दिवस नहिं होवे साजू । प्रति पूनो कर आरति काजू ॥
 पूनो पान लीन्ह धर्मदासा । पावे शिष्य होय सुख वासा ॥
 छठे मास नहिं आरति भेवा । साल माह गुरु चौका सेवा ॥
 नाम कबीर जपै लौलाई । तुम्हरा नाम कहे गुहराई ॥
 ऐसी रहनि गेहि जो धरि है । गुरु प्रताप दोई निस्तरि है ॥

साखी-सो भव पार उतारि है, केवटसे कर प्रीत ।

जब सतगुरु केवट मिले, जैहै भव जल जीत ॥

सोरठा-काल जीव धर खाय, सत्तनाम जाने विना ।

बचिहै एक उपाय, सत्त कबीर कह भव तरे ॥

चौपाई ।

सत्त कबीर गुरु धर्मदासा । जीव पटै है पुरुष के पासा ॥

सत गुरु सत्त कबीरहि आही । गुप्त रहे जग चीन्हत नाही ॥

सत्तगुरु आप जगत पग धारे । दासा तन धर शब्द पुकारे ॥

काल निगंजन सब पर छाया । आदि नामका चिह्न मिटाया ॥

धर औतार असुर मंदाग । जिव जाने यह धनी हमारा ॥

एही धौग्य नर्क सब जाही । जिव अचेत छल चीन्है नाही ॥

नर्क बाम नहि छूटे भाई । जो सतगुरु को चीन्है नाही ॥

ब्रह्मा विष्णु शिवसे नहि देवा । जिन्ह वैकुण्ठवास नहि देवा ॥

ऐसा काल अपगवल भाई । जिहिके छल जग चीन्है नाई ॥

जग में जीव घात बहुतेर । कर घात अरु पाप घनेर ॥

दुष्ट अन्याई कर जिवकी घाता । खेल शिकार माने मनमाता ॥

जीव मार तन करे अहारा । जीव दया नहि कप्त गँवाग ॥

जीवघाती खो बहुत दुख पावे । जन्म जन्म तिथि काल सतावे ॥

काग देह धर विष्टा खाही । जन्म अनेक भ्रमे जग माही ॥

जीव दया विन मुक्ति न पावे । मीन मांस मद गक्षस खावे ॥

धर्मदास यह जग बोगई । दुष्ट जीवकी कथा सुनाई ॥

जीव कष्ट मोहि सहा न जाई । ज्ञान हीन नर जीव सताई ॥

यहि कारन हम जगमें आये । तीन लोक जम लूटत पये ॥

पहले लूटे विष्णु मुरारी । फिर लूटे शंकर लटधरी ॥

गन मुनि लूटे तपसी झारी । अरु लूटे सगले संसारी ॥

चन्द्र सूर्य तारागण सोई । कहै कबीर बचा नहिं कोई ॥
 देखो यही काल की रीती । धर्म न परखो रीति अनीती ॥
 ऐसा काल कठिन बरियारा । बचै सोई जो नाम पुकारा ॥
 काल रीति में तोहिं सुनाई । धर्मदास जिव बोधो जाई ॥

साखी-कहै कबीर धर्मदास सों, तुम सुनियो चितलाय ।

काल भेद ना जानहीं, मूरख रहे भुलाय ॥

सोरठा-तजो काल बरयार, जीव दया चितमें करो ।

उतरो भव जल पार, आदि नाम हृदये गहो ॥

मुनो सन्त मति धीर, कहो ज्ञान परखो हिये ।

काल अपरबल बीर, हृदये करो विवेक दृढ ॥

चौपाई ।

आदि नाम है अजर शरीर । तनमनसे गह सत्त कबीर ॥
 जोई गह धर्मदास कबीर । सो पावे सुख सागर तीर ॥
 काया बीर नाम है धीरू । सब घट रहे समायक बीरू ॥
 निजही शब्द कबीर है सारा । जाका है निज सकल पसारा ॥
 एकै रूप शब्द पुर एका । एक भाव दुतिया नहिं देखा ॥
 कैसे दुतिया कहिये सोई । दुतिया भर्म मिटै सब कोई ॥
 एकहि हम तुम एक शरीर । एक शब्द है मतिके धीर ॥
 दूसर भाव नहीं है आसा । सोई कबीर सोई धर्मदासा ॥
 एक रूप एकै अनुहारी । एकहि पुरुष सकल विस्तारी ॥
 आदि नाम में भाख सुनाओ । नाम गहै जब मुक्ती पाओ ॥
 जो कोई आदि नामको चीन्हा । तासो काल भयो बलहीना ॥

साखी-आदि नाम है मुक्तिका, जप जाने जो कोय ।

कोट जाप संसारमें, तासे मुक्ति न होय ॥

सोरठा-बूझ लेहु हो हंस, आदि नाम निज सार है ।
 अमर होय ते वंश, जिन जानो निज नामको ॥
 और मंत्र सब छार, आदि नाम निज मंत्र है ।
 बूड मरा संसार, कह कबीर निज नाम विन ॥
 चौपाई ।

कहे कबीर सुनो धर्मदास । चार गुरुकी कथा प्रकासू ॥
 चार गुरु संसारहि कीन्हां । जिनके हाथ जिवमुक्ती दीन्हां ॥
 वे हंसन को लोक पठाये । भवसागर जिव बहुरि न आये ॥
 सार शब्द साहब का न्यारा । सोई शब्द कहै गुरु उचारा ॥
 सार शब्द काल नहिं पाई । तीन देवकी कौन चलाई ॥
 शब्द संग हंसा घर जाई । काल अपबल देख डराई ॥
 सार शब्द में तुमको दीन्हा । काल तुम्हारे रहे अधीना ॥
 धर्मदास तुम मतिके धीरा । तुमको दीन्हां मुक्तिका बीरा ॥
 तुमते जीव उतरि है पारा । सौंप दीन्ह तोहि जगको भारा ॥
 सतजुग शिष सहतेजी कहाये । द्वापर चतुर्भुज नाम सुनाये ॥
 त्रेता शिष्य बंकेजी भाई । कलियुगमें धर्मदास गुसाई ॥
 चार गुरु भवसागर माहीं । धर्मदास वे जिव मुक्ताहीं ॥
 यह मैं तुमसे कहों समझाई । सब संशय तुम्हारे मिट जाई ॥
 वंश व्यालिस तुम्हारे साग । और सकल सब झूठ पसारा ॥
 इनहीं सौंप देव जिव भारा । सब जीवनको करे उबारा ॥
 धर्मदास तुम पुरुषके अंशा । अब हमको कुछ नाहीं संशा ॥
 होय पंथ भव सागर सारा । तुम्हारे वंश सब जीव उबारा ॥
 व्यालिस वंशराज लिख दीन्हां । अटल राज भवसागर कीन्हां ॥
 धर्मदास मैं कहों विचारी । यहि विधि निबहै सब संसारी ॥

साखी-नाम भेद जो जानहीं, सोई वंश हमार ।

नातर दुनिया बहुत है, बूड मरा संसार ॥

सोरठा-जैहै भव जल जीत, सार शब्द जो जानहीं ।

कठिन काल विपरीत, नातो जम ले जायगा ॥

धर्मदास वचन ।

चौपाई ।

धर्मदास तव विन्ती लाई । अथ मैं पंथ करों गुन गाई ॥

अमरलोकके हो गुरु वासी । कारन कौन आये अविनाशी ॥

मृत्युलोक आये केहि काजा । धर्मराय बड पापी राजा ॥

साहब कबीरौ वचन ।

धर्मदास तुम सुनियो भाई । जीवन काज पुरुष पठवाई ॥

सत्त पुरुष सतलोकके वासी । सकल हंसकेलिये अविनाशी ॥

पुरुषदर्श कोइ बहुत न पावै । तीन लोकमें आन रहावै ॥

तीन लोक सब पारल होई । अमरलोक सुखदायक सोई ॥

जीव काज जगमें हम आये । धर्मरायसे जीव छुड़ाये ॥

आदि अनाम अमोल अपारा । अकह अगोचर सबसे न्यारा ॥

तहांसे हम आये संसारा । पहुँचे काशी नगर मँझारा ॥

सत्त सत्त हम करें पुकारा । भवसागरके जीव उबारा ॥

नाम सुने जो मो लग धाये । जिनको हमने पार लगाये ॥

समझे सुने जो वाचा मेरी । काटूं ताकी कर्मकी बेरी ॥

भगकी राह नहीं हम आये । जन्म मरन ना बहुरि समाये ॥

त्रिगुण पांच तत्त्व हम नाहीं । इच्छारूप देह हम आहीं ॥

साखी-पांच तत्त्व गुन तीन नहीं, तांमें सकल शरीर ।

सब कोइ हृदये चीन्हियो, सतगुरु पुरुष कबीर ॥

चौपाई ।

हम जमके शिर मर्दन हारा । जो कोइ गहे सो उतरे पारा ॥

जहँ हम रहें काल तह नाहीं । हंसन हम सुखदायक आहीं ॥

जो साहब सतलोक रहाई । तिनको सब कोइ चीन्हौ भाई ॥
 नाम बिना दुखि तीनों देवा । जिनकी गन गंधर्व करैं सेवा ॥
 जगके देव सब काल अधीना । बचे सोइ जो नामको चीन्हा ॥
 हम बल एक शब्दका भाई । ताही बल हंसा मुक्ताई ॥
 जहाँ नाम काल गति नाहीं । बिना नामहै काल का छाहीं ॥
 ज्ञान हीन जाने नहिं भाई । जीव के संग मन काल गहाई ॥
 जीव के संग कालको वामा । अज्ञानी जन गहे विश्वासा ॥
 मनको कहो न कीज कोई । मन जिवको भरमाव सोई ॥
 कहे कबीर मन जात गँवागी । मनको कहो नकरो न नागी ॥
 मन को कहो जो कर है भाई । भवसागरमें दय बहाई ॥
 मन चंचल सो काल है भाई । मनको त्यागे निगमल हो जाई ॥
 मन के रूप समानी माया । सब संसार व्याप्त यह छाया ॥
 मन शिखर परमात्म जाना । यहविधि तत्त्व लेय पहिचाना ॥
 काल जाल ते तेही छूटै । काल विचार ताहि न लूटै ॥
 यही भेद धर्मन सुन लीजे । शब्द माहिं तुम वामा कीजे ॥
 काल ज्ञान संसार बखाना । काल स्वरूप नहीं पहिचाना ॥
 काल चरित्र तुमसे कहो भाई । यही भेद कोई नहिं पाई ॥
 काया माया झूठी जानो । झूठा सकल पसारा मानो ॥
 झूठो नाम साहबको नाहीं । बूझ लेय अपने दिख भाहीं ॥

माखी—काल पाय जग ऊपजी, काल पाय भव धाय ।

काल पाय सब बिनमही, काल काल कह खाय ॥

भोग्ठा—धर्मदास लेव जान, सुन्य मरुपी मनहि है ।

बचन कबीर प्रमान, रूप रेख मनको नहीं ॥

चौपाई ।

परम पुरुष नाम गहो भाई । तासे हंसा लोक मिथाई ॥
 आदि नाम है जिव रखवारा । उनको सब कोइ करो पुकारा ॥

अमर लोक साहब का न्यारा । जहाँ पुरुष का है दरबारा ॥
 आदि पुरुष जहाँ आप अकेला । धर्मराय नहीं मन के मेला ॥
 अंधकार जहाँ कबहुँ न होई । सदा जोति अमरापुर सोई ॥
 आदि पुरुष जहाँ काल न जाई । तीन देव की कौन चलाई ॥
 आदि नाम जो ध्यान लगाई । तब हंसा सत लोकहि पाई ॥
 ऐसा लोक साहबका भाई । जहाँ हंसा सुख सदा रहाई ॥
 ताहि लोकमें जो कोइ जावै । भवसागरमें बहुरि न आवै ॥
 धर्म राय से तिन का टूटै । जन्म मरण को संशय छूटै ॥
 विरले जीव निःसंशय होई । दृढ परतीत नाम गहें सोई ॥
 अगम भेद मैं तुम्हें बताया । कालनिरंजन गम्य न पाया ॥
 जगके जीव प्रबोधो भाई । पुरुष शरण जब हंसा जाई ॥
 जीवहि बोधो सब संसारा । पकड हंस फेंको पैले पारा ॥
 भवसागरसे जीव उबारो । जन्म मरण जिव संशय टारो ॥
 जीव मुक्त मैं तुमको दीन्हा । पुरुष भक्ति है नामको चीन्हा ॥
 सार युक्ति मैं तुमसे कहिया । कहन सुननको अब नहीं रहिया ॥

धर्मदास वचन—चौपाई ।

धर्मदास विनवे कर जोरी । सतगुरु सुनिये बिन्ती मोरी ॥
 निरगुन नाम लखे नहीं कोई । सरगुनमें जग भरमें सोई ॥
 अज्ञानी जिव कहा न माने । आदि नामको भेद न जाने ॥
 यह सब भेद कहो प्रभुराई । कैसे जीव प्रबोधों जाई ॥

साहिब कबीर वचन—चौपाई ।

कहें कबीर सुनो धर्मदासा । अब मैं भेद कहों तुम पासा ॥
 सज्जन जन जो होवै भाई । तुम्हरे शरण दौरके आई ॥
 तन मन तुमसे ध्यान लगाई । ताको नाम सुनइयो भाई ॥
 जब देखहु तुम दृढता ज्ञाना । तबही देव पान परवाना ॥

निरभय ज्ञान कहो जिव पासा । जो कोइ होय तुम्हारा दासा ॥
मूरखके तुम पास न जइयो । बचन हमारो हियमें गहियो ॥
मूरख ज्ञान कहो मत भाई । नाहक ज्ञान गांठको जाई ॥
दुरमति मन जाही कर भाई । तासे राखो भेद छिपाई ॥
ज्ञानी जनको नाम सुनावो । परम पुरुषसों हृदय चिन्हाओ ॥

साखी—मूरखसे ना खोलिहौ, कहें कबीर विचार ।

ज्ञानीसे न दुरायहौ, सुनो सत्त मतसार ॥

चौपाई ।

अलख नाम घट भीतर देखो । हृदये माहीं करो विवेको ॥
घट घट राम बसे हैं भाई । विना ज्ञान नहीं देत दिखाई ॥
अनुभव ज्ञान प्रगट जब होई । आतमराम चीन्ह है सोई ॥
आतमराम चीन्ह जब पावा । सकल पसारा मेट बहावा ॥
हिये नयनसे देखो भाई । जब तुमको वह राम दिखाई ॥
सब घट व्यापक सबसे न्यारा । सोई राम है जीव मँझारा ॥
अकह नाम कहा नहीं जाई । घटघट व्याप्त निरंतर आई ॥
आतमराम देख जिव पाई । आप आप सब ठांव समाई ॥
जहँ देखा तहँ आप समाना । ब्रह्म छोड दूसर नहीं आना ॥
यही मता हम तुम कह दीन्हां । दूसर कोइ न पावै चीन्हा ॥
ऐसा ज्ञान लखाओ भाई । जो नहीं मान काल तिहिं खाई ॥

साखी—अजर पुरुष एकै रहै, अजर लोक अस्थान ।

कहें कबीर सर्वांग जो, ताहि पुरुषको जान ॥

सौरठा—सुनहु ज्ञानी धर्मदास, इसो ज्ञान जब उपजै ।

एक नाम विश्वास, प्रगट ब्रह्म स्वरूप है ॥

चौपाई ।

आदि नाम जो राखे आसा । तापै परे न कालकी फाँसा ॥
आदि नाम निरअक्षर भाई । ताहि नाम ले लोकहि जाई ॥

सोहं शब्द निरअक्षर वासा । ताहि शब्द जपहै निज दासा ॥
 आदि नाम निज सार है भाई । जमराजा तेहि निकट न आई ॥
 तुम कहैं शब्द दीन्ह टकसारा । सो हंसन सों कहौ पुकारा ॥
 साग शब्दका सुमग्न करि है । सहजै अमर लोक निम्तरि है ॥
 सुमग्नका बल ऐसा होई । कर्म काट सब पलमें खोई ॥
 जाके कर्म काट सब डार । दिव्य ज्ञान सहजै उजियाग ॥
 जाकहैं दिव्य ज्ञान प्रकाशा । आपदिमें सब लोक निवासा ॥
 लोक अलोक शब्द है भाई । जिन जाना तिन मशाय जाई ॥
 तत्त्व साग सुमग्न है भाई । जातै कालकी तपन बुझाई ॥
 सुमरनते सब कर्म विनाशा । सुमग्नसों दिव्यज्ञान प्रकाशा ॥
 धर्मन सुमग्न दयो लखाई । जामों हंस सबै मुक्ताई ॥

साखी—कहे कबीर विचारके, सुमरन साग बखान ।

कहे भेद जो पावहीं, पहुँचे लोक ठिकान ॥

धर्मदास—बचन चौपाई ।

कहे धर्मदास सुनो प्रभुगई । अब जिवको संदेह मिटाई ॥
 अलख अगोचर हो प्रभु मेरा । अब जीवन को कर्ग उवेरा ॥
 आदि ब्रह्म तुम अगम अपारा । जीव काज आय करतारा ॥
 आदि नाम गुरु मोहिं लखाये । जीवनके तुम बंद छुड़ाये ॥
 अजर लोकमें जिव पहुँचाये । धन्य भाग हम दर्शन पाय ॥
 अमर वस्तु मतगुरु मोहिं दीन्हां । जीवनके सब दुख हर लीन्हां ॥
 मतगुरु चरण गहे हिय माहीं । भानु उदय पंकज बिगसाहीं ॥
 मतगुरुने मोहिं लीन्ह जगाई । आवागवन रहित घर पाई ॥
 अब सन्देह रहा कुछ नाही । शब्द तुम्हार बसो हिय माहीं ॥

सोरठा—दीन्हो मोहिं लखाय, परमात्म आत्म सकल ।

अलख नाम समुझाय, अमर वस्तु गुरु दीन्हऊ ॥

साहब कबीरऊ बचन-चौपाई ।

ज्ञानउपदेश कहा मैं भाई । ताते जीव हिय ज्ञान समाई ॥
 यही ग्रंथ मैं नाम नियाग । सूक्ष्म रीति से कहो पुकाग ॥
 आदि नाम जाने संसाग । करे भक्ति पहुँचे दग्बाग ॥
 पढ़ संत होवें मति धीरा । आदि नाम गढ़े अत्र शरीरा ॥
 आदि नाम हैं सत्त कबीरा । जो जन गढ़े छूट भव पीरा ॥
 आदि नाम पहिचाने भाई । तव हंसा निज घरही जाई ॥
 ज्ञान उपदेश कहा गुरु पूरा । नाम गढ़े चला कांड मूरा ॥
 साधु सन्तसों बिनती मोगी । भुले अक्षर लीजो जोगी ॥

इति श्रीग्रन्थज्ञानबोध समाप्त ।



सत्यपुरुषाय नमः ।

अथ श्रीबोधसागरे ।

चतुर्दशस्तरंगः ।

ग्रन्थ भवतारणबोध ।

धर्मदास वचन—चौपाई ।

धर्मदास बिनवै कर जोरी । सद्गुरु सुनिये विनती मोरी ॥
भवसागर कवनिहिं विधि छूटे । यमबन्धन कवनिहिं विधि टूटे ॥
भव दरियाका वार न पारा । ता महुँ अँटके सब संसारा ॥
सो दरियाव कौनविधि थाहूँ । परम पुरुषको कैसे पाहूँ ॥
करों भक्तिकै योग कमावों । देओं दानकै तीर्थ नहावों ॥
करों यज्ञ कै इन्द्री साधों । बाहर फिरों कै मतको बांधों ॥
जो तुम कहो सो मैं करिहों । बचन तुम्हारे हृदये धरिहों ॥
भवसागर दुख मेटो मोरा । टूटै जन्म मरनको ठौरा ॥
संशयरहित करहु मोहिं स्वामी । तुम सब घटके अंतरयामी ॥

सद्गुरु वचन ।

सुन धर्मदास मैं सत्य बताऊँ । भवसागरका भरम मिटाऊँ ॥
संशय रहित सदा तुम होऊ । तुम्हरी राह न रोकै कोऊ ॥
करो भक्ति औ बंधन काटो । जन्म मरणका संशय पाटो ॥
भाव भक्ति करिये चित लाई । सेवहु साधु तजि मान बड़ाई ॥
सुन धर्मदास भक्तिपद ऊँचा । इन सीढ़ी कोई नहिं पहुँचा ॥
योगी योगसाधना करई । भवसागरते नाहीं तरई ॥
दान देय साई फल पावे । भवसागर भुक्तनको आवे ॥
तीर्थ नहाये जो कछु होहीं । सो सब भाष सुनाऊं तोहीं ॥

जन्म लेय उज्ज्वल तन पावे । सम्पति हैं जगमें पुनि आवे ॥
 ऊंचे घरसे ले अवतारा । ब्राह्मण क्षत्रीको व्यवहारा ॥
 इन्द्री साधन है यह नीका । विना भक्ति जानों सब फीका ॥
 इन्द्री साधन है तप भारी । तामस तेज क्रोध हंकारी ॥
 क्रोध किये गति मुक्ति न पावे । भक्ति महात्म हाथ नहिं आवे ॥
 वरत एक भक्तिका पूरा । और वरत कीजै सब दूरा ॥
 और वरत सब यमकी फाँसी । भक्ति वरत मिलही अविनासी ॥
 हर अवराधनकी सुनु बाता । कहा भेद सुनिये तुम ज्ञाता ॥
 हरि हर नाम सदा शिव केरा । तासों दूर होत भव फेरा ॥
 बहुत प्रीतिसों शिवको ध्यावे । रिधि सिधि द्रव्य बहुत सुख पावे ॥
 मन जिसके निश्चय कर धरहीं । गिरि कैलासमें बासा करहीं ॥
 फिरके काल झपेटे वांहीं । डार देय भवसागर माहीं ॥
 ताते संशय छूटे नाहीं । भवसागरमें जीव जो जाहीं ॥
 शिवकी साधन है यह गती । निर्भय पद पावे नहिं रती ॥
 जाके सुमिरे योगी यती । चौरासी भरमें उत्पती ॥
 हरि हरकी यह कथा सुनाई । आगे और सुनाऊ भाई ॥

साखी—शिवसाधनकी यह गती, शिव हैं भवके रूप ।

विन समझे ये जगत सब, परे महा भ्रम कूप ॥

नरक वासमें मनु परे, ऐसी शिवकी मौज ।

कहै कबीर विचारिके, मिटै न यमकी फौज ॥

चौपाई ।

हरि हरि नाम विष्णुका होई । विष्णु विष्णु भापै सब कोई ॥
 विष्णुहिं को कर्ता बतलावे । कहो जीव कैसे फल पावे ॥
 सब घट माहीं विष्णु विराजे । खान पानमें विष्णुहि गाजे ॥
 सकल भोग विष्णु जो लेही । भोग करे जग भरमें देही ॥

हरि हरि नाम विष्णुका भाषा । शुभ औ अशुभ कर्म दोइ राषा ॥
 इनमें करें कलोल सदाई । करै भोग जीवन भरमाई ॥
 बहुत प्रीतिसों विष्णुहि ध्यावे । सो जिव विष्णुपुरीको जावे ॥
 विष्णु पुरीमें निर्भय नाही । फिर के डार देय भूमाही ॥
 हरि हरि नाम विष्णुका भाषा । हरिकी ओं सुनो अब साखा ॥

साखा—हरि नाम है विष्णुका, जिन कीन्हा सब जग ।

चौगामी भगमें मदा, मिटे न भवका फर ॥

चौपाई ।

सुनहु धर्मदास तुम हो साधू । इनको कबहूँ मत अवराधू ॥
 हरि हर ब्रह्मा को है नाऊं । गज गुण व्यापक है सब ठाऊं ॥
 जगत् कहै ब्रह्मा है कर्ता । मर्म माहिं सब वह वह मर्ता ॥
 ब्राह्मण को पूजै संसार । जीव होय नहिं भवते न्याग ॥
 पढ़ पढ़ विद्या जग भर्मावे । भक्ति पदार्थ कैसे पावे ॥
 पोथी पाठ पढ़े दिनगती । ये कवल भ्रमके उत्पाती ॥
 आप भग्न न निर्भय नाही । यह जातहै भ्रमक माही ॥
 आग्नको शिखा सब दही । ताते मिलै न परम भनेही ॥
 पाप पुण्य का लेखा कगही । विना भक्ति चौगामी फगही ॥
 यह ब्राह्मणकी है कर्तूती । ब्राह्मण पूजे होय न मुक्ती ॥

साखा—त्रिगुण भक्ति है जगतकी, निर्गुण लखै न कोय ।

मर्गुण निर्गुण दोइ मिटे, भक्ति रहित घर होय ॥

इह त्रिगुणहि कि भक्तिमें, जिन भूलो धर्मदास ।

उपर निर्गुण जानिये, जहँ योगीका वास ॥

चौपाई ।

धर्मदास सुन सन्त सुजाना । निर्गुण सों अब करें बखाना ॥
 निर्गुण नाम निरञ्जन भाई । जिन सागी उत्पत्ति बनाई ॥

निर्गुण सों जु भया ओंकारा । तासों तीनों गुण विस्तारा ॥
 निर्गुण सो मन भये प्रचण्डा । ताको वास सकल ब्रह्मण्डा ॥
 ओङ्कार मन आप निरञ्जन । नाना विधिके कीये व्यञ्जन ॥
 भाँति भाँतिके घाट सवारा । कहँ लग गिनो वार नहिं पारा ॥
 ताके अंश सकल अवतारा । राम कृष्ण तामें सरदारा ॥
 पूरण आप निरञ्जन होई । इनके फेर फार नहिं कोई ॥
 सर्गुण निर्गुणहुकी करे सेवा । भक्ति करे अरु पूजे देवा ॥
 कर आचार विचार न जानै । सौ मेर मन कभी न मानै ॥
 मन बोधे मन माहिं समावे । निज पदको कोई नहिं पावे ॥
 मन को बोध करे जो कोई । मन पहुँचावे पहुँचै सोई ॥
 जाप निरञ्जन माहिं समाई । आगे गम्य न काहू पाई ॥
 ऐसे तीन लोक सब अटके । खगे मयाने ते सब भटके ॥
 ऋषि मुनि गण गन्धर्व रु देवा । सब मिल करें निरञ्जन सेवा ॥
 साधक सिद्ध साधु जो भयेऊ । इनके आगे कोई न गयेऊ ॥
 बहुत प्रीति सो भक्ति विचारी । मिलन २ लीला अधिकारी ॥
 जाय निरञ्जन सों हो भेटा । काल रूप धर करे समेटा ॥
 वही निरञ्जनका विम्वारा । तामें उगझे सब संसारा ॥
 जिधर तिधर राखै बिलमाई । रचना अनन्त अपार बनाई ॥
 धर्मदास तुम भक्ति सनेही । इन में मत अटकावे देही ॥
 जन्म धरै छूटे नहिं भाई । ताते आप कहो गुहराई ॥
 भक्ति गुप्त जानै नहिं कोई । तुत सनेही पावै सोई ॥

साखी—इन ते भक्ती गुप्त है, सुन धर्मदास सुजान ।

भक्ति करो भगमो नहीं, सोई भक्ति प्रमाण ॥

धर्मदास—बचन चौपाई ।

हे स्वामी मैं हूँ अज्ञानी । गुप्तभक्ति मोहिं कहो बखानी ॥
 तुम यह भक्ति कहाँ सो आनी । सोइ बात मोहिं कहो बखानी ॥

तुम्हारी भक्ति कौन विधि पावे । कौन भांति की भक्ति कहावे ॥
 भक्ति कहीजे कौन प्रकारा । ताको स्वामी कहो विचारा ॥
 भक्ति २ सब जगत बखाने । भक्ति भेद कैसी विधि जाने ॥
 सो निश्चय मोहिं कहो बखानी । केहि विधि छूटै भवकी बानी ॥
 जातें सब संशय मिटजाई । तातें आप देहु समझाई ॥

साखी-भव बाणीभ्रम दुख बढै, सुख कर सत गुरु देव ।

भक्ति करो निष्कपट होय, सदा तुम्हारी सेव ॥

कबीर-वचन चौपाई ।

कहें कबीर सुनो मम बानी । भक्ति सार में कहों बखानी ॥
 आगे भक्त भये बहु भाई । करी भक्ति पै युक्ति न पाई ॥
 आदि भक्ति शिव योगी केरी । राखी गुप्त न जग में फेरी ॥
 योग करे औ भक्ति कमावै । अधर एक नामै ध्वनि लावै ॥
 सौ अक्षर है रंकारा । तासों उपैज सकल पसारा ॥
 रहै अधर ब्रह्माण्ड के माहीं । शिव जानत को जानत नाहीं ॥
 तासन मेरी भक्ति नियारी । जाको क्या जाने संसारी ॥
 ताको योगेश्वर नहिं पावे । और जीव की कौन चलावे ॥
 शिवसों अधिक न कोऊ जाने । ऐसी भांति छान बिलछाने ॥
 सोउ जीव आगे नहिं आवे । तीन लोक प्रभुता उठजावे ॥
 ठौर हमारो कैसे पावे । वहां गये बहुरिहु नहिं आवे ॥
 धर्मदास कहु बरणन अपना । ब्रह्म पुत्र सबै तिहिं चरना ॥
 सनक सनन्दन सनत्कुमारा । सनकादिक चारों अवतारा ॥
 पांच वर्ष काया नित रहई । ब्रह्म लीन कोइ पार न लरई ॥
 केते ब्रह्म होय होय गयऊ । सनकादिकसे निश्चल भयऊ ॥
 ध्यान जु करे निरञ्जन माहीं । निरञ्जनसों न्यारा कोउ नाहीं ॥
 निरञ्जन अंश हंस अवतारा । सकल सृष्टि है ताहि मैझारा ॥

यहां ताहि कोइ बिरला जानै । आगे कहो कौन विधि मानै ॥
 इनकी भक्ति करे नर सोई । हमरी भक्ति न जानत कोई ॥
 भक्त अनेक भये जग माहीं । निर्भय घर को पावत नाहीं ॥
 भक्ति कैरें तब भक्त कहावे । भगते रहित न कोई पावे ॥
 भग भुगते फिर २ भग आवे । भगते बचन न कोई पावे ॥
 चौदह लोक बसैं भगमाहीं । भगते न्यारा कोई नाहीं ॥
 न्यारी युक्ति में तुमहिं दिखाई । तहां सुत रहै साध कहाई ॥
 भुगते भग औ भक्त कहावे । फिर फिर योनी संकट आवे ॥
 मेरी भक्ति युक्तिको जाना । ताका आवागमन नशाना ॥
 भक्ति करै तब मुक्ती होई । नहिं तो बाना जाय बिगोई ॥
 भक्ति भेद बहुतक है भाई । निर्मल भक्ति न काहूँ पाई ॥
 तुम जो बूझो भक्ति प्रकारा । ता का भेद सुनो अब न्यारा ॥
 भक्ति होय नहिं नाचे गाये । भक्ति होय नहिं घंट बजाये ॥
 भक्ति होय नहिं मूरत पूजा । पाहन सेवे क्या तोहि सूझा ॥
 विमल विमल गावें अरु रोवें । क्षण इक परम जन्मको खोवें ॥
 ऐसा साहिब मानत नाहीं । ये सब काल रूप के छाहीं ॥
 मन ही गावे मन ही रोवे । मन ही जागे मन ही सोवे ॥
 जब लग भीतर लग्न न लागे । तब लग सुत न कबहूँ जागे ॥
 सत्य नाम की खबर न पाई । का कर भक्ति करो रे भाई ॥
 ठौर ठिकाना जानत नाहीं । झूठे मग्न रहैं मन माहीं ॥
 कहन सुनन को भक्त कहावें । भक्ति भेद कितहूँ नहिं पावें ॥
 लग्न प्रेम बिन भक्ति न होई । सङ्गति को पावे नहिं कोई ॥
 अपने साहिबको नहिं जाना । बिन देखे किहि कियो बखाना ॥
 ऐसे भूल परे संसारा । कैसे उतरे भव जल पारा ॥
 सत्य भक्तिको नाहीं लागा । ऐसे हैं सब जीव अभागा ॥

धर्मदास तुम हो बुधिवन्ता । भक्ति करो पावो सतसंता ॥
 एक पुरुष हैं अगम अपारा । सब घट व्यापक सबसों न्यारा ॥
 ताको नहिं जानै संसारा । ताकी भक्ति महानिजसारा ॥
 भक्ति करे जब उतरे पारा । सुत नृत्य कर सेवे सारा ॥
 यह विधि भक्तिपदारथ पावे । मुक्ति होय भवबहुरि न आवे ॥
 भवसागर ते उतरै पाग । फिरके जग नहीं ले अवतारा ॥
 ऐसी भक्ति मुक्ति की दाता । जाकी गति नहिं लखै विधाता ॥
 भक्तिही भक्ति भेद बहु भारी । यही भक्ति जगते न्यारी ॥

साखी—भक्तिपदारथ अगम फल, मुक्ति चार इहि बार ।

पावे पूरण पुरुष को, जग नहिं ले अवतार ॥

धर्मदास वचन—चौपाई ।

धर्मदास कहै सुनो गुसाईं । पूरण पुरुष वसै किहि ठाई ॥
 केही विधि सों सेवा कीजे । कैसे चरणकमल चित दीजे ॥
 कौन भांति साधों सो भक्ती । सद्गुरु मोहिं बतावो युक्ती ॥

सद्गुरु वचन ।

पहिले प्रेम अंग में आवे । साधु देख सन्मुख होय धावे ॥
 चरण धोय चरणामृत लेवे । प्रीति सहित साधूको सेवे ॥
 अन्तर छाँडि करो सेवकाई । यहि विधि भवके दुःख मिटाई ॥
 जोइ साधु प्रेम गति जाने । ता साधूकी सेवा ठाने ॥
 परम पुरुषकी भक्ति दृढ़ावे । सुत नृत्य कर तहँ पहुँचावे ॥
 तासों प्रीति करो चितलाई । छाँडो दुर्मति औ चतुराई ॥
 तबही परम पुरुषको पावे । भव तरके जग बहुरि न आवे ॥
 भवतारन संशय नहिं तोहीं । दो क्षण होय तो लागे मोही ॥
 कितहु बातकी फिकर न करना । यही भक्त निश्चय कर तरना ॥

धर्मदास वचन-चौपाई ।

धर्मदास बूझे चित लाई । सकल भेद मोहिं देहु बताई ॥
 निर्गुण रहित तुम्हारा नाउँ । कैसे भक्ति करो तेहि ठाउँ ॥
 हो स्वामी यह अचरज बाता । भक्ति करनेको दाव न घाता ॥
 सर्गुण भक्ति करै संसारा । निर्गुण योगेश्वर आधारा ॥
 इन दोनोंके पार बतावा । तुम कैसी विधि तहँ मन लावा ॥
 सत्य बात मोहिं कहो गुसाँई । केहि विधि सुत लगाउँ धाई ॥
 सगुणहि पार न पावत कोई । मेरे मन बड संशय होई ॥
 सतगुरु संशय देहु निवारी । में जाऊँ तुम्हरी बलिहारी ॥
 सर्गुण निर्गुण भेद बताऊँ । तीसर न्याग मोहिं लखाऊँ ॥
 मोरे मन पतयावत नाहीं । बहुत फिकर कीन्हा मनमाहीं ॥
 हो समर्थ तुम सतगुरु साई । दृढतासे पकड़ो मम बाहीं ॥
 सर्व युक्ति बतलावो मोई । अंतर कछू न राखो गोई ॥
 तुम सत सत्य तुम्हारी बाता । में याचक तुम समर्थ दाता ॥
 देहु मोहिं में मांगो सोई । सोइ लखाव मिटे दिल दोई ॥

साखी-सत्य सत्य समर्थ धनी, सत्य करहु परकाश ।

सत्य लोक पहुँचायहो, छूटै यम भव त्रास ॥

सदगुरु-वचन चौपाई ।

सुन धर्मन सब कहो सँदेशा । तुमको होय न भवका लेशा ॥
 भव तारण समर्थ है न्याग । ताको नहिं जानै संसारा ॥
 योगेश्वर वह गति नहिं पाई । सिद्ध साधकी कौन चलाई ॥
 भक्ती होय जगतमें भारी । ध्रुव प्रहलाद सदा अधिकारी ॥
 भक्तिमाहिं इन सभ नहिं कोई । राम कृष्ण प्रकटे नहिं गोई ॥
 दोनों जने दो व्रत साधू । यही एक इष्ट अवराधू ॥
 सतयुग भक्ति करी ध्रुवराजा । पांच वर्ष आयू तत भ्राजा ॥

निकसे गृह ते बाहर गयेऊ । नारदके उपदेशी भयेऊ ॥
छठें मास प्रकटे हरि आई । राज दिये वैकुण्ठ पठाई ॥
साठ हजार वर्ष दियो राजू । कुटुम सहित वैकुण्ठ विराजू ॥
एक दिवस जब प्रलय ह्वयआई । तहां तो पुनि ये देह गिराई ॥
पुनि सामीप्य मोक्ष कर दीन्हा । परम पुरुषगति तबहु न चीन्हा ॥
काल पुरुष राखे सब घेरी । सत्य पुरुष जग जाय न हेरी ॥
ऐसे भक्त भये जग माहीं । परम पुरुष गति पावत नाहीं ॥
भक्ति सगुण करे यहि पावे । निर्गुन माहीं नाहिं समावे ॥
जो सायुज्य होय गति पूरी । देव निरंजन जाय हजूरी ॥
ज्योति स्वरूपी ताका नाउँ । चारों मुक्त बसें तेहिं ठाउँ ॥
सालोक्यहि सामीप्य कहाई । साहूपी सायोज्य लहाई ॥
चार मुक्ति जाके घर होई । ताको पार न पाव कोई ॥
ताके परे मोर अस्थाना । कैसी भक्ति कहा कहों ज्ञाना ॥
साखी-ध्रुवकी गति तुमसों कही, सुन धर्मदास सुजान ।

अपरम्पार न पावही, पूरण पद निर्वान ॥

चौपाई ।

सुन धर्मन एक कथा नियारी । बडी भक्ति प्रह्लाद विचारी ॥
हिरनाकुश दोनों बलकारा । ताके घर लीन्हा अवतारा ॥
तपके हेतु गये बन माहीं । कोइ बातको संशय नाहीं ॥
गर्भवन्त होती तिहि नारी । इन्द्र अवाज सुनी अधिकारी ॥
नभवानीते भई अवाजा । इन्द्रासनको लेही राजा ॥
हिरनाकुश घर जन्म धराई । सो द्वागसन लेही भाई ॥
इन्द्रहि संशय उपजो भारी । गर्भ वातसों देहों ठारी ॥
ये छल इन्द्र कियो अधिकारी । अपने देशहिं लेगयो नारी ॥
तेहिं क्षण नारद आये तहँवां । इन्द्रहिको समझायो जहँवां ॥

इनको गर्भ न चीरै भाई । भक्त होय सबको सुखदाई ॥
 गर्भहि मांझ ज्ञान तेहि दीन्हा । नारद एक काम बड कीन्हा ॥
 दृढ कीन्हों तेहि गर्भके माहीं । वर्ष हजार रही तिहि ठाहीं ॥
 फिर नारी अपने पुर आई । इंद्रजीत हिरनाकुश पाई ॥
 तहां जन्म लीन्हां प्रहलादा । राम रतन रसना ले स्वादा ॥
 ऐसो रतन लगाये भारी । तासम भक्त न कोइ अधिकारी ॥
 केतो कष्ट सहै सिर अपना । तबही दुःख न व्यापे सपना ॥
 हिरनाकुशके मनमें आई । राम तेरो मोहिं देहु बताई ॥
 खम्भ फार लीन्हों अवतारा । हरि नरसिंह रूप तब धारा ॥
 हिरनाकुश नख उदर विदारा । अपना जन प्रहलाद उवारा ॥
 फिरके इन्द्रासन पहुँचाया । सर्गुण भक्ति जान सब माया ॥
 ऐसे दृढव्रत रामहि गहिया । तेऊ इन्द्रासन सुख लहिया ॥
 ऐसे भक्त न होवे भाई । ताकी गति तुमको समझाई ॥
 इन्द्रासनको राज सुनाऊं । महा भोग बडे सुख पाऊं ॥
 सत्तर दाय चौकडी भुगता । बन्धन भवके होय न मुक्ता ॥
 बडे भक्त की कथा सुनाई । पूछो और कहो तोहिं भाई ॥

साखी—इन्द्र राजसुखभोग कर, फिर भवसागरमाहिं ।

यह सर्गुणकी भक्ति है, कबहूँ निर्भय नाहिं ॥

धर्मदास वचन चौपाई ।

धर्मदास बूझे चित लाई । सतगुरु संशय देहु मिटाई ॥
 सर्गुण भक्त मुक्त नहिं होई । है वह एकहि या है दोई ॥
 यह संदेह मिटावो मेरा । तुम सतगुरु मम बंदीछोरा ॥
 की सर्गुण को निर्गुण कहिये । भिन्न भिन्न भेद मोहिं कहिये ॥
 सकल सृष्टि कहँवाते भयऊ । यही युक्ति काहू नहिं कहऊ ॥
 जो मोहिं ऊपर दया तुम्हारी । सबविधि कहिये युक्ति विचारी ॥

यह संसार कहांसे आया । को है ब्रह्म अरु को है माया ॥
 अन्तर छाँडि निरंतर भाखो । मोसन अन्तर कछू न राखो ॥
 भक्ति भेद कहो मोहे स्वामी । तुम सब घटके अन्तर्यामी ॥
 जीव काज आये जग माहीं । अब मोको कछु संशय नाहीं ॥
 सत गुरु में आधीन तुम्हारा । तुम भवसागर तारनहारा ॥

साखी--निस्संशय पद कहा है, सो मोहिं कहु समुझाय ।
 फिर भूमें भरमो नहीं, तहां रहो लवलाय ॥
 कहै सुनै सुख उपजै, जगमें आवे नाहिं ।
 काळ रहै सिर नायके, सो दीजे समझाहिं ॥

सद्गुरुवचन--चौपाई ।

कहै कबीर सुनो धर्मदासा । अब निज भेद कहो परकासा ॥
 सुरत लगाय सुनहु मम वानी । छान लेव जो जिह्वा छानी ॥
 सूक्ष्म गति अतिभारी झीनी । ताहि जगतमें बिरला चीन्ही ॥
 आदि न अन्त हती नहीं माया । उत्पति प्रलय हती ना काया ॥
 शून्य शिखर नहीं तत्त्व न मूला । कारण सूक्ष्म नहीं अस्थूला ॥
 आदि ब्रह्म नहीं ओंकारा । नहीं निरञ्जन नहीं अवतारा ॥
 दश अवतार न चौविस रूपा । तब नहीं होता ज्योतिस्वरूपा ॥
 पुण्य पाप काहू नहीं थापा । सोय ब्रह्म नहीं सोहं जापा ॥
 नहीं तब शून्य सुमेर न भारा । कूर्म न शेष धरे अवतारा ॥
 अक्षर एक न रंङ्कारा । त्रिगुण रूप है नहीं विस्तारा ॥
 शक्तियुक्ति नहीं आदिभवानी । एक होय नहीं ज्ञान अज्ञानी ॥
 शब्द न स्वांति कछू नहीं होई । कहो विचार सुनो तुम सोई ॥
 नहीं है बीज नहीं अंकूरा । आदि अमी नहीं चन्द न सूरा ॥
 धर्मदास समझ के रहना । कहों कहा कछू नहीं कहना ॥

धर्मदास वचन ।

धर्मदास कह सुनहु गुसाई । इन बातन बनवे की नाई ॥
कियेउ संशय वे इक ठौरी । तुमहू हते के है कोइ औरी ॥
सत्य सत्य अब मो पहुँ कहिये । संशय रहित सोई पद लहिये ॥
त्रयी वाचा ले पूछी साई । साधु संत तुम आप गुसाई ॥

सद्गुरु वचन ।

कहै कबीर सुनहु धर्मदासा । सकल भेद मैं किया प्रकाशा ॥
जो प्रतीति हो मन महुँ तोग । भव को मेटि शरण रहो मोरा ॥
धर्मदास छोडो सब माया । अस्थिर अमर अखंडित काया ॥
भक्ति मुक्ति उपजी है जासों । प्रेमहि लग्न लगावो तासों ॥
अब मैं तोहि लखाऊं जागा । छूटै जन्म मरणको धागा ॥
जन्ममरण है अति दुखभारी । तासों तुम को लेहुँ उबारी ॥
मैं आपा को थापों नाही । देख लेहु तुम बाहर माहीं ॥

साखी-अब तोहि भेद बताउँ मैं, निर्मल ठौर नियाग ।

सर्व परे सब ऊपरहिं, देखो वहां अकार ॥

चौपाई ।

पुरुष कहो तो पुरुष हि नाही । पुरुष हुवा आपा भू माहीं ॥
शब्द कहो तो शब्दहि नाही । शब्द होय माया के छाहीं ॥
दो विन हो नहिं अघर अवाजा । कहो कहा यह काज अकाजा ॥
अमृत सागर वार न पारा । नहिं जानों केतिक विस्तारा ॥
तामैं अघर भवन इक जागा । अक्षय नाम अक्षर इक लागा ॥
नाम कहो तो नाम न जाका । नाम धरा जो काल तिहि ताका ॥
है अनाम अक्षर के माहीं । निह अक्षर कोइ जानत नाही ॥
धर्मदास तहँ बास हमारा । काल अकाल न पावे पारा ॥
ताकी भक्ति करै जो कोई । भव ते छूटै जन्म न होई ॥

साखी-भवसागर भरमों नहीं, यही प्रताप हमार ।

निश्चय करिके मानियो, तुरत उतरिहो पार ॥

धर्मदास वचन-चौपाई ।

हे स्वामी यह अकथ कहानी । आगे सुनी न काहू जानी ॥

योगेश्वर नहिं पावें पारा । में क्या जानों जीव विचारा ॥

अचरज गुप्त तुम आयसु नाई । ताकी गम्य न काहू पाई ॥

ताकी भक्ति करैं किहि भाँती । रूप अरूप न पूजा पाती ॥

कौन युक्ति सो भक्ति करीजै । अगप ठौर कैसे कर लीजै ॥

जस जानहु तम मोहिं लै चालहु । तन मन छोड देह सुख पालहु ॥

अब कछु मोसैं होवत नाही । सुरत समाय गई तुम माहीं ॥

यहाँ वहाँ तुम समरथ दाता । मोकहँ जान परी यह बाता ॥

साखी-नाम कबीरा धरा क्यों, कारण कौन प्रमान ।

देह धरी तुम आयके, कहिये मोहि बखान ॥

चौपाई ।

सत्य कबीर नाम में जाना । सो भवको क्यों कियो पयाना ॥

ऐसे सन्त जन्म क्यों धारा । किहि कारण लीन्हा अवतारा ॥

सत्य कहो बन्धनमें नाही । निरबन्धन कैसे जग माहीं ॥

देही धरी सबहि दुख पाया । तुमही काहि न व्यापी माया ॥

दृढ हों पूछत हों गुरु बाता । रिस न करहु तुम समरथ दाता ॥

साखी-में पूछत हित आपने, जीव मुक्तिके काज ।

साधु सन्त तुम मुजन हो, अब नहिं मोकों लाज ॥

सद्गुरु वचन-चौपाई ।

धर्मदास कहो तुम सांची । मिथ्या नहीं सत्य मुख बांची ॥

तुम हो अंश हंस पति राजा । तुम्हरो मोह करन को काजा ॥

आदि अनादि समीपी मोरा । अब मैं काज कहूँगा तोरा ॥

वहां से तुम्हीं दीन पठवाई । यहां आव कर लागी काई ॥
 काल पुरुष दीन्हा भरमाई । जिन सब सृष्टि बनाके खाई ॥
 जग जीवनसों तुम हो नियारा । तुम्हरे काज लीन अवतारा ॥
 अवर काज मोर कछु नाहीं । हों निरन्तर जगके माहीं ॥
 मोहिं न व्यापे जगकी माया । कहन सुननकी है यह काया ॥
 देह नहीं अरु दरशै देही । रहो सदा जहाँ पुरुष विदेही ॥
 यह गत मोर न जानै कोई । धर्मदास तुम राखो गोई ॥
 आदि पुरुष निह अक्षर जाना । देही धर मैं प्रगटे आना ॥
 गुप्त रहे नाहीं लख पावा । सो मैं जग में आन चितावा ॥
 जुगन २ लीन्हा अवतारा । रहों निरन्तर प्रगट पसारा ॥
 सतयुग सतसुकृत कह टेंग । त्रेता नाम मुनीन्द्र हि मेरा ॥
 द्वापरमें करुना मय कहाये । कलियुग नाम कबीर रखाये ॥
 चारों युगके चारों नाऊं । माया रहित रहै तिहि ठाऊं ॥
 सो जागह पहुँचे नहिं कोई । मुर नर नाग रहै मुख गोई ॥
 सबसे कहों पुकार पुकारी । कोइ न माने नर अरु नारी ॥
 उनका दोष कछु नहिं भाई । धर्मगय राखे अट काई ॥
 गुप्त पसारा है अति भारी । ताहि न जानै नर औ नारी ॥
 शिव गोरख सोइ पार न पावें । और जीवकी कौन चलावें ॥
 नवहि नाम चौरासी सिद्धा । समझ बिना जगमें रहे अन्धा ॥
 ऋषि मुनि और असंखन भेषा । सत्य ठौर सपने नहिं देखा ॥
 जोर कहीं पतयावत नाहीं । बहुत कहौं समझा मनमाहीं ॥
 कोइ योग कोइ मदके माता । कोइ कहै हम लखें विधाता ॥
 कोइ मान दिशा मन लावे । मौन होयकर मूल गवावे ॥
 सत्य पुरुष की युक्ति न पाई । हृदय धरै नहिं सत्यको भाई ॥
 कोइ कहै हम हैं भज नीका । काज अकाज लखै नहिं जीका ॥

कोई कहै हम पढे पुराना । तत्त्व अतत्त्व सबै कछु जाना ॥
 कोई कहै विद्या आधीना । सब विचार कायामें चीन्हा ॥
 कोई कहै तप वश करि राखा । तप है मूल और सब शाखा ॥
 कोई कहै कर्म अधिकारा । कर्महिं सों उतरे भव पारा ॥
 कोई कहै भाग्य लिखा सो होई । भाग्य लिखा मेढै नहिं कोई ॥
 कहँ लग कहौ यही सब कहई । भेद हमार न कोई लहई ॥
 सब सों हार मानि मैं बैठा । ये सब जीव काल घर पैठा ॥

साखी-सोई काल करतार सोइ, भक्ति मुक्ति तेहि हाथ ।
 मेरो कह्यो नहिं आदरे, पगपंची बड साथ ॥
 मनहि प्रपंची मनहिं निगञ्जन, मन ही है ओंकार ।
 फंदा है त्रयि लोक का, कोइ न भवतें न्यार ॥
 निरंजनहि निर्वाण पद, कही तुम्हीं हितवन्त ।
 योग यती संन्यास गत, कोइ न पावत अन्त ॥
 सप्त सुर्त में रमि रहा, सुर्त शब्द तेहि हाथ ।
 ऐसी अगम अपार गति, तीन लोकके नाथ ॥
 चौपाई ।

सात शून्यका सकल पसारा । सात शून्यते कोइ न न्यारा ॥
 सात सुर्तका भेद बताऊं । तामें ज्ञान सकल समुझाऊं ॥
 उत्पति प्रलय है वाके माहीं । इन गति सों कोइ न्यारा नाहीं ॥
 प्रथमहिं अमी सुर्त निज ठौरा । तहां निरंजन कीन्हा दौरा ॥
 वहां जाय अमी लै आवै । ताहों अजर बीज उपजावै ॥
 सोइ बीज रक्त में धरहीं । यह विधिसों वह उत्पति करहीं ॥
 बीजहि जलका रंग कहाया । तासों रची सकलकी काया ॥
 दूजी मूल सुत तेहि संगी । घट २ माहिं बनावे रंगी ॥
 तीजी चमक सुर्त अंबारा । नौ नारीमें किया पसारा ॥

कोठा तहां बहत्तर करई । रोम रोम युक्ति सब धरई ॥
 चौथी शुन्य सुर्त है भाई । धर्मदास में तुम्हें लखाई ॥
 पंचम सुर्त श्रवण सँग होई । शुभ औ अशुभ सुनावे दोई ॥
 छठवें सुर्त ठिकाना भाषों । ठांव ठांव स्वाद तिहि चाखों ॥
 सो तो रहे कण्ठके द्वारा । बाणी भाषा कहै बिचारा ॥
 सप्तम सुर्त रहै तन माहीं । हृदय से कहुं न्यारे नाहीं ॥
 ब्रह्म रूप धर तहां वह बैठी । गुप्त पसार सकल घट पैठी ॥
 कोइ न जाने ताको मरमा । ज्ञानी ध्यानी सबही भरमा ॥
 सात सुर्तका कहो बिचारा । धर्मदास कछु वार नपारा ॥
 सात कमल का भेद बताऊं । कमल २ की युक्ति लखाऊं ॥
 मूल कमल है मूलही द्वारा । चार पखुरियां है विस्तारा ॥
 तहां विनायक देव विगजा । मूल द्वार कमल सृति छाजा ॥
 ता ऊपर फूल है दूजा । पट दल में ब्रह्मा की पूजा ॥
 तीजे कमल पांखुरी आठा । नाभी माहिं नाल सो गांठा ॥
 तहां वासुदेव द्वय ठाना । लक्ष्मी सहित बसें भगवाना ॥
 चौथा पद्म हृदय में होई । देव महेश बसें तहँ सोई ॥
 पौडश कमल आत्म पहिचाना । शक्ति अविद्या कहों बखाना ॥
 पष्ठ कमल पखुरी है तीनी । सरस्वति वास तहां पुनि कीन्ही ॥
 सप्तम कमल त्रिकुटिके तीग । द्वय दल माहिं बसें द्वय वीग ॥
 शशी औ सूर्य प्रकाशक घटका । यह सब खेल निरंजन नटका ॥
 अष्टम कमल ब्रह्मांडके माहीं । तहाँ निरंजन दूसर नाहीं ॥
 आठ कमलका बनो ठिकाना । धर्मदास बड भागी जाना ॥

साखी—सप्त कर्म अरु शून्य सत, सात सुर्त अस्थान ।

इक्कीसों ब्रह्माण्डमें, आप निरंजन ज्ञान ॥

राज निरंजन देखता, ठांव ठांव भरपूर ।

रसातल रु ब्रह्मांड लगि, कहं निकट कहं दूर ॥

चौपाई ।

सुन धर्मनि सब जुगत बखानी । तुम अपने मनमहँ कछु जानी ॥
 आदि अन्त सब तुम्हें लखाई । उत्पति परलयकी गति पाई ॥
 उत्पति परलय मिरजन हारा । मेरा भेद निरंजन पाग ॥
 तासे जगत न काहू माना । तातें तोहि कहां मैं ज्ञाना ॥
 जो कोइ मानै कहा हमारा । सो हंसा निज होय हमारा ॥
 अमर कगें फिर मग्न न होई । ताका खूट न पकड़ै कोई ॥
 फिरके नहिं जन्में जगमाहीं । काल अकाल ताहि दुख नाहीं ॥
 सुखसागर सुख मूल बतावा । बड भागी हंसा काहू पावा ॥
 अंकुरी जीव जू होय हमारा । भवसागर तें होय नियाग ॥
 प्रणहि प्रतीत कगे मन लाई । ताको यह पद देय लखाई ॥
 सुर्वन्त सांचा जी होई । शरण तुम्हारी गहि है सोई ॥

साखी--प्रथमहि दृढ प्रतीत है, होय भक्ति अंकुर ।

भाव प्रीति सेवा करे, देउ ज्ञान भरपूर ॥

धर्मदास वचन--चौपाई ।

हे स्वामी मैं तुम को चीन्हा । आदि अन्त भेद सब लीन्हा ॥
 तुमहीं वार तुमहिं हो पाग । तुम ही मों उपजो संसारा ॥
 तुमहीं हो निज पहिले पाग । तुमहीं सकल जगतसो न्यारा ॥
 गुप्त प्रकट मैं सब विधि जाना । तुम हीं हो तहँ पद निग्वाना ॥
 ऐसी अगम गम्य तहँ नाहीं । मैं बूझो अपने मन माहीं ॥
 पूरण कृपा करी तुम साई । मेरे मन कछु संशय नाहीं ॥
 भव तारण तुम संशय वारण । धर औ अधर दोनोंके धारण ॥
 समर्थ सब गति पायउ तोरी । अब सब संशय भागी मोरी ॥
 भयो सनाथ तव दर्शन पाये । माया छूट परम पद पाये ॥
 छूटा काल निरंजन मोरा । जन्म मरणके टूटे डोरा ॥

अब भवमें मैं बहुरि न आऊँ । तुमरे चरणकमल चित लाऊँ ॥
 येती युक्ति न काहू पाई । सो साहिब तुम मोहि लखाई ॥
 जान परी मोहि तुम्हरी बाता । तुम सम और न कोई ताता ॥
 चौरासी सों कीन्ह उबारा । बहुरि जन्म नहिं होय हमारा ॥
 समझ बूझ करिहों सिवकाई । छांडो कुलकी लाज बडाई ॥
 परदा तो रहिया क्षण माहीं । जग में कोइ काहू को नाहीं ॥
 अपने अपने स्वारथ आई । परमारथ काहू नहिं पाई ॥
 ये सब जगत निरंजन माहीं । पांच तीन सो सब उपजाहीं ॥
 पांच तत्त्व तीन गुण भारी । इन ते युक्ति दिखाई नारी ॥
 पानी पवन पृथ्वी आकाशा । सब पर तेज किया परकाशा ॥
 रज तम सत तीनों गुण जाना । ब्रह्मा विष्णु महेश बखाना ॥

साखी—पांच तीन पर अहि निरंजन, यह मायाको ठाट ।

तासों सब रचना करी, भांति भांतिकी घाट ॥

सद्गुरु वचन ।

चौपाई ।

कहें कबीर सुनो धर्मदासा । सकल भेद मैं किया प्रकासा ॥
 तुम सन अन्तर कछु न राखा । जो कछु हता सो सब कछु भाखा ॥
 अब तुम भक्ति करो दृढताई । छांडि देव कुललाज बडाई ॥
 पहिले कुल मर्यादा खोवे । भव सो रहित भक्ति तब होवे ॥
 कुल की भय सबही को भारी । कहां को पुरुष कहां की नारी ॥
 ताते यम को बन्धन कीन्हा । काज अकाज न काहू चीन्हा ॥
 ताते परदा दूर निवारो । सेवा करो सत्य मन धारो ॥
 परदा साथ काल की गांसी । यह बन्धन दुनियां सब फांसी ॥
 राजा परजा बडे कुलीना । परदे काल मर्म नहिं चीन्हा ॥
 सेवा करो छांडि मन दूजा । गिरही सेवा गिरही पूजा ॥

गुरुसों कपट करै चतुराई । सो हंसा जग भरमें आई ॥
 ताते गुरु सों परदा नाही । परदा करै रहै भव माहीं ॥
 गुरु है मात पिता गुरु सेवा । गुरु सम और नहीं कोई देवा ॥
 गुरु है खसम और नहीं दूजा । जाने अंश हंस गुरु पूजा ॥
 गुरुसों परदा कबहुँ न करिये । सर्वस ले गुरु आगे धरिये ॥

साखी-गुरुकी महिमा को कहे, शिव विरंचि नहिं जाम ।

गुरु सतगुरु को चीन्हियां, ते पहुँचे निज धाम ॥

चौपाई ।

धर्मदास सुन जुगत बताऊं । चौक आरती तोहि लखाऊं ॥
 अगर चंदनका चौका दीजै । ज्योति बराय आरती कीजै ॥
 पांच तत्त्व पांचों हैं बाती । बाहर भीतर ज्योति समाती ॥
 मानिक दीपकका उजियाग । यही बात जाती बिस्तार ॥
 श्वेतपात ले हो सुख भारी । श्वेत खटाई श्वेत सुपारी ॥
 यही विधि चौका विस्तारी । मेवा अष्ट आन तहँ धारी ॥
 मेवा कदलि कपूर मंगावो । कदली फल सोई ले आवो ॥
 पुहुप फूल सुगंध सवारो । भाँति भाँति व्यंजन अनुसारो ॥
 तनमन धन सब अर्पण कीजे । प्रेम सहित ऐसो सुख लीजे ॥
 पांच तत्त्व को भोजन कीजे । ब्रह्म आत्महि तृप्त करीजे ॥
 काया माया को सुख येही । यह सुखकरके मिलो विदेही ॥
 मिलो विदेह देह धर नाही । बूझ लेहु तुम यह मन माहीं ॥
 अब कछु कहनेको नहिं रहिया । युक्ति हती सो सब हम कहिया ॥
 भव छूटन को यही उजागर । याही विधि उतरें भवसागर ॥
 सत्य सत्य यह बात हमारी । जो कोई समझ करै नर नारी ॥
 भक्ति करै मुक्ती फल पावे । हमरे सत्य लोकमें आवे ॥
 कहै कबीर सुनहु धर्मदासा । छूटैं कर्म भर्म सब फांसा ॥

धर्मदास वचन ।

साखी--कर्म भर्म भव भा सब, दिये भागमें झोंक ।
सत गुरुके परताप सों, मिट गये सबही धोंक ॥

सद्गुरु वचन ।

साखी--यह भव तारन ग्रन्थ है, सतगुरु का उपदेश ।
जो मन माने प्रीति कर, पहुँचे हमरे देश ॥

चौपाई ।

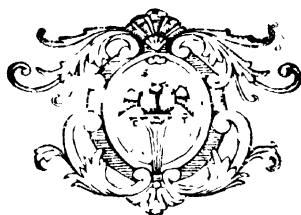
गुप्त भेद सुनहु धर्मदासा । आपहि आप भये परकासा ॥
मूल वस्तु बीज है भाई । उपजै विनशे आवै जाई ॥
निह अक्षर तें अक्षर भाया । अक्षर आदि अमी उपजाया ॥
आदि अमी किये सकल पसाग । फल रहा कछु नाहि न न्याग ॥
सोहं कला अमीके माहीं । श्वेत बीज झलके तेहि ठाहीं ॥
श्वेत बीजका मूल है माया । तासों बची सकलकी काया ॥
श्वेत बीजका सकल पसाग । तामें जीव लिया अवतार ॥
तब अकूर अमी तें भयऊ । पारस अंश फैल सब गयऊ ॥

साखी--उत्पत्ति परलय बीज गति, बीजहि आवै जाय ।

गुप्त प्रगट जो कुछहती, सो सब दिया लखाय ॥
निह अक्षर अक्षर भया, अक्षर किया प्रकाश ।
अक्षर ते मन उपजा, सुनो सन्त धर्मदास ॥
मनते माया उपजै, माया त्रिगुणहि रूप ।
पांच तत्वके मेल में, बांधे सकल स्वरूप ॥
माया ब्रह्म जी तत्व अरु, रज सत तम त्रिय देव ।
इन सब ही को छोडकर, कर निह अक्षर सेव ॥

जो चाहौ सोई मिले, मानो मोर विचार ।
 यही भेद जाने विना, कोइ न उतरे पार ॥
 भव भारी भर्मइ मिटै, संशय शूल न होय ।
 हंसनमें जो रम रहा, शरण गहै नहिं कोय ॥
 कहै कबीर धर्मदास सों, छोडो तुम संसार ।
 यह मेरी परतीत कर, तारो कुल परिवार ॥
 अंश वंश परिवार निज, नाद बिन्दु गुरु शिष्य ।
 जो चाहे निह अक्षरहिं, मुक्ति अंक सोइ लिख ॥

इति श्रीभवतारणबोध समाप्त ।



सत्यपुरुषाय नमः ।

अथ श्रीबोधसागरे ।

पञ्चदशस्तरंगः ।

श्रीग्रन्थ मुक्तिबोध ।



सद्गुरु वचन चौपाई ।

ये गुरु गम संशय कलेखो । प्रगटे ज्ञान तब वस्तु परेखो ॥
अनुभव आदि कुछ कहों बखानी । सुनियो संत गुरु गमबानी ॥
अनंत कोट जुग आगे चल गयेउ । अचल अमान ताहि पुनि रहेउ ॥
साठ कोट जुग औरों बीता । सृष्टि ग्वनाकी इच्छा कीता ॥
वह तो अचल पुरुष है अन्ता । बिन गुरुदया न भेट भगवन्ता ॥
कोट कथे कथनी नहिं पावा । जबलग गुरुगम नहीं बतावा ॥
साखी पद हैं कौटन वाणी । पुरुष एककहँ सुमरो प्राणी ॥
ज्ञान सुरत औ शब्द उचाग । यह सब दीन्ह कीन्ह संसारा ॥
अचल पुरुष को सुमरे कोई । जीवत मुक्ति संतकी होई ॥
साखी पद बोले बहु बानी । आदि नामको बिरला जानी ॥
आदि नामका भेद निनारा । बिना सतगुरु बूडे संसाग ॥
सोइ जाने जाको बड ज्ञाना । गुप्त मता तिनहीं पहिंचाना ॥

साखी--आदि नाम निज सार है, बूझि लेहु हो हंस ।

जिन जानो निज नामको, अमर भये ते वंश ॥

आदिनाम निज मंत्र है, और मंत्र सब छार ।

कहे कबीर निज नाम बिन, बूड मरा संसार ॥

चौपाई ।

आदिनाम कहँ खोजहु प्राणी । जाते होय मुक्ति सहिदानी ॥
 मूलमन्त्र मन्त्रन महि साचा । जोगहि चले सो नगरहि पहुँचा ॥
 आदि नाम जेहि खोजत भेटा । जरा मरनको संशय मेटा ॥
 आदि नाम निःअक्षर साचा । जाते जीव कालसों बाँचा ॥
 निःअक्षर धुन जहवां होई । ताहि जपे नर बिरला कोई ॥
 जाके बल आवे संसाग । ताहि जपे नर हो भव पारा ॥
 गुप्त नाम गुरु बिन नहिं पावे । पूरा गुरु हो सोई लखावे ॥
 सार मंत्र लखे जो कोई । विषय मंडवा निर्मल होई ॥
 आदि नाम मुक्तामणि साचा । जो सुमरे जिव सबसों बाँचा ॥
 आदि नाम निज सार है भाई । जमराजा तेहि निकट न आई ॥
 जब लग गुप्त जाप नहिं जाने । तबलग काल हटा नहिं माने ॥
 गुप्त जाप ध्वनि जहँवां होई । जो जन जाने बिरला कोई ॥
 गुप्त मता लै पुरुषहिं चीन्हा । जबते गुरु मोहिं दीक्षा दीन्हा ॥
 तात वरण प्रभु वरण विहीना । सकल मनुष्य नगर नहिं चीना ॥
 मूल मन्त्र जेहि पुरुषके पासा । सोई जनको खोज ले दासा ॥
 मूल मन्त्र है ओं सब साखा । कहँ कबीर मैं निजके भाखा ॥
 लिखो न जाय कहै को पाग । हैं अक्षरमें जो पावे निरवार ॥
 लिखो न जाय लिखामें नाही । गुरु बिन भेंट न होवे ताहीं ॥

नान्य प्रीति विना नहिं पाइये, जो नहिं सुत समान ।

पुरुष दीप तब पावइ, जबहीं तजै अभिमान ॥

चौपाई ।

परम पुरुषसों भेट न भयऊ । बिन गुरु दया प्रगट ना कहेऊ ॥
 धर्मदास मैं कहों समुझाई । निर्गुण भेद कोइ विरले पाई ॥
 तुम तो जीव पर बोधो जाई । जमराजा परपंच लगाई ॥

जीवहिं राखे फंद फँदाई । शब्दबान महँ मारो जाई ॥
 शब्द बान में तुम कहँ दीन्हा । जीव को देहु मुक्तिको चीन्हा ॥
 नाम पान सों ईस बचाही । शब्द सुत लै जुग बन्धाही ॥
 जुग बांधे मारे नहिं कोई । लाख जतन चतुरा जो होई ॥
 सबको मूल ताहि गहि लीजे । सुस्त सम्हार ताहि चित दीजे ॥
 डार पत्रको जो कोई धरई । बिना मूल सो जीवन तरई ॥
 गुप्त मता जो पकरे भारा । आप तरे औरन को तारा ॥
 करे विवेक ताहि ठहराई । सोइ पुरुष को पावे भाई ॥
 ताहि सन्त थापों परणाली । सदा भरो राखो नहिं खाली ॥
 जो प्राणी लीजे ठहराई । हंसराज ते करि है भाई ॥
 साखी पद बोलै सब कोई । बिन परिचये मुक्ति नहिं होई ॥
 अगम अगोचर गत व्यौहारा । गहौ ताहि उतरौ भव पारा ॥
 यहि धन राख जीवनको जाई । कर बनी जी कछु टूट न आई ॥
 यह पूजा है अगम अपारा । खर्चहु खाहु बटै विस्तारा ॥
 यह धन मिले भाग बड केरा । जब धन सोच गाहक बहुतेरा ॥

साखी ।

पूज्जी मेरे नाम है, जाते सदा निहाल ।

कहे कबीर में पुरुष बल, चोरी करे न काल ॥

चौपाई ।

जो जिव है निज नाम समाना । भये मुक्त जो लोक सिधाना ॥
 सोई हंस का तुम सत लेखो । अक्षर माहिं निरक्षर विवेको ॥

धर्मदास वचन ।

कहें धर्मदास सन्तन के दासा । गुरु मेटो मेरो जमको त्रासा ॥
 नाम निःअक्षर कहो उतपानी । आपै तैं कैसे के जानी ॥

सद्गुरुवचन ।

कहें कबीर धर्मदास सुजानी । अकह हतो ताहि कहों बखानी ॥
जब नहिं लोक दीप विस्तारा । तब नहिं सुकृति करी संसारा ॥
तब नहिं धरती अमर सुमेरू । तब नहिं हतो अमल औ कुबेरू ॥
तब नहिं सृष्टि सकल पसारा । आप अकह तब हता निनारा ॥
सकल सृष्टि उत्पन्न कह्यु नाहीं । तब सब उत्पन्न कहा सब नाहीं ॥
हते आप तब शब्दहिं स्वाला । इच्छा भये कीन्हे उजियाला ॥
इच्छा ते अनहद ध्वनि बानी । सुरत संभार सृष्टि उत्पानी ॥
सुरत भीर तेहिमाहिं समानी । इच्छा तें अनुभव उत्पानी ॥
तब ते अक्षर भेद निनारा । साखी पद कीन्हा निरवारा ॥
अकह अचल पुरुषहिं तहां आपू । नहिं दुख सुख नहीं संतापू ॥
सबका मूल ताहि सों लागी । उलट समाय सोई बड भागी ॥

साखी—कहें कबीर जो शब्द लखि, रहें सुत लौलीन ।

कबीरा सुतके समय, निश्चय लोकको चीन ॥

जाके चित अनुराग है, ज्ञान मिले नर सोय ।

बिन अनुराग न पावई, कोट करे जो कोय ॥

चौपाई ।

सत्य शब्द जो आवे हाथा । सकलो काल नवावे माथा ॥

साखी—काल खडा सिर ऊपरे, काल नजर नहिं आय ।

कहें कबीर बल आपने, जमसे जीव छुडाय ॥

चौपाई ।

नाम अमर मल्यागिर भाई । पीवत विष अमृत हो जाई ॥

निशिदिन रहे मल्यागिर संगी । विष न लगे सो तिनके अंगी ॥

साखी—काल फिरे शिर ऊपरे, हाथों धरे कमान ।

कहे कबीर गहु नामको, छोड सकल अभिमान ॥

चौपाई ।

नर नारी जो गर्भहि धरहीं । नाम विना पुन नर्कहि परहीं ॥
सुनो संत हौ शब्द रसाला । गहो ताहि जो हो उजियाला ॥
जाके जिव निज नाम समाना । ता कहँ काल अमरकर जाना ॥
बिनती कर पूछे धर्मदासू । दोइकर जोर रहें गुरु पासू ॥
सतगुरु कहैं सुनो धर्मदासा । शब्द बान लेव हमरे पासा ॥
मैंगुरु भयो शब्द मोरे हाथा । सब घटवाह नवावैं माथा ॥

साखी-भाग बडे तेहि जीवके, आय मिले मो संग ।

पुरुष मिले वहि बाँह धर, सुख विलसे एक संग ॥

चौपाई ।

जब हम रहे पुरुष के माहीं । काहिकहों कोउ दूसर नाही ॥
कहें कबीर सुनो धर्मदासा । होय निःशंक मेटा जमत्रासा ॥
मेटो भर्म होय निःशंका । काय गढ जीत बजावे डंका ॥
भयो प्रकाश गुरु भेद बतावा । जीव बोध सतलोक पठावा ॥

साखी-जमराजा बड दारुण, महा विकट ब्रह्मंड ।

ताके डंका सुनत ही, भय माने नव खंड ॥

नाम खड्ग दृढ राखहू, गहो सुर्त सम्हार ।

काल सो जीव उबारिके, पठवहु भव जलपार ॥

चौपाई ।

जबते अजर पुरुषको चीन्हा । तबसों काल भये बल हीना ॥
साखी-यहाँ वहाँ कहि जीव छुडाइये, काल रहे सिर सांध ।

सुर्त समावे चेतन चौंकी, रहे न जमके बांध ॥

आदि नाम ब्रह्महि पुरुषके, सुनत तजहि अभिमान ।

कहैं कबीर सुनो हो संतो, तजो नरककी खान ॥

(६८)

मुक्तिबोध ।

चौपाई ।

कासों कहों कहा नहिं जाई । मेरी गत मत बूझ न पाई ॥
हमहिं दास दासन के दासा । अगम अगोचर हमरे पासा ॥
यहां वहां यदि दोनों ठाऊं । सत्य कबीर कलिमें मोर नाऊं ॥
जो न हते हमहीं पुन सोई । नाम विना भूलें नर लोई ॥

साखी—कोटि जाय संसारमें, ताको मुक्त न होय ।

आदि नाम है मुक्तका, जाने बिरला कोय ॥

चौपाई ।

गुप्त जाप है अगम अपारा । ताहि जपै नर उतरै पारा ॥
मुक्ति न होवे नाचे गाये । मुक्ति न होई मृदंग बजाये ॥
मुक्ति न हो साखी पद बोले । मुक्ति न हो तीरथके डोले ॥
गुप्त जाप जाने जब कोई । कहे कबीर मुक्ति भल होई ॥
संत सुभाग गुरु दाया कीन्हा । आदि नाम हंसनको दीन्हा ॥

साखी—सोई नाम संसार में, उदित अमोल अपार ।

ताहि नाम विन मुक्ति नहिं, बूडि मुआ संसार ॥

चौपाई ।

कथा कीर्ति कहुं गदगद बानी । मुक्ति न होथ विना सहिदानी ॥
केता कहो कहा नहिं जाई । नाम गहेसों पुरुष मिल जाई ॥
सार शब्द परवाना देहै । जीव जुडाय कालसों लेहै ॥

साखी—फनपति बीरन देखके, राखे बनहि सकोर ।

बीरा देखे नामके, काल रहे मुख मोर ॥

चौपाई ।

सोहं शब्द निरक्षर वासा । ताहि भिन्न कर जपिये दासा ॥

साखी—जो जन हैहै जौहरी, सो धन लैहै गाय ।

सोहं जाप सब जगतए, मिथ्या जन्म गमाय ॥

साखी पद संसारमें, कहन सुननको कीन ।
चीठी आई पुरुषकी, सो धन लैहो चीन ॥
जो जन हैहै जौहरी, सो कहनेका जोग ।
बिन सतगुरु ना पावई, भटक मुए सब लोग ॥

चौपाई ।

जब वानी मुख बाहर आवा । भाग बडे तिनही पुनि पावा ॥
कोट जतनकै जीव समुझावा । बिना भागते नाम न पावा ॥
गुरु गम लहें संतके पासा । सो नहिं परें कालके फाँसा ॥
जो कहैं पुरुष अपन कर जाना । सोई भक्त अंतर्गत ठाना ॥

धर्मदास वचन ।

धरमदास कहें कर जोरी । बन्दी छोड बिनती सुन मोरी ॥
तब साहब अस बोले बाती । लेउँ छुडाय राखों निज साती ॥
तुमको दीन्हैं भक्ति अपारा । नाम जपो तुम अजर हमारा ॥
जो ना बूझे कहा न करई । मुक्ति न होय नरकमें परई ॥
श्रवण माह कह दीन्हें भाई । तौ न विवेकै आ बैठाई ॥
नाम सुने मोर मो कहैं पावें । जाम जलिम तेहि देख डरावें ॥

साखी—सब कहैं नाम सुनावहू, जो आवे तुव पास ।

शब्द हमारा सत कहत हों, दृढ मानो विश्वास ॥

चौपाई ।

जो जन गृह तजि ले बैरागी । जहां जाय तहाँ संगे लागी ॥

साखी—मूल के कान जो लागे, रहे रहन ठहराय ।

वह साधू भर्मे नहीं, सो नहिं नरकै जाय ॥

कहै कबीर तज भर्म पिटारी, नान्ह होयके पीव ।

तज अभिमान गहो गुरुचरण, जमसों बाचे जीव ॥

चौपाई ।

आदि नाम निःअक्षर नीरा । तौन नाम लै जीवहि तीरा ॥
 आदि नाम लै पंच चलाई । सोई संत प्रमान कहाई ॥
 थापो ताहि देऊँ ठकुराई । जबलग रहही मोर दोहाई ॥
 गहि मोर नाम मोहि माहि समावे । और नामते मोहिं न पावे ॥
 सोई नाम संतन सहिदानी । आप मिले लेवे पहिचानी ॥
 उदितनाम निरभय उजियारा । ताहि नाम सों जीव उबारा ॥
 कहें धर्मदास सतगुरु सुन लीजे । अगम पंथ को कैसे दीजे ॥

सद्गुरु वचन ।

कहै कबीर पूछेउ भल आई । अगम पंथगम कहौं बुझाई ॥
 अगम पन्थ है विकट विकाग । तासों कबहुँ न होवे पारा ॥
 शीतल शब्द लेहिं सहिदानी । उतर जाहि कछु शंक न मानी ॥
 जाय मिलै पुरुषहिं के पाहीं । जेतिक जीव तुम्हारे बाहीं ॥

धर्मदास वचन ।

अनहद शब्द बहुत विस्तारा । कैसे पैहैं भेद तुम्हारा ॥

सद्गुरु वचन ।

आदि नाम पुन तहवाँ होई । सो धन बूझे बिरला कोई ॥
 सुरत परस होवे गलताना । ताको मिले निज पद निर्वाना ॥
 सुरत बांध जब गुरुहिं समावे । वस्तु अगोचर तबहीं पावे ॥
 तज अभिमान मिले जब आई । ताको दीजे ऐन दिढाई ॥
 सब तज रहे रहन ठहराई । औ छाँडे सब लोक बडाई ॥
 ताको दीजे वस्तु अपारा । कहें कबीर सुन शब्द हमारा ॥
 गलत गरीब रहनसे भारै । तन मन धन संतनपर वारै ॥
 लोक लाज कुल तजै बडाई । तब पग परस भर्म मिटजाई ॥
 विन विश्वास भक्ति परकाशा । प्रीति बिना नहिं दुविधा नाशा ॥

गुरु से शिष्य करे चतुर्गई । सेवा हीन नरकमें जाई ॥
संतन वारें तन मन धामा । सोई संत मरैं मम नामा ॥

साखी-होय विवेकी शब्दके, जाल मिले परवार ।

नाम गहे सो पहुँच है, मानो कहा हमार ॥

चौपाई ।

नाम उदित सो संत पियारा । मारों काल होय जर छारा ॥
जिन जिन नाम सुने हैं काना । नर्क न परे होय मुक्ति निदाना ॥
आदिनाम जेहि श्रवणन नाही । निश्चय सो जिव जमघर खाहीं ॥
सुमरौ पुरुष काल डर कंपा । भौमाने नाही सिर चंपा ॥
नाम निरक्षर सुधि जब पावा । काल अपर्वल निकट न आवा ॥

साखी-आदि नाम है पारस, मन है मैला लोह ।

पारस परस उजियार भये, छूटे बंधन मोह ॥

चौपाई ।

कहँ लग कहौं कहन नहिं पारा । नाम गहे सो संत हमार ॥
आदि नाम जस सार के गैसी । लागे बान ठाव रहै वैसी ॥

साखी-सतगुरु मारे बानभर, डोले नहीं शरीर ।

का चाबुक वह कर सके, सुख लागे वह तीर ॥

गाँसी लागे सुख भये, मरे न जीवे कोय ।

कहें कबीर अमर सो प्राणी, जो नहिं मृतक होय ॥

चौपाई ।

लागे जहां वस्तु सो पावा । विन लागे को भेद बतावा ॥
नाम अमर रस चाखें कोई । ताको जरा मरन नहिं होई ॥
अक्षर गुप्त सोई में भाषा । औरो शब्द स्वाल अभिलाषा ॥
साठ सुत्रके सुने जो भेऊ । यह गति जाने बिरला केऊ ॥
पाताल सुत्र है बारह खंडा । बारह सुत्र कहों ब्रह्मंडा ॥

(७२)

मुक्तिबोध ।

बारह सुन्न आकाश बताई । बारह सुन्न पुरुष के ठाई ॥
बारह सुन्न कहो अनुमाना । कहें कबीर गुरुसे हम जाना ॥

साखी-अकह मूल सब सुन्नके, सुन्न सकल ब्रह्मंड ।

तहवां से बस्ती भई, सात द्वीप नव खंड ॥

चौपाई ।

चार पदार्थ एक पथ माहीं । बिन गुरु नर कहँ बूझे नाहीं ॥
अदेख देखे कथा जो कथई । आप परस दोऊ ता मथई ॥
कथनी कथे प्रतीत दृढाई । मथनी शब्द अभय पद पाई ॥
जब देखे औरे नहिं माने । तज पाखंड सत्यको जाने ॥
तहां संत को लैं जमरावे । जाके जीव सहिदानी पावे ॥
सो जाने पुन हमर ठिकाना । ता कहँ दीजे निज सहिदाना ॥
नाम अमर रस मनुवां पागे । होय लौलीन तहां सो लागे ॥
गहि पकरे नर सुर्तकी डोरी । तासों काल करे नहिं चोरी ॥
दृढ के मनुवां आदि जो थीरा । कहें कबीर सो सांच फकीरा ॥
सत्य समोय झूठ परहरई । दाग न लगे सत्य सों तरई ॥
जाकहँ गुरु आपन कर लीन्हा । नाम नेति हंसन को दीन्हा ॥
जे जन गुरुके नाम समाना । भक्ति हेत सोई सब जाना ॥
जबलग भक्ति अंग नहिं आवा । सार शब्द कैसे के पावा ॥
सत्य नाम श्रवणन में वोषे । ज्यों माता बालक कहँ पोषे ॥
जहां गुरु भक्त तहां लौ लावे । सुने जु वाह मुक्तिगत पावे ॥

साखी-सुर्तसमानी नाम है, जगमें रहे उदास ।

कहै कबीर निज नामही, दृढ राखे विश्वास ॥

चौपाई ।

जाके उर विश्वास न आवे । भक्ति अंग सो कैसे पावे ॥
सुरत दृढाय निसदिन तहँ जागे । मुक्त होय कछु बार न लागे ॥

चढी निशंक मन मगन रहा था । सो नहिं परै कालके हाथा ॥
जो जिव माया सां लौ लावा । गहे काल मुख बात न आवा ॥
सोई संत समाधी मारी । जाके जीव सहिदानी डोरी ॥

साखी-गुरुके शब्द साधुकी पूँजी, बणिज जाने जो कोय ।
कहें कबीर तो बडे सवाई, हानि न कबहूँ होय ॥

चौपाई ।

जबलग सागनाम नहिं पावे । तबलग प्राणि मुक्ति ना आवे ॥
सार नाम बिन सीपके मोती । उपजे बहुत बिना हर खेती ॥

साखी-येहि विधि करे किसानी, पोता तल बल होय ।

भक्त मिले कौइ बीरला, दाम देय सब कोय ॥

मूल कहा मोर नाम हैं, दग्गाहे गुरु मान ।

सब सतोंसों लिये फकीरी, डार सकल अभिमान ॥

चौपाई ।

आदि नाम जे संतनमाहीं । जम का करे निशंक डर नाहीं ॥

आदि नाम है अक्षर माहीं । गुरु बिन नर्क पुन छूटे नाहीं ॥

सोहं में निः अक्षर रहाई । बिन गुरुके कौन देहि लखाई ॥

चीन्हे परे आवे विश्वासा । लोक वेदकी छूटे आसा ॥

चीन्हे आदि निः अक्षर वानी । छूटे भर्म होय ब्रह्म ज्ञानी ॥

कहें कबीर संत सोइ भागी । जाके सुत निरंतर लागी ॥

नाम चीन्ह पै कहां पुकारी । नातर बूडे गैल मझधारी ॥

कहां शब्द मानो नर लोई । आदि नाम बिन मुक्ति न होई ॥

गुरुके कहे में कहां सँदेशा । नाम लेवे सो पहुँचे देशा ॥

गुरुके शब्द जो माने नाहीं । मुक्ति न हो बूडे भवमाहीं ॥

साखी-जम ग्रासे बल बांधे, कहां पुकार पुकार ।

गुरुकी त्रास न होति तो, खाते उनको फार ॥

चौपाई ।

जाको होय गुरुको विश्वासा । निश्चय जाय पुरुषके पासा ॥
 नर प्राणी कीजे इतबारा । गुरुके कहे मैं करों पुकारा ॥
 कहे कबीर मिलन बिन आशा । मिलन भये भेटे विश्वासा ॥
 निशिदिन रहे निज नाम समाना । तब जाने भजनी परवाना ॥
 यह सब कहों परमार्थ काजा । यही पाखंड नर अरुझे बाजा ॥
 अक्षर आदि निज नाम सुनाऊँ । जरा मरन के भर्म मिटाऊँ ॥
 सोहं के संग आये संसारा । सो गुरु दीजे मोहिं उपचारा ॥
 ताको भर्म जान जो पावा । सो साधू जगमें नहिं आवा ॥

साखी—यह अवसर नहिं पावहीं, पलमें लेहु उबार ।

भवसागर तर जायँगे, क्षणमें लेहि उबार ॥

चौपाई ।

गुप्त मता पावे जो कोई । गेही तज वैरागी होई ॥
 अकह वस्तु तब निज के पाई । तब पाखण्ड कछू नहिं आई ॥
 अजर पुरुषको खोजहु प्राणी । कहे कबीर कोइ संतसमानी ॥
 आदि नाम सो सुरत समावे । निरभय मुक्ति अमरपद पावे ॥
 गुरुके शब्द जीव दृढ़ करई । सोई सन्त भवसागर तरई ॥
 मनके सुख बूझे भर्म फांसा । बूझ जाय न हो सुख बासा ॥
 सुरत सम्हार कहत हम तोहीं । पीछे दोष न आवे मोहीं ॥
 आदिनाम जो अमीरस चाखे । पांच पचीस बांधके राखे ॥

साखी—प्रेम पंथ जे पगु धरे, देत न सीस डराय ।

सपने मोह न व्यापे, ताको जन्म नसाय ॥

चौपाई ।

तन मन धन संतन पर वारा । सोई संत निज हितू हमारा ॥
 का कहैं अमर भरी मैं देखैं । तेहि संतनको निकट बुलाऊँ ॥

सोइ संत सतगुरु सुखदासा । अजर पुरुष जहाँ अजरप्रकाशा ॥
 अनन्त कोट जाको पार न पावे । को अस दूसर गुरू कहावे ॥
 हम तुम नारि पुर्ष सब मांहीं । जहां है सोहं तहां हम नाहीं ॥
 ताहि खसम चीन्हे नर लोई । तन धर प्रगटे पुरुष न होई ॥
 अकह अमान पुरुष जब रहेऊ । नाम निःअक्षर तासों भयेऊ ॥
 ताहि नाम को सुमरे कोई । सुर नर मुनि इन्द्री वस होई ॥
 अधर पियाला पिय रस सांचा । सोइ अमर औ मतका ऊंचा ॥
 पियत अमीरस अधिक सुहाये । अधिक पिये पुनि त्रास नसाये ॥

साखी-पांच पचीसों तीन गुण, एक मिहलमें राख ।

आदिनाम अनभय उच्चरो, तन मन धन सो चाख ॥

धन परखे धनवंत जो, ज्ञान दृष्टि जो होय ।

आंधे गुरु विन ना सुझे, कोट करे जो कोय ॥

चौपाई ।

कहे कबीर भर्म जब छूटे । मुक्ति भली सांचे कर लूटे ॥
 कहेउँ उचार कछु परदा नाहीं । विन गुरु नरको सूझे नाहीं ॥
 कथनी कथे कथे का होई । गुरु विन मुक्ति न कबहुं सोई ॥
 शब्द रूप हमहीं होय आये । हमहीं होय कडिहार कहाये ॥
 हमहीं नाम प्राण यह माहीं । हमहीं सन्त मर्द तेहिं पाहीं ॥

साखी-ज्ञानदीपक सुरतकी वाती, दीनो संतन हाथ ।

दीपकले के खेलिये, निस दिन सतगुरु साथ ॥

ज्ञान दीपक प्रकाशके, भीतर भवन उजाल ।

तहां बैठ पुरुष को सुमरों, सहजै होय निहाल ॥

चौपाई ।

ऐसी रहन रहे जो सांचा । सो भजनी सबही से उँचा ॥
 यहि बिधि भजन करे जो कोई । तीन लोकमें वास न होई ॥

लोक वेद कर्म भरम नसावे । होय सुदृष्टि प्यासको पावे ॥
 यह संसार अस कर जाने । सत्य पुरुष को जो पहिचाने ॥
 कहैं कबीर या तनको सोधो । पांच पचीस तीन को बोधो ॥
 एक नाम बिन जग जस श्वाना । कोट करे नहिं मुक्ति निदाना ॥

साखी—कहैं कबीर ये सब मुण, लहिं बिषधरकी धार ।

जे जीव सतगुरु पावैं, ते जीव जगसे उबार ॥

चौपाई ।

बिरला जन कोई भक्तिहि लहई । जो थिर होय तो भक्तिही कहई ॥
 आपही पुरुष और सब नागी । सेवक भये सकल देहधारी ॥
 अचल अमान जो अकह कहावा । ताकी गति बिरला जन पावा ॥
 आदि पुरुषको बिरला पावा । ब्रह्मा विष्णु शिव पार न पावा ॥

साखी—अमृत वरण ये मूरत, ताहि कहों गुण पेख ।

गुरु की दाया सो लखे, सुगत निरतकर देख ॥

चौपाई ।

निःअक्षर निर्गुण सो जाने । और सकलजग गुण नहिं आने ॥
 तीनों गुण लै सर्गुण बोले । निर्गुण तनके माहीं डोले ॥
 आदि नामसों सब जग बांधा । आदि नाम जाने सौ साधा ॥
 आदि नाम तहां अक्षर धाग । ताहि नाम लै सब विस्तार ॥
 आदि नाम देव शंकर भयऊ । और नाम है नरके सुभाऊ ॥
 पद साखी निश्चै कर जाने । आदि नाम कहैं मूल बखाने ॥
 मूल मंत्र जाने जो कोई । ताको आवागमन न होई ॥
 भूले लोग कहैं हम पावा । मूल वस्तु बिन जन्म गमावा ॥
 प्रेम अभागी मूल नहिं जाने । डार पत्रमें पुरुष बखाने ॥

साखी—अजर पुरुष एकै रहे, अजर दीप है स्थान ।

कहैं कबीर सर्वांग विराजे, ताहि पुरुषको जान ॥

चौपाई ।

निःअक्षर पावे नहिं सोई । कैसे कै स्थिर प्राणी होई ॥
जब लग गुरुसों करे न नेहा । तबलग प्राणी प्रेतकी देहा ॥
आदि नाम अमृत तन पावा । जाति पांति कुलधर्म नसावा ॥
आदि नाम है गुप्त संसारा । जो पावे सो होय हमारा ॥
संत कुल तोर भर्म कुल तोरे । संत साधु सों नाता जोरे ॥
तज पाखण्ड वैरागी होई । अपने पिया को पावे सोई ॥

साखी—कहो काल का कर सके, पुरुष नाम जेहि पास ।

निर्गुण निंदक पच मुए, गुरुका नहीं विश्वास ॥

चौपाई ।

पुरुष नाम जेहि परिचय होई । सब भेषन में गुरु है सोई ॥
ताकी महिमा अगम अपारा । लोक वेद तज भये नियारा ॥
अचल पुरुष जो अचल है देशा । आदि नाम ले कर परवेशा ॥
जाहि वस्तु में मिटे दुख द्वंदा । सुख सागर तहां प्रेम अनंदा ॥
अगुण सगुण होइ झगरा बाजे । दोउदल तजिके पुरुष विराजे ॥
कहें कबीर या भक्तिके मूला । अकह अमान अचल अस्थूला ॥
अब्रन वरण सो भेद निनारा । घट घट बसे लिप्त तन धारा ॥
ताहि पुरुष को चीन्हें प्राणी । घटमें रहे निकस ना जानी ॥
तबही कहिये खसम खुदाई । कौन कपटमें आवे जाई ॥
कौन पुरुष में रहे समाई । सो प्रभु है संतन सुखदाई ॥
यह सब धन अनुभवकी वानी । खोजी होय सो पावे प्राणी ॥
देख परख आवे विश्वासा । अगुन सगुन के सबै तमाशा ॥
सत्य शब्द कहि दीन्ह सँदेशा । जरा मरन का मिटै अँदेशा ॥
संत संदेश गुरु मोही दीन्हा । जे जन होय ताहिको चीन्हा ॥
कहें कबीर है वस्तु अपारा । ताहि वस्तु गहि उत्तरे पारा ॥

मूल मंत्र सब मथिके बूझे । अगम अगोचर तब कछु सूझे ॥
जो जो वस्तु दृष्टि में आवे । सोइ सोइ वस्तु काल धरि खावे ॥
यह धन मिले देखे प्रणधारी । ताको दीजे भेद विचारी ॥

साखी-बिन देखे बोले जस, अंधरा हाथि परेख ।

बलिहारी वहि संतकी, निरख परखके देख ॥

चौपाई ।

तन अभिमान सब गर्वही धरहीं । मूल मंत्र कैसे लख परहीं ॥
होय नहिं दास धरे अभिमाना । ताहि न दीजे अनुभव ज्ञाना ॥
मुक्ति भये संतन हित कीन्हा । मुक्ति भली प्रगट कहि दीन्हा ॥
कहें कबीर तेहि की बलिहारी । पुन अनुभव में कहों पुकारी ॥

साखी-समझाये समझे नहीं, धरे बहुत अभिमान ।

गुरुके शब्द उच्छेदके, कहत सकल हम जान ॥

चौपाई ।

बोले वचन बहुत विस्तारा । आदि नाम बिन घटे अँधियारा ॥
पुरुष न चीन्हें फिरे भुलाना । निश्चय परे सोइ नर्क निदाना ॥
एक नाम बिन पार न पावे । मिथ्या प्राणी जन्म गमावे ॥
देख परे सोई सब भाषा । और कहनकी है अभिलाषा ॥
जाकर सज घट करे समाई । ताते साधू देहि लखाई ॥
अधिक भरे ऊँचे से सीजे । सो माया जो रुच रुच पीजे ॥
और सींचे अनुभव धन देखे । और सकल मिथ्या धन लेखे ॥
हरप शोक दोऊ परहारें । होय मगन गुरु चरणै धारे ॥
अजर अमर सो अकह कहावे । जो धन मिले सो संत कहावे ॥

साखी-यह धन पूंजी गुहूकी, भाग बडे जिन पाय ।

कहें कबीर आय नहिं टोटा, नित खरचे अरु खाय ॥

चौपाई ।

यह ना आवे अमर प्रकाशा । जो धन खोजहु गुरुके पासा ॥
 यह धन मिले होय बड भागी । सोई संत परा वैरागी ॥
 करै विवेक वस्तु है न्यारी । यह सब है सपने की व्यारी ॥
 ताहि गहे नर सुरत सम्हारी । सोई संत पूरा हितकारी ॥
 बाग राशि मंत्र चौबीसा । यह सब है सपने को ईसा ॥
 विन परचे नर आह जो करई । निश्चय जाय नरक सो परई ॥
 जो नहिं मोक्षके शब्द विचारा । तिनहिं काल ले करै अहारा ॥
 सार नाम विन मुक्ति न पावे । बूड मरे पुन थाह न आवे ॥
 निंदक नरक परै नहिं तरई । चार खूंट में भर्मत फिरई ॥
 देह धरे नहिं सुर्त दढाई । उपजत विनास चौरासी जाई ॥

साखी-भर्म जाल संसार है, सब अरुझे भव भीत ॥
 कोई कहें जन एक है, मनमें राखो मीत ॥
 चरणामृत जो पायके, दृढ राखे विश्वास ॥
 निर्भय मुक्ति पाइये, पहुँप दीपकी वास ॥

चौपाई ।

सुर्त दीप की अकथ कहानी । अगम अगोचर अनुभव वानी ॥
 अकह सुर्त जहँ अगम अपारा । ताहि गहे उतरे भव पारा ॥
 लखे अंक जो अकह कहानी । अगम अगोचर अनुभव वानी ॥
 तजै पाखंड सोई निर्वानी । सोई संत कहावे ज्ञानी ॥

साखी-पुरुष सार सों न्यार है, दीखे सवहिन मीत ।
 ज्ञान दृष्टि में जगसों छुटे, जो जन प्रेमपुनीत ॥
 कहें कबीर दरसाये, जाके उर निश दिन रहै ।
 सोई करे गुरुवाय, झक मारे संसार है ॥

चीठी उतरे दूरसौं, ताके सिर वैराग ।
नाम गहे पुरुष पावहीं, तब गुरु प्रगटे भाग ॥

चौपाई ।

पावे वस्तु मगन होय रहई । चढे ना उतरे लाख जो कहई ॥
होय निशंक नहिं चित्त डुलावे । जो जेहि सुर्त धरे सो पावे ॥
अकह अमान पुरुष है सोई । तब धरि प्रगटे पुरुष न होई ॥
मूल वस्तु पावे बड भागी । देखिय साखी पदमें नागी ॥
कहि न जाय अकह को देखा । गुरुकी दया सुर्त सो पेखा ॥
साखीपद के तहाँ न काजा । आप मिले सोइ सेज विराजा ॥
अनुभव शब्द जहां ठहराना । को कह सके न जाय बखाना ॥
देख परख आवे परतीती । तब जैहैं चौरासी जीती ॥
तहां नहीं तुम दुतिया भाऊ । आप मेढु तबही सब गाऊ ॥
वहां बैठ अमृत फल पाऊ । जब निःशंक बहुर नहिं आऊ ॥
गुरु के शब्द हृदै मो आना । ता नरकी भई भुक्ति निज जाना ॥
कोटि असुर की राई आवे । दृढ़ विश्वास सत्त जेहि पावे ॥
कहें कबीर है शब्द सुहेला । गुरु पूरा सूर होय चेला ॥

साखी-गुरु पूरा शिष्य सूर, बाग मोरि रन पैठ ।
सतसुकृत कहैं चीन्हके, तब तखत पर बैठ ॥

इति मुक्तिबोध समाप्त ।



सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष,
मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरतियोग, संतायन,
धनी धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शननाम,
कुलपतिनाम, प्रबोध गुरुवालापीर, केवल
नाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक
नाम, पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज
नाम, उग्र नाम, दया नामकी,
वंश व्यालीसकी दया ।

अथ श्रीबोधसागरे ।

षोडशस्तरंगः ।

श्रीग्रन्थ चौकास्वरोदय ।



प्रथम प्राण योग जो भाखा । कारज सिद्ध जो बाहर राखा ॥
प्राणायाम भेद सबहीको सारा । कारज सिद्ध वेद व्यवहारा ॥
वोई सख्त हम आदि निर्माये । आधेको नर आधकी नारि बनाये ॥

सो स्वरूप हैं आदि निसानी । सत्यस्वरूप सो जीव समानी ॥
 प्रथम शब्द सुरति स्मृति निर्माया । जिनते वेद और लोक बनाया ॥
 दुतिय इच्छा अंकुरकू कीन्हौ । उत्पति प्रलय सौंपि सब दीन्हौ ॥
 तृतिये माया मन विस्तारा । तिनके बीज जीव संचारा ॥
 चौथे सुर चंद्रहि परकाशा । शुक्ल भेद तिहि माँहि निवासा ॥
 पाँचयेंदिवसरात और तिथी पसारा । तापर सूर्य चंद्रकी धारा ॥
 एक नारि एक पुरुष कहावा । चंद्र सूर्य नाम तिन पावा ॥

साखी—तिनको भेद शरीरमें बरतै, पांचतत्त्व निजसार ।

कहें कबीर सोई लखै, पूर मिलै कडिहार ॥

चौपाई ।

काया भर्मभेद अधिकारा । नीर पवन दोइ अस बैठारा ॥
 नीर नामते उत्पति होई । नीरहि साथै मरै न कोई ॥
 दुसरा पवन अंशकी धारा । तापर सोहं सुरति बैठारा ॥
 पवनभेद है अगम अपारा । आदि अंत सब कीन्ह पसारा ॥
 पवन डारि स्वासा अवगाहा । विन सद्गुरु पावै नहिं लाहा ॥
 तापुर सूर्य चंद्रकी धारा । सुखग चंद्र औ सूर्य विचारा ॥
 तिनकर भेद जो न्यारे करऊ । सूर्य चंद्र भेद दोई धरऊ ॥
 दिन तिथि पक्ष संक्रांति विचारा । तापर पाँचतत्त्व विस्तारा ॥
 सूर्य उदय संपूरण कहेऊ । भेद अभेद, भर्म सब लयेऊ ॥
 मंत्र उदौ छै हि मासको भाजै । सूर्य सनेह सो तहां विराजै ॥
 पृथिवी तत्त्वपर सूर्य जो आवै । छे मासको शुभ दिखलावै ॥
 घरको छांडि तत्त्व जो बोलै । प्रलय कालकै छत्र जो डोलै ॥
 जलहि तत्त्वपर अस्थिर होई । ताको कष्ट होय नहिं कोई ॥
 वायु तत्त्व कीयो विस्तारा । किंचित कारज होय संसारा ॥

तेज तत्त्वपर सूर्य सवारा । भीतर बाहर सोग अपारा ॥
जब आकाशतत्त्व जो आवै । होइ भंग सब काज नशावै ॥
शुभहिं अशुभ दोही निरतावै । मकर भेद छह मास बतावै ॥
पक्ष भेद कहउँ अब सोई । अँधियारा पक्ष सूर्यको होई ॥
मकर संक्रांति ।

तेहि में सूर्य चन्द्रकी धारा । तीन तीन तिथि कीन्ह विचारा ॥
कहिं अँधियारा कहिं उजियारा । रवि शशि मंगल सूर्य सम्हारा ॥
चारि अंक गहि भेद विचारो । धरिकै कृष्णपक्ष निर्धारो ॥
फिर कायामें बैठो जाई । काया सूर्य लहो निरताई ॥
माखी-काया सूरज जब उगै, होय पृथिवतत्त्व असवार ।

तबहिं शुक्र शुभ जानिये, कारज शुभ सौवार ॥
अब में कहां चन्द्रकी धारा । कर्क संक्रांति छै मास विचारा ॥
तहाँ जब उदय चन्द्रको होई । अथवत सूर्य उगै पुनि सोई ॥
जलहि तत्त्वपै सूर्य सवारा । छेह मास आनन्द विचारा ॥
घरहि छांडि जो बोलै आई । तो कारज सिद्ध होय नहिं भाई ॥
घरमें रहै तत्त्व नहिं होई । देश उपद्रव देखो सोई ॥
पृथ्वी तत्त्वपर चन्द्र सवारा । प्रेमानन्द और ज्ञान विचारा ॥
वायुतत्त्वपर चन्द्रकी धारा । किंचित कारज होय संचारा ॥
तेज तत्त्वपर चन्द्र जो आवै । पश्चिम दिशा कलह उपजावै ॥
अकाशतत्त्वपर चन्द्र सवारा । भीतर बाहर कष्ट अपारा ॥
पृथ्वीमें उदयचन्द्रको कहेऊ । शुक्रहि पक्ष भेद अब रहेऊ ॥
दोई तिथी पक्ष उजियारा । तहांते केवल चन्द्रकि धारा ॥
तामें भेदाभेद विचारा । तीन तिथी चन्द्र सूर्य निर्धारा ॥
सोम शुक्र गुरु बुध जो होई । चन्द्र सनेह चारि दिन सोई ॥
रवि शनि मंगलवार बिचारा । तीनहि दिनको सूर्य सिरदारा ॥

साखी-दिन तिथी पक्ष संक्रांति है, बाहेर चार विचार ।

सबको मूल है याहिमें, सो पूर्ण चन्द्र उजियार ॥

परचै चन्द्र कायामें सोई । जो उगे तौ सब सुख होई ॥
जलके तत्त्व चन्द्र असवारा । भीतर बाहर अनन्द विचारा ॥
• पांचतत्त्व अब भिन्न जो कहेऊ । तत्त्व भेद सब न्यारे रहेऊ ॥
जलके तत्त्व सुफल घर चन्दा । प्रेम विलास अती आनन्दा ॥
पृथ्वीतत्त्व चन्द्र जब आवै । सूरज मिले आन उपाजावे ॥
वायु तत्त्वपर चन्द्र समाई । चित्त उदास लै गवन कराई ॥
तेज तत्त्वपर चन्द्र जो होई । उत्तम मध्यम कारज होई ॥
अकास तत्त्वपर चन्द्र सर्वगा । शुक्लकारज जो होय अभंगा ॥
अकास तेज जल तत्त्व न आवै । करि अकाज तहाँ कलह समावै ॥

साखी-एते भेद सर्व हैं, चन्द सनेह विचार ।

काया चंद सुभ देखि हौ, तो शुभ शुक्ल विचार ॥

बानी भेद ।

अब मैं कहों बानीका लेखा । ज्ञानी होय सो करे विवेका ॥
प्रथम बानि कीगिनी जो होई । अंडज बानी समानी सोई ॥
दुसरी बानी विंगन कही । पिंडज बानि मैं बोलै सही ॥
तिसरी बानी इंगन जानी । सो उषमजमें जाय समानी ॥
चौथी बानी रिंगन आवै । अचल खानिमें जाय समावै ॥
पांचई बानी सिंगन होई । नरदेही मैं व्यापक सोई ॥
बानी पांच भेद औ माहा । बिन सतगुरु नहिं पावै थाहा ॥
परचै बानी तत्त्वहिं होई । पांचों ध्यान आवै जब सोई ॥

ध्यानभेद ।

प्रथम प्राण ध्यान है भाई । सो कीगनमें लै निरताई ।
दूसर अपनो ध्यानको लेखा । विंगन बानी करै विवेका ॥

तिसरे समान ध्यान व्यवहारा । रिंगन वानीको करौ विचारा ॥
चौथे उद्याना ध्यानको लेखा । रिंगन वानिको करै विवेका ॥
पांचई बानी सिंगन लेखा । वियान ध्यानसो कीन्ह विवेका ॥

साखी-पाँच ध्यान पाँच बानी, पाँचे तत्त्व विचार ।

पाँच मुद्रा पाँच तत्त्व, पाँच लग्न घरसार ॥

लग्नभेद ।

अब मैं कहों लग्न व्यवहारा । बार लगन कीन्हे निरधारा ॥
तिनके लक्षण नाम सुनाऊँ । चन्द्र सूर्यको प्रेम बताऊँ ॥
कर्म करोर सूर्यके सोई । शुभके कर्म चन्द्रते होई ॥
पाँचौ उदय सूर्य जब आवै । पृथ्वीतत्त्वपर जो घर पावै ॥
क्रूरकर्म सब सिद्ध निवासा । तहाँ चलि चौका भेदप्रकाशा ॥
मक्रहि उदय पक्ष अँधियारा । तिथि सनेह बीती नहिं वारा ॥
काया उदय सूर्य है सारा । पृथ्वीतत्त्व होय असवारा ॥
सोई लग्न जमुनी है नामा । बिगडे हंस पहुँचे निज धामा ॥
चन्द्रको वार सूर्य तिथि होई । तासों जगपति कहिये सोई ॥
तन छूटे तहां जन्मुनि चहिये । और स्नेह जगपतिके कहिये ॥
ऐसे कर्म क्रूरके कहिये । जेतिक हंसके कारज कहिये ॥
बावडी विहार कूप तलाई । भोजन मिथुनहि युद्ध कराई ॥
इतने कर्म मैं तुम्हें सुनाई । और कर्म बहुतेरे भाई ॥
संत साधुको एते कहिये । और कर्म अकर्म सब लहिये ॥
क्रूर कर्म हैं चौका सारा । मृतक कर्मको कीन्ह विचारा ॥
चारहुँ वेद भेद हम कहेऊ । सूर्य सनेह भेद निर्वहेऊ ॥
जो कोइ पिंड मायामें करही । सूर्य सनेह जीव उर धरही ॥
छूटे कर्म जन्म तहँ धरहीं । दीन मान भोग तहां करहीं ॥
चन्द्र सनेह पिंड नहिं पावे । भ्रमत फिरै अरु काल सतावे ॥

कहाँ गया कहाँ नहीं गंगा । बिना सूर्य सब कारज भंगा ॥
 जो कोइ होय बहुत कडियारा । तुम सुनियो यह भेद विचारा ॥
 इतने सूर्य लग्नके लच्छन । तत्त्वविचार सूर्य यह दीच्छन ॥
 साखी-तत्त्वभेद सब सूर्यको, सो मैं कह्यो बखान ।

कहै कबीर धर्मदास सुन, यह टकसार अमान ॥

चन्द्रलग्नभेद ।

सूर्यभेद हम कह्यो विधाना । चन्द्रभेद अब कहों प्रमाना ॥
 चन्द्रसनेह शुभकर्म विचारा । कर्कसंक्रांति ते चन्द्र निर्धार ॥
 योगमिद्धि में भेद विचारा । उदयतत्त्व जल चलै मँझारा ॥
 छहै मासको शुभ है सोई । इतनो भेद कर्कते होई ॥
 पक्ष चंद्रको है उजियारा । तापर केवल चंद्रकी धारा ॥
 दोई तिथि चंद्र सूर्य समाई । तीन चन्द्र तिथि सूर्य बताई ॥
 चन्द्र सनेह जो वार है चारी । सोम शुक्र गुरु बुद्धि विचारी ॥
 कायाचन्द्र जब उगै आई । तब सब उदय चन्द्र घर पाई ॥
 नाघट उदौ तो सर्व अभंगा । करत कार्य सब होइ है भंगा ॥
 जल तत्त्वपर चन्द्र असवारा । कार्य सिद्धि होई इसवारा ॥
 कर्क उदो पच्छतिथि जो वारा । घटमें चन्द्रतत्त्व जलधारा ॥
 पाँचों स्नेह चन्द्र घर आवे । तब पूनौ संपूरण पावे ॥
 ताहि लग्नको प्रतिमा नाऊ । अखंडित चन्द्र बरते सब ठाऊ ॥
 ताहि लग्न सिख बोधो जानी । नैऋति कीजै बिलखानी ॥
 सोई अंकुरि जो हंस हमारा । जिन यह स्नेह चौका विस्तारा ॥
 सोई लग्न गहि नरियर मोरौ । जिमि कालसो तिनका तोरौ ॥
 शुभ कर्मके कहेउ परमाना । और कर्मके कहौ विधाना ॥
 प्रथमें चौका जग विस्तारा । दान पुण्य होम जग सारा ॥
 बाग वृक्ष फूलहि फुलवारी । यहि मठ जात्रा सैन्य अचारी ॥
 राजदर्शन बनिज व्यवहारा । स्नान ध्यान गुरुनेम अचारा ॥

औषध मूरी विवाह सगाई । सर्व पहेर अरु छत्र बैठाई ॥
शुभही कर्म चन्द्रके ऐसे । लक्षण देखि चलौ तुम तैसे ॥

साखी-चन्द्रकर्म शुभ सब कहे, गुण निर्गुण निर्धार ।

और भाव तौ बहुत हैं, कहैं कबीर विचार ॥

चौपाई ।

अब सुनियो कछु आदि निसानी । चारौ लग्न कहों बिलछानी ॥
प्रतिमा चंद्र लग्न है सोई । जमुनि उदय सूर्य निज होई ॥
जो तिथि चंद्र सूर्य दिन आवे । निश्चय लग्न जे पति तहाँ पावे ॥
जो तिथि चंद्र सूर्य द्वै वारा । जगपति लग्न सूर्य संचारा ॥
वार लग्नमें काल को फंदा । धरै नाम जिव करे निकन्दा ॥
सोरहे पारस लगन बिचारा । चौदहकी गति लखि बटपारा ॥
जगपति भेद लग्नसों नेहा । लग्नसूर्यके ग्रहन सनेहा ॥
जगपति लग्न सूर्यके होई । नेहर चंद्रको ग्रासै सोई ॥
दोई लग्नको भेद न पावै । जमुनी प्रतिमा हंस मुक्तावै ॥

चारि चौकाको प्रमान ।

चौका चारको सुनहु विचारा । भिन्न भिन्नके कहों निरधारा ॥
प्रथम चौका जन्मको कीन्हा । अंश सोरह नारियर लीना ॥
सोरह धोती और असी सोपारी । लौंग इलाची लै समधारी ॥
दो हजार पान बीस सेर मिष्टाना । सोरह हाथ चंदवा ताना ॥
दसै रती सोबनके खरीचा । सोरह मासा धरे जो रूपा ॥
दलकीअभ्रति टकासोर भारसेही । भरि भांडे एक थारी लेही ॥
इक लोटा इक बेला लेई । इक झारी आब रखि देई ॥
बच्छा सहित ही गाय सुपेता । इहिविधि चौका कर बहुहेता ॥
पहिलै कर्म सब जाई जराई । इहिविधि चौका करे बनाई ॥
तन मन धनसों पीत लगावै । सोवा सत्यलोकमें जावै ॥

प्रथम चौकाण विधि ।

अब मैं कहों एकोतरी बिधाना । एकोतरि नारियल चौका प्रमाना ॥
 लौंग इलायचि धोति सुपारी । इकोतरी सब वस्तु विस्तारी ॥
 पान मिठाई अवर पकवाना । इकोतर सह सबको बंधाना ॥
 दस अरु कमल आरती साजा । मुखसों जपें इकोत्र समाजा ॥
 इकोतर जन्मके पाप नसाई । कर्म अकर्म सबै मिटिजाई ॥
 निर्मल हंस हिरम्मत देही । पहुँचें जहँही पुरुष विदेही ॥

द्वितीय चौका विधि ।

अब सहेज चौका कहों प्रमाना । जीव संग एक नारियल बंधाना ॥
 अंस और नारियल सम धरही । विना मंत्र नहिं चौका करही ॥
 छठे मास चौकाकी पूजा । छौंदि चौका पूजै नहिं दूजा ॥
 छठे मास नहिं पहुँचें भाई । बरस दिनामें विसरि न जाई ॥
 जो जीव शिष्य हमारा होई । हमहीं पूजी पूजै नहिं दोई ॥
 दोई पूजी बहुत दुख पावै । तन छूटे जमकाल सतावै ॥
 ममता फिरै कहूँ ठौरे न पावै । फिरि फिरि जक्तहिं देह धरावै ॥
 दुख अरु सुख दोनू भुगतावै । एकहि नाम पुरुषको गावै ॥
 लोकजात बार नहीं लावै । चौका सहजिहि भाँति करावै ॥

चालवा चौकाविधि ।

चालवा चौका कहों विचारा । बाहर नारियल लै विस्तारा ॥
 आठ सुपारी पन्द्रहसौ पाना । लौंग इलायची लै बंधाना ॥
 पन्द्रह सेर मिठाई ले आवैं । बारह धोती आनि चढावैं ॥
 पाँच भाँडे, धातुकै होई । सोरह हाथ चंदोवा सोई ॥
 पाँच खंभको मण्डप गढावैं । नये पुराने वस्त्र मँगवावैं ॥
 सो परदा गहिरैकै देई । गीत मंगल करि माटी लेई ॥
 तिहि माटीकी वेदि बनावैं । वाँछा सहित जुगाय नढावैं ॥

साधु संतको भोजन करावै । पंद्रह सेर पकवान चढावै ॥
 चार पहर सब साज जो करही । सोरह सुतकी पोसी धरही ॥
 चार पहर निस बैठक करही । सूर्यस्नेह चौका विसतरही ॥
 सुरती सुरत सूर्यपर जोरै । पृथ्वी तत्त्वमें नारियर मोरै ॥
 औरहु भाव बहुत है भाई । जो समुझे सो बिचलि न जाई ॥
 अमी अंकको बीरा पावै । बिगडे हंस लोकको आवै ॥
 पान प्रसाद वंश हेतु लेई । पियेपर नाम हमारा लेई ॥
 छूटैं हंस कर्मके पारा । चोग उदय घट सूर्य विचारा ॥
 चन्द्र हेतु तिन चौका करहीं । चन्द्र लग्नको काल जिमु डरहीं ॥
 चौथा चौका चलवेका एहै । सूर्य लग्न निजही मनमें है ॥
 देह धरै नहिं कर्म सतावे । सहजे जाय परम पद पावे ॥
 चारों चौका एहि विधि करै । सो हंसा तगहै ओ तारै ॥
 सहजको चौका वासमें निरतावे । इतने भेद टकसार लखावे ॥
 भेद चुरामणिखंड अपारा । चुरामनि बंस एहि भेद विचारा ॥
 उन्हको नाम प्रताप है सोई । इहतो भेद कडिहारको होई ॥
 जोन अङ्गुरी वोहित कडिहारा । सो यह पावे वंस टकसारा ॥
 अंस बैसकी परख न पावै । पढि टकसार काल घर जावै ॥
 बिन गुरु भेद गहे टकसारा । बिना पुरुषकी नारि बिचारा ॥
 बिन दूल्हकी कौन बराता । बिन गुरु झूठ जान जिहिं राता ॥
 बिना छत्र ज्यों लश्कर फिरहीं । बिन गुरु ज्ञान धीरको धरहीं ॥
 हमरे पंथके गुरु धर्मदासा । तिनके वंशगुरु जक्त प्रकाशा ॥
 हमरा ज्ञान वंस अस करई । खोवे आपु नरकमें परई ॥
 तजै मनै क्रोधे अहंकारा । सो ये गहैं वंश टकसारा ॥
 इतने भेद इहै टकसारा । औरे ज्ञान बहुत असरारा ॥
 वंश टकसार कडिहारा जो पावै । सो सौ भवसागर जीव मुक्तावै ॥

(९०)

चौकास्वरोदय ।

वंश अंस टकसार न होई । सीखसहित गुरु जाय विगोई ॥
इतनौ भेद है अगम अपारा । नीर पवन चन्द्र सूर्यकी धारा ॥
कर्यासिद्ध नीर मुक्ति प्रवाना । सद्गुरु वचन शीश परमाना ॥
उत्तर पूरव चन्द्र सनेहा । दक्षिण पश्चिम सूर्यहि देहा ॥

साखी—इतना भेद चन्द्र सूर्यका, पाँच तत्त्व निजसार ।
दिनातिथि पच्छ उदयलों, सो साँचो कडिहार ॥
कहै कबीर सोई लखे, ए सब मिले टकसार ।
चन्द्र सूर्यको भेद जानै, सो झूठो कडिहार ॥

इति ग्रन्थचौकास्वरोदय संपूर्ण सत्य सही ।



अथ अलिफनामा ।

अलिफ अव्वल एक नाम सही है, आप अकेला साँई ॥ आदि
अनादि अनादह अनाहद नहीं वा साँई ॥१॥ (बे) बंदेको पैदा किया
दमका हिया दरूदा ॥ अव्वल कलमा पाक सही है हुक्म रब्बमह
बूबा ॥ २ ॥ (ते) तनमें दीदार मिलैगा पाक होय वजूदा ॥ नूर
झलक्के सत्य साहबका, सब घट है मौजूदा ॥ ३ ॥ (से) साबित
सत्यनाम गोसाँई, सदा जो कायम वाशिद ॥ पूरा होय सत्त नाम
कहावै मिलै जो पूरा मुर्शिद ॥४॥ (जीम) जाहिल बु गुजार जहां
सग यह तो नेक नजर है ॥ फेकुन सैयन मुहीतन जलील अलाहक
खबर है ॥५॥ (हे) हक्काका हुक्म हाकिमका संदा जो कहिये बरा ॥
अजकुन फेकुन पेदा गहती सोहं ओहं मुनहक ॥ ६ ॥ (खे) खालि-
कको सुमिरत रहिये, खिलकत खूब यही है ॥ खुदाखबीसी छाँड सवी
शद साधू खैर तभी है ॥७॥ (दाल) दया दुर्वेश दोस्तकर दूर करै सब
दर्दा ॥ जिसके दिलमें दर्द नहीं सो मूंजी नामर्दा ॥ ८ ॥ जाल
जैहनको पाक साफकर, जिकर कि लज्जत पावो ॥ जोक शोकसे जिकर
लगावो दूर बहावो ॥ ९ ॥ (रे) रहीम रहमत कर तुझपर रहम करै
करै जो कोई ॥ राम रहीमसे एककर जानै तब जहेमत नहिं होई ॥१०॥
(जे) जौरावर कोई ना बाँचे, रावण था दशकंधा ॥ जोर जुल्म है
जहेरका प्याला मत कोई पीवे बन्दा ॥११॥ (सीन) सरासरी सिर
साईका सब सीनोंके अंदर ॥ साँचा वचन सुनो साधो जन, म्वाती
बरस समुन्दर ॥१२॥ (शीन) शेरमें शोर बहा है शुक्र खुदाका
कहियो ॥ सत्य सुकृत ये कर बासन बिसरे हरदम सुमिरत रहियो ॥१३॥
(स्वाद) सदा सिफत साहबकी कहिये, सदा समीपै भाषो ॥ दिल
दरदिल सीना दरसीना देखो दिलकी आँखो ॥१४॥ (ज्वाह) जमीर

मुनीर मुवाजे व्यापक सबघट साँई ॥ है हज़ूर हाजिर रहिमाना
जिद्द नाकीजै भाई ॥ १५ ॥ (तोय) तालिब मतलूबको पहुँचै तोफ
करै दिल अंदर ॥ बहुते तौफ जाय तब वायफ ना देव जाय पहाड
समुन्दर ॥ १६ ॥ (जोय) जालिम मिलै इजरयाल कबज करै जो
जाना ॥ गये जुलमात कोइ ना बाँचे सिकंदर सुलताना ॥ १७ ॥
(ऐन) इल्म चौदाको पडते अमल नहीं जोलावै ॥ अमल नहीं वो
इल्म ऐब है दानीश मन्द कहावै ॥ १८ ॥ (गैन) गलत ते वहि
नहीं कहिये गुस्से गजबको त्यागे ॥ नाहक सुनके न्यारा रहिये
कह सुनके मत भागे ॥ १९ ॥ (फे) फरमान आखिर है फानी
फाजिल फहेम कहाया ॥ मिन कुल अलेहाफाना कुरानों में खरब
कहाया ॥ २० ॥ (काफ) कल बहै अरस जमीका मुनकर और
नकीग ॥ नेकी करो बदी बिसरावो कुलसे कहत कबीरा ॥ २१ ॥
(लाम) लाहोल उसीपर जो न सुने जुगज़ाना ॥ साहेबसे जो कोल
किया था सो काहे बिसराना ॥ २२ ॥ (मीम) मुसल्लममर्द मुसलमान
कहत, मुरीद ना करना ॥ रहिये सदाई मनसलामत जेहि विधिसे
निस्तरना ॥ २३ ॥ (नून) नोज बिलाह अलेकुम नेक सरबुनका
करना ॥ नैनों अकबर हबलूल बरिद हैं हकका फरमाना ॥ २४ ॥
(वाव) वजूवजेमे गोयमनेकी खरत सुनुफ ॥ ख्याल वदी नुस्वास
दिल अंदर सो है मर्दमुखौबफ ॥ २५ ॥ (हे) है दोनों
यक सूरत दोनी ये साँई ॥ एक म्यानमें हो दो यमघर कबहु नहीं
समाई ॥ २६ ॥ (ये) येक साहब है सांचा सुनो तुम मन चित्त
देको ॥ काया कबीर कहत है अव्वल आखिर येको ॥ २७ ॥

इति अलिफनामा । सप्तदशस्तरंगः ।

॥ श्रीः ॥



❖ ❖ कबीरबानी। ❖ ❖

भारतपथिक कबीरपंथी—

स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संशोधित ।



स्वामराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष—“श्रीवेङ्कटेश्वर” स्टीम-प्रेस,

❖ ❖ बम्बई ❖ ❖

सं० १९९१, श० १८५६.

सत्य नाम ।



श्री कबीर साहिब ।



सत्यसुकृत, आदिअदली, अजर, अर्चित, पुरुष, मुनीन्द्र,
 करुणामय, कबीर, सुरतियोग, संतायन, धनी धर्म-
 दास, चौरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपतिनाम,
 प्रबोध गुरुवालापीर, केवल नाम, अमोल
 नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम, पाक
 नाम, प्रकट नाम, धीरज नाम,
 उग्रनाम, दया नामकी वंश
 ब्यालीसकी दया ।

अथ श्रीबोधसागरे ।

अष्टादशस्तरंगः ।
 कबीरवानी ।

प्रथम वानि मुनियो चितलाई । आदि अंतकी सुधि देहुँ बताई ॥
 प्रथम आदि समरथ होते सोई । दुसरा अंस हता नहि कोई ॥
 आदि अंकुर सुरती जब कीन्हा । सात करीको गभं तेहि दीन्हा ॥
 इच्छा सूर्ति दुसरे उपजाई । सातो करी में चित्त बनियाई ॥
 छीप रूपहि करी परकासा । स्वाति रूप इच्छा नीवासा ॥

सात इच्छा तेहिते उपजाई । भिन्न भिन्न पर करी बनाई ॥
 विमल शब्द विरलित तब दयेऊ । तबहुलासबंद पाँच करिमेदयेऊ ॥
 तब पाँच इंड भरो उतपानी । तत एक भिन्न पर श्यानी ॥
 नहिं तब धरनी नहिं आकासा । नहिं तब दुसरो हतो अवासा ॥
 ध्यावै इंड करै चौचन्दा । आपु देखि ओर सहज अनन्दा ॥
 तबकी बात नहीं कोई जानै । कहां समुझाय तो झगरां ठानै ॥
 धर्मदास सुनियो चितलाई । फूटो इंड सूर्तिसे भाई ॥
 सहज अंकुर बीज सब भाई । तिहिकी इच्छा इंड उपजाई ॥
 तब सरबनसो साजी बानी । तेहिते मूल सुरति उतपानी ॥
 अबोलबुंद तेहि सुरेतिको दीन्हां । पाँच अंश तब उतपन कीन्हां ॥
 पांचों अंस तब कह्या बुझाई । पाँचों अंडमें तुम जाओ समाई ॥
 एकहि एक इंड तब गयेऊ । आपहु आप कलामें ठयेऊ ॥
 तब अवगति एक खेल बनावा । पांच स्वरूप पांचों इडहि आवा ॥
 फूटो इण्ड तेज भई धारा । सबमें देखे पांच ततसारा ॥
 पाच इण्ड भिन्न भिन्न विस्तार । सात अधरदीप तेहिमाहिं संचारा ॥
 देखि सखी अंडनकर भाई । सोहंग सुरति तबहिं उपजाई ॥
 पुरुष शक्ति भई दोय प्रकार । तिन्हको सोंप्यो उत्पन सारा ॥
 तासो अंकुर भेद बतावा । वचन सुरत एक संग समावा ॥
 जाते ओहं पुरुषको अंगा । ओहं भए बंस दो संग ॥
 तिन्हें उत्पनकी आज्ञा कीन्ही । शब्द सनद उनहूको दीन्ही ॥
 मूलसुरति औ पुरुष पुराना । रचना बाहेर कीन्ह अस्थाना ॥
 सोहं सोहं इण्डनमें रहेऊ । सकल सृष्टिके कर्ता कहेऊ ॥
 प्रथम अंकुर दूसर इच्छाउतपानी । तिसरे मूल चौथे सोहं ठानी ॥
 सोहं सोहं की बंधानी । आठ अंस तिनते उतपानी ॥
 आठ अंस भए एकही धागा । करता शिष्ट धरे येहि नामा ॥
 करता सखी आठ भरा अंसा । तिन्ह के भए सृष्टि सब बंसा ॥

तेज अंड अंचितकूं दीन्हा । प्रथम सुर जब उत्पन कीन्हा ॥
 सोई अंस दुसरे भए भाई । धीरज अंड तिन्हें बैठक पाई ॥
 तिसरे अंस अण्ड निर्माई । क्षमा अण्ड तिन्हें बैठकपाई ॥
 चौथे अंस है सुकृत सारा । सत्य अंड है ताहि पसारा ॥
 पांचों अंस हिरम्मर भाई । सुमत अंड तिन्हें बैठकपाई ॥
 दोई अंस दोइ करी समाने । तिनका भेद गुरु गमजाने ॥
 एक अंस निर्गुण अवतारा । ते तब सृष्टिके भये कडिहारा ॥

साखी—एती उत्पन चार सुरत की, भिन्न भिन्न परकार ।

कहैं कबीर धर्मदाससों, आगे बन्स पसार ॥

धर्मदास वचन ।

साँचे सद्गुरु की बलिहारी । धर्मदास बिनती अनुसारी ॥
 धन्य भाग्य मोहि मिले गुसाई । अपनो कै मोहि लीन्ह मुक्ताई ॥
 चारि वेद अरु शास्त्र पुराना । सबहीके मैं सुनो प्रमाना ॥
 अविगति गतीकाहु नहिं जानी । जो तुम कही आदि की बानी ॥
 सुरत सोहंगके आठ भए अंशा । तिनके सृष्टि सबही भए वंशा ॥
 अपरंपार है तिनका सेपा । अर्चित्य सृष्टि को कहों विवेका ॥

साखी—तुम निज सतगुरु सत्य हो, हम निज चीन्हा सोय ।

अचित सृष्टिको भेद कहो, अविगति पूछौ तोय ॥

धर्मदास तुम बडे विवेकी । तुम्हरे घटमें बुधि बड देखी ॥
 अर्चित्य सृष्टिको कहों पसारा । तेज अंड तिन्ह पायो सारा ॥
 बारहि पालंग अंड विस्तारा । तिहिमें पाँच तत्त्व हैं सारा ॥
 इनको बैठक आसन दीन्हा । अंड सीखपर लोक तिन्हें कीन्हा ॥
 प्रेम सुरति तिन कीन उपचारा । तिन्हते भयो अक्षर बिस्तारा ॥
 अक्षर सुरत तब मोहमें आई । ताते अंश चार निरमाई ॥

चारि अंश भये चारि प्रकारा । चौविध दीप चौविधहिं पसारा ॥
 प्रथम अंश पर माया भयऊ । सो पृथ्वि तत्त्वको बीज निर्मयऊ ॥
 दुसरे कर्म भये अवतारा । पालंग अठानवे कीन्ह विस्तारा ॥
 तिसरे अदली अंश निरमावा । शेषनाग सो नाम धरावा ॥
 चौथे अंश भए धर्म राई । जिन्ह पाप पुण्यको लेखा पाई ॥
 चारि अंश अक्षर ते भयऊ । चार अंश चार मत ठयऊ ॥
 तब समर्थ अविगति एक कीन्हा । पूरी नींद अक्षरकूं दीन्हा ॥
 चौसठ युगलौं सोए सिराई । तोलों कैल सुरति ठहराई ॥
 समर्थ सुरति जल तत्त्व समानी । कैल अंड की कीन्ह उतपानी ॥
 तेहि पीछे अक्षर पुनि जागा । मोह तत्त्व भये अनुरागा ॥
 चक्रित होय अक्षर बिलखाना । सोइ मोह सब सृष्टि समाना ॥
 अंड दृष्टिमें देखो भाई । व्याकुल भए यह किन निरमाई ॥
 समर्थ छाप अंडसिर दीन्हा । अक्षर छाप देखि सौ लीन्हा ॥
 सोई अंड जलमें बिराना । जिनको वेद नारायण माना ॥
 तहवां ज्योति निरञ्जन भएऊ । तिनको सब जग कर्त्ता कहेऊ ॥
 अक्षर सुरति समर्थकी बानी । तेहि गुण खेल भए उतपानी ॥
 निरंजन नाम अक्षर ठहराई । अर्चित भेद नहिं पावै भाई ॥
 कैलहिं देखा सकल पसारा । तब अक्षर सो बचन उचारा ॥
 देउ पिता मोहि आज्ञा सोई । जो कछु इच्छा उपज्यो मोई ॥
 सेवा करत सत्तर जुग बीता । तब मुख बोलै पुरुष अतीता ॥
 जीव पुत्र जहां पृथ्वीको मूला । तहां कर्म बैठे अस्थूला ॥
 सृष्टि भंडार कूर्मको भाई । सोलह माथ हाथ चौसठ पाई ॥
 चले निरंजन कूर्मलगि आये । पुरुष ध्यानते कर्म जगाये ॥
 उत्पति हमकूं मांगे देहू । वा देहो तौ मारिकै लेहू ॥
 तबहि कूर्म अपने मन मानी । एतो कैल भए अभिमानी ॥

हम माँगे कछु देव न भाई । जाउ पुरुष लगि वेगि सिधाई ॥
 कैल कूर्मते युद्ध निर्मयऊ । छीन माथा तीन पुनि लयऊ ॥
 लेकर माथै सुन्यमें आवा । कैल सुरति घट मोह समावा ॥
 तीनों माथे भक्ति तब लीन्हा । तबते अक्षरपुरुष डर कीन्हा ॥
 मनमें तब अभिमान समाई । तब कर जोरिके सेवा लाई ॥
 सोला चौकडा तब चलिआई । तब लगि निरंजन सेवा लाई ॥
 अक्षरपुरुष जो कीन्ह विचारा । तिन्हको समरथ वचन उचारा ॥
 विदेह बानि तब अक्षर पाई । सो बानीते कन्या भइ भाई ॥
 ताको बहुत सिखावन दीन्हा । अष्टांगी तिन कन्या कीन्हा ॥
 पुत्रि निरंजन लागि सिधाई । तुमको समरथ सदा सहाई ॥
 तब कन्या निरंजन लगि आई । एक पाँव पर सेवा लाई ॥

साखी—कहै कबीर ।

देखे पलक उधारिके, कन्या आगे ठाढ़ि ।
 उपज्यो मोहऽरु प्रेम तब, विप्रीत मनमें बाढ़ि ॥

चौपाई ।

पलक उधारि कैल तब देखा । अपने मनमें कीन्ह विवेका ॥
 कहै कैल सुनो तुम बानी । मोहिकारन पुरुष तोहिउतपानी ॥
 हम तुम कीजे सृष्टि पसारा । तीनहि लोक सकल महिभारा ॥
 तब अष्टांगी कैलसों कहाई । मोहि तोहि नाहीं होय सगाई ॥
 मैं तोरि बहिनी तू मोरा भाई । सो अनरीती सब दीन चलाई ॥
 कहैं कैल सुनो आदि भवानी । हमरे वचन तुम काहै न मानी ॥
 जो तुम कहा हमारा मानौ । तौ तुम उत्पति निर्णय ठानौ ॥
 तब अष्टांगी कहै बुझाई । बिन आज्ञा तोहि पुरुष रिसाई ॥
 बिन आज्ञा क्रूरम सिर छीना । ताते पुरुष अंत करि दीन्हा ॥

साखी-कहै कबीर ।

देखि स्वरूप कन्यहि को, मनमें रोष समाय ।

मनमें रोष भयो अति, कन्या लीन्हीं खाय ॥

लीलत कन्या कीन्ह पुकारा । पुरुष बचन ले हृदय सम्हारा ॥
तब सुरति बानते कैलहि मारा । कन्या तब उगलै बहि पारा ॥
एहि प्रपंच अक्षर तब कीन्हा । ताते कैल मती हरि लीन्हा ॥
कन्या सुरति तब गई भुलाई । जबते पेट कैलके आई ॥
पिता पिता कैल सो कहेऊ । मदन प्रचंड कैल छन भयेऊ ॥
अष्टांगी कैल एकमत कीन्हा । ताते सृष्टि रचवे मन दीन्हा ॥
कियो संयोग भयो त्रीवारा । जेठो ब्रह्मा लघु विष्णु कुमारा ॥
तीजे शंभु विष्णुते छोटा । येकही निरञ्जनहि के दोटा ॥

साखी-कहै कबीर ।

जैसे रूप निरञ्जनहिं, तैसे तीनों भाय ।

जे उत्पत्ति कैलकी, आगे सृष्टि उपाय ॥

चौपाई ।

करि प्रपंच शून्य इंडमें गयऊ । मनमें बहुत आनंदित भयेऊ ॥
एहि आनन्दमें गए भुलाई । ताते श्वासा सुरति उठाई ॥
तेहि श्वासाते वेद कढि आई । रूपनिधान चारों बने भाई ॥
हाथन पोथी सुसरस बानी । ताते कैल भयो अभिमानी ॥
चारि वेद सब मरम बतावा । तब चति अक्षरशून्यमें आवा ॥
कैल प्रचण्ड भयो बरियारा । तब अक्षरते बुद्धि विचारा ॥
येतो कैल औ जीव विचारा । समरथ छाप लियो टकसारा ॥
अक्षर चलै अचिन्त लगि गयऊ । महाशून्य छोडी तब दयऊ ॥
तब अचिन्त्य अक्षर समुझावा । यह अविगति गति काहु न पावा ॥

तुम तो सुरति हमारी हो भाई । कैल सुरति समरथ निर्मायी ॥
लक्ष जीव नित करै अहारा । सवा लक्ष नितप्रति निस्तारा ॥
अंशवंश मिलि एक मत कीन्हा । चारों ज्ञान बिचारि तब लीन्हा ॥
तुम गति हंससरूप हौ भाई । वह तो कैल जीव दुखदाई ॥
तुम समर्थको ध्यान लगावो । अंतर्गति समर्थ सुख पावो ॥
चारी ज्ञानमें निर्णय कीन्हा । सो निरणय अंशको दीन्हा ॥

साखी—कहै कबीर ।

कहे कबीर धर्मदाससों, एता सकल पसार ।

तीनशक्तिको खेल भयो, चौथे हंस उबार ॥

धर्मदास बहुतै सुख पावा । उठि सतगुरुसों विनती लावा ॥
सांचे वचन तुम्हारी बानी । आदि अंतकी निरणय ठानी ॥
कौन है अंड कौन है अंशा । काहे अंश कौन है वंशा ॥
कौन कैल कौन गुण धारी । कौन सृष्टि कौन संसारी ॥
एती बात मोहि सों भाखो । और गुप्त गोये जिनि राखो ॥

साखी—कहे धर्मदास ।

विन देखी सबही कहै, सुनि पाइहै काम ।

सोइ अदेख तुम दिखावहु, आदि अंत परमान ॥

चौपाई—सतगुरु कबीर उवाच ।

तब सतगुरु मनमें बिहसैनै । तुमसों धर्मनि निर्णय ठानै ॥
तेज अंड अक्षर है वंशा । अचित्य अंड सोहं गहै हंसा ॥
निरंजन कैलचारि गुनधारी । तीन सृष्टि अविगति संसारी ॥
तेज अंड अचित है अंशा । नववंश अक्षर है वंशा ॥
सत्य अंड जोहं गहै अंशा । सोरहे तिनके उपज्यो वंशा ॥
पालंग पचीस तासु बिस्तारा । पातालपाँजि ते तिनको बैठारा ॥
तिसरों अंडहि क्षमा बखानी । अकह अंश तिन्हकी रजधानी ॥

अकहनामते सताविस बंशा । तिन्हके सकल और हैं अंशा ॥
 चौथा धीरज अंश है भाई । ताते सुकृत अंश निरमाई ॥
 वंश बयालिस है कडिहारा । तिनकी सनद चलै संसारा ॥
 पाँचों अंड सुमत निर्माई । अंश हिरम्मर बैठक पाई ॥
 तिन्हके वंश सात परवानी । इह सब भेद लेहो पहिचानी ॥
 पाँचहि अंड आठ भए अंशा । सात सुरति इक्कोत्तर वंशा ॥
 चारि अंडको एक विचारा । दोए करीको भेद अपारा ॥
 एक वंश कोई पार न पावै । सतगुरु निजही भेद बतावै ॥

खुद होए कहै ।

सुरति सरूप हमहीं सब कीन्हा । मान बडाई अंशोंको दीना ॥
 जबे अचित्य सुरत ठहरानी । सुरति समर्थ घटआनि समानी ॥
 दोइ मध्य एक आए समाई । तिन्हको नाम अक्षर ठहराई ॥
 अक्षर इच्छा उपजो भाई । दुसरा अंश कैल होय आई ॥
 आठों अंस कालकी बानी । अक्षर घट जो आए समानी ॥
 सो वासा होय बाहिर कडिआई । तिन्हकी गति कोई विरलै पाई ॥
 पांच प्रगट तीन गुप्त पसारा । इनके अंश अग्यारा सारा ॥
 चारि अंशभवभार हम दीन्हा । चारि वेदमें निर्णय कीन्हा ॥
 तीन देव सृष्टि अधिकारी । उपजनिबिनसुन दुखसुख भारी ॥
 तिन्हें चौरासी लक्ष बनावा । जीव अनेक बहुत उपजावा ॥
 यह अविगति काहू नहिं पावा । सारथ ऐसा खेल बनावा ॥

साखी-वेद कितेब जाने नहीं, पावे ग्यानी थाह ।

तीन अंशलों सबही खेले,आगे अगम अथाह ॥

धर्मदास उवाच ।

धर्मदास विनती चितलाई । तुम्हरे शरण मुक्ति गति पाई ॥
 उत्पति कारण हम सब पावा । वंश अंश दूनो निरतावा ॥

लोक दीपको ठौर बतायो । बैठक अस्नेह हंस चिन्हायो ॥
साखी-कैसे सरूप समर्थ हैं, कैसे हैं सब हंस ।

केहि करनीते पाइये, कैसे कटै कालकी फंस ॥

चौपाई-सतगुरु कबीर उवाच ।

कहे कबीर सुनो धर्मदासा । अल्पबुद्धि घटमाँह निवासा ॥
सत्य लोक है अथर अनूपा । तामें है सत्ताविस दीपा ॥
सत्त शब्दका टेका दीना । अगर पोहुमी रची तिन लीन्हा ॥
सागर सात ताहि विस्तारा । हंस चलै तहां करै विस्तारा ॥
अग्रवास वह सुवरन कांती । तहां बैठे हंसनकी पांती ॥
पुहुपद्वीप है मध्य सिंहासन । कल्पदीप हंसनको आसन ॥
अविगत भूषण अविगत सिंगारा । अविगत वस्त्र अविगत अहारा ॥
कमलस्वरूप भौम्य है भाई । कहाँकी उपमा देउँ बताई ॥
आभा चंद सूर्य नहिं पावहिं । भूल चूकके शीस नवावहिं ॥
कला अनेक सुख सदा होई । वह सुख भेद इहां लहे न कोई ॥
निरतै हंस पुरुषके संग । नखशिख रूप बन्यो बहु अंगा ॥
पुरुष रूपको बरनै भाई । कोटिभानु शशि पार न जाई ॥
छत्र सरूप को बरणै भाई । अविगत रूप सदा अधिकाई ॥
सत्ताइस द्वीपमें करे अनन्दा । जो पहुँचे सो काटें फन्दा ॥
हंस हिरम्बर और सोहंगा । श्वते अरुण रूप दोउ अंगा ॥
विमल जोतको है उजियारा । झलकै कला पुरुषमें भारा ॥
चारि शब्दका लोक बनावा । पांच सरूप लै हंस समावा ॥
सत्य शब्दकी भूमि बनाई । क्षमा शब्द आसन निरमाई ॥
धीर्ज शब्दसों छत्र उजियारा । सुमत शब्दसों वस्त्र पसारा ॥
प्रेमशब्दसों हंस निरमाई । आप शब्दते लोक समाई ॥
दीपन करै दीप हंस बिहारा । तहां पुरुष निर्मल उजियारा ॥
जब विहँसे मुखमोड सुहाई । निरत हेरि विहँसे चितलाई ॥

चिकुरझलक बरनी नहिं जाई । कोटिनवार शशि वारन जाई ॥
 एती सिद्ध सतगुरु फरमाई । मानुष रूपन्हि लोके जाई ॥
 अविगति रूप है लोक हमारा । करनी भेद कहो निर्धारा ॥

करनी भेद ।

काया करनी चार है भाई । मनकरनी दोई लेहो उठाई ॥
 प्रथम करनी चौका है सारा । तिनकी सन्ध तिनहुका विचारा ॥
 दुसरे पुनि चरणामृत कीन्हा । तिसरे शीत प्रसाद जो लीन्हा ॥
 चौथे साधुकी सेवा करहु । यम औ कालसों कबहु न डरहु ॥
 काया करनी कही विचारी । मन करनी सो हंस उबारी ॥
 पारस परशे कञ्चन होई । लोहा वासों कहै न कोई ॥
 स्वाति सनेहकी करनी है भाई । सो करनी काहु विरले पाई ॥
 स्वाति बून्द सीप जो लेही । बून्द स्वरूपहि पलटे देही ॥
 इक करनी है हंस अनैदा । पहुँचे लोक कौंपि यमफंदा ॥
 लोक वेद कुल जगत बिसारे । बोलत वचन जीव निवारे ॥
 माया चारि कालकी भाई । इनहि जीव राखे उरझाई ॥
 इह छोडे सद्गुरुके ओटा । मेटे कर्म भ्रम सब खोटा ॥
 दोइ माया सद्गुरुके ठहराई । दोय करनीसे सत्य मिलाई ॥
 हंस करनि तीनलोक सो न्यारी । सद्गुरु मिले तो कहै विचारी ॥
 धर्मदास कर चोका प्रमाना । मेटो कुल पाखंड अभिमाना ॥
 सोरा असंख्य युगगयो सरसाई । काहु न खबरि समरथकी पाई ॥
 जीव निकाल यम धरधर खाई । चारि वेद सब जक्त भ्रमाई ॥
 धर्मदास तुम अंश हमारा । तुमसों वचन कहौं टकसारा ॥

साखी—कहै कबीर ।

मैं कबीर बिचलौ नहीं, नाम मोरो समरत्थ ।
 ताही लोक पठाइहों, जो चढ शब्दके रत्थ ॥

धर्मदास उवाच ।

धर्मदास तब सौंज मैगाई । सोरह अंश तब दीन्ह चिन्हार्ई ॥
 चौका पुरस तब युक्ति बनाई । तनुका तोड जल अचवाई ॥
 लिख्यो पान समरथ सहिदानी । दीन्हो सन्देश सत्यकी बानी ॥
 तीनि अंशकी लगन विचारी । नारीअर अंशसों हंस उवारी ॥
 नारी पुरुष होय एक संग । सद्गुरु बचन दीन्ह सोहंगा ॥
 सोहंग शब्द है अगम अपारा । तुमसों धर्मनि कहौ विचारा ॥
 पेड सोहंग और सब डारा । साखा सोहं कीन्ह प्रकारा ॥
 प्रथम सहज सोहंग की बानी । दूसरि इच्छा सोइ उतपानी ॥
 तिसरे मूल सोहं है भाई । चौथे सोहं सोहं निर्माई ॥
 सोहंगते भए सोह अतीता । जाको नाम जो कह्यो अचिता ॥
 अचितहिते अक्षर सोहंगा । अक्षर सोहंगते कैल सोहंगा ॥
 कैल सोहंगते त्रिगुण सोहंगा । सोहंगते सकल सृष्टिको रंगा ॥
 अमृत वस्तुते नौ परकारा । सोहंग शब्दके सुमिनर सारा ॥
 सो सोहं अचीन्हि जो पावै । सोहं डोर गहि लोक सिधावै ॥
 जा घट होई सोहं मतसारा । सोई आवहु लोक हमारा ॥
 सुरति सोहं हृदये महँ राखो । परचे ज्ञान तुम जगमें भाषो ॥
 एती सिद्धि सोहंकी भाई । धर्मदास तुम गहौ बनाई ॥
 चौका करि दीन्हो परमाना । तब जीवहि छूटे अभिमाना ॥
 अजावन बीरा आवै हाथा । तब हंसा चले हमरे साथ ॥
 ताकैं पुनि चहि आवै डोरी । टूटे घाट अठासी करोरी ॥
 कुल करनी जिन्हखोय निसाई । काटि फंद निज वरकूं जाई ॥
 तन मन धनको मोह न आवै । सो जिव दर्स हमारा पावै ॥
 गुरुसों अंतर कबहुँ न कीजै । साधु सन्त सेवा मन दीजै ॥
 एती सनद जीव उजियारा । ताको सुकृत आवै सठिहारा ॥
 सोहं करनी सोहं विचारा । सोहं शब्द है जिव उजियारा ॥

(१०६)

कबीरबानी ।

साखी—कहै कबीर ।

धर्मदास उन मन बसौ, करौ शब्दकी आस ।

सोहं सार सुमरन करो, मुनिवर मरे पियास ॥

चौपाई—धर्मदास उवाच ।

सत्य नाम संतन सुखदाई । कथा अनूप कहों चितलाई ॥
बन्दौ गुरु दोऊ कर जोरी । जिमि कलहिते तुम बँद छोरी ॥
को प्रवीन है लोक तुम्हारा । सो मोसों सब कहौ विचारा ॥
बस्ती सून्य बिचकी सब भाखो । जो देखो सो गोय जिन राखो ॥

धर्मदास वचन ।

साखी—जैसे है तैसी कहों, मैं बलिहारी जाउँ ।

अंस वंस निवारके, जीव सकल मुक्ताउँ ॥

चौपाई ।

तुमरे कारन भेद हम दावा । सर्वमूल गुरु समर्थ आवा ॥
लोक परलोक दोऊ हम पाए । जब सद्गुरु मोहिं दर्श दिखाए ॥
पांजी भेद कहौ समुझाई । कौन अंस कौन लोक बैठाई ॥
केते पवन इहाँते होई । जहां समर्थ बैठक सोई ॥
वेद कितेकी संज्ञा दीजे । इतनी दया गुरु हमपर कीजे ॥

साखी—लोक भेद केते वहै, पांजी भेद कहो समुझाय ।

अंस वंस अस्थान बतावो, सब संशय मिटि जाय ॥

सद्गुरु पेडी भेदः पठ्यते ।

धर्मदास मैं कहा समुझाई । पांजी अंस को भेद बताई ॥
तज अंडवारा पलंग बिस्तारा । मध्यमें शून्यदोयपालँग अधियारा ॥
मृतुलोकमें सालोकमुक्ति प्रमाना । ताको नाम मानसरोवर स्थाना ॥

चारिमुक्तिकी कमाई अस्थान ।

धीरज अंश तहां बैठारा । चौसठ कामिनी संग बिहारा ॥
मध्य सरोवरपिंड सिला लै धारी । चौसठ कामिनी निरते घरियारी ॥
जो कोई बाम मार्ग को ध्यावै । सो सालोक्य मुक्तिको पावै ॥
पेडी ॥ १ ॥ तहांते वैकुण्ठ चौबीस कोटी रहाई । तहां सुमेर रह्यो
ठहराई ॥ तहाँ धर्मराय अविनासी रहही । जो पाप पुण्यका लेखा
लहही ॥ तहां रंभा सामीप्य मुक्त है सोई । नवसौ सखी ताके
संग होई ॥

(पेडी २ वैकुण्ठको विस्तारा)

पांच सीखर सुमेरके रहही । पांचों अंसकला तहां धरही ॥ ईशान-
कोन ध्रुवआसन कीन्हा । वायु कोन कुबेरको दीना ॥ नैऋत कोन
जमको अस्थाना । अग्नि कोन इन्द्रासन ठाना ॥ जिनकूं धर्मराय में
कही । मध्यसिंघासनविष्णुको सही ॥ सहस्र साठ जोजन वैकुण्ठ
प्रमाना ॥ ६०००० तेहिके आगे सुन्य डोर बन्धाना ॥ निर्बान मार-
गको जो कोई ध्यावै ॥ सो सामीप्य मुक्ति वैकुण्ठको पावै । पेडी ॥ २ ॥
वैकुण्ठते शून्य अठारह १८ करोरी ॥ तहां लागी सुन्यकी डोरी ।
सून्यमध्य है दीप अनूपा । आदि निरंजन तहां जोतिसरूपा ॥ तहां
अधियारी हैं सुन्यमँझारा । दोय पलंग है सुन्यविस्तारा ॥ तहां
कोटि चारि है जोति उजियारी ॥ तहां अष्टंगी है शक्ति नारी ॥
सारूप्य मुक्ति सो तब पावै । अघोर मार्गको जो कोई ध्यावै ॥

चौथी-मुक्ति आगे अस्थान ।

ते अक्षर आगे अस्थाना । एक पलंग तहांते परवाना ॥ तहाँ
अक्षर जोग माया विस्तारा । चारि अंश तिनके अधिकारा ॥ तहाँते
चारि वेदपरवाना । चौथी मुक्तिको येहि ठिकाना ॥ तहाँते आगे कोई
ना गएऊ । एहि मता चारों बेद मिलिठयेऊ ॥ चारों मुक्ति सम्पूरना ॥

(१०८)

कबीरबानी ।

(पेडी) तहाँते चारी मुक्तिको जाना । तहाँते एक इण्ड परवाना ॥
तहाँते है इण्डको छौरा ॥

इण्डके आगे अनहद अँजोरा । आगे असंख्य शून्य विस्तारा ॥
तहाँ अंचितनाम अंस करै व्यौहारा । अधर दीप है ताकर नामा ॥
प्रेमध्यान ताकर विसरामा । प्रेमसुरति नचि बारंबारा ॥ ताके सँग
सखि बारहजारा ॥ १२००० ॥ तहाँ आगे सोहं अस्थाना । तहाँ तीन
असंख बीच सून्य प्रमाना । तहाँते आठ अंस उपजाई । उन्हें वंस
अंसके स्थान बनाई ॥ तहाँ ओहं सोहं होत उजियारा । तिन संग हंस
छतीस हजारा ॥ ३६००० ॥ ११ ॥ पेडी ॥ तेहि आगे मूल गति
अस्थाना । तहाँ बीच सून्य आग असंख्य प्रमाना । हंसा तिन सँग
बावना हजारा ॥ ५२००० ॥ तिन्हते पांच ब्रह्म उपजारा ॥ पेडी ॥ १२ ॥
आगे सुरति मूल इच्छाको मूला । स्वाति सनेह जाको है स्थूला ॥
वीस सून्य चार असंख निरधारा । तिनसँग हंस पचीस हजारा
॥ २५००० पेडी ॥ १३ ॥ तिनके आगे सुरति निशानी ।
सर्वोत्पत्तीकी रजधानी ॥ बीच शून्य दो असंख्य प्रमाना । तिनते
भये अंकूर ठिकाना ॥ सोरा असंख्य तिन्हते विस्तारा । हंस तिनहि
संग पांच हजारा ॥ ५००० ॥ धर्मदास बचन सुत सांचे । ताके
संग हंस सब बांचे ॥ पेडी ॥ १४ ॥ तहाँ आगे अंकूरको प्रमाना ।
तिल प्रमान द्वार अनुमाना ॥ विहंग शब्दकी लागी डोरी । तेहि
संग हंस गए पुरुष लगि सोरी ॥ पेडी ॥ १५ ॥ बीच अधियारी घोर
अपारा । एक असंख्य दस लाख विस्तारा ॥ १०००००००००००
१००००००० ॥ आगे हमार निजलोक ठिकाना । ताको मर्म काल
नहिं जाना ॥ पेडी ॥ १६ ॥

साखी-कहे कबीर ।

इतना पांजी भेद है, धर्मनि सुनि चितलाइ ।
समरके प्रतापते सब, हंस लोके जाहि ॥

चौपाई ।

सोरा असंख्य उत्पति पसारा । चार असंख्य शून्य बिस्तारा ॥
 सातशून्य दोउ बेशून्य कहावै । एकै शून्य कोई विरला पावै ॥
 तहांते तीन शून्य भए प्रवाना । आदि अंश शून्यसुरत ठिकाना ॥
 तिहिते तीन भए परकारा । चार सुरतको सकल पसारा ॥
 प्रथम शून्य लोकोते लागी । तीनिसुरत भए शून्य अनुरागी ॥
 आठ अंश अरु वंश पसारा । तँह लागि देखो शून्य विस्तारा ॥
 इतना जीके होय निन्यारा । ताके आगे लोक हमारा ॥
 हम चीन्हे और गुरुको सेवै । कर्म तोडिके जुग जुग जीवै ॥
 लोक वेद कुल माया धारी । काल फंद यम फंद विचारी ॥
 निसदिन सुरत सतगुरुसों लावै । साधु संतके चितहि समावै ॥
 जनपर दाया सतगुरु केरी । तिनकी कटै कर्मकी बेरी ॥
 करनी कर अभिमान भुलाई । तब छूटे यम धरि ले आई ॥
 करनी करिये गुरुके साथ । ताकु काल उठि नावै माथा ॥
 करनी करी जो होय अधीना । ताकों वासा लोकमें दीन्हा ॥
 करनी करे निज सुत लगावै । ताको सुकृत लोक पहुँचावै ॥
 करनी करत कसरि होय आई । तबहीं काल घर बाजु बंधाई ॥
 सेवाकरि राखे मन आसा । तन छूटे जीव परिहै सासा ॥
 सद्गुरुसों अभिमान जो करिहै । तन छूटे जीव यमफंद परिहै ॥
 बंस टेक औ नाम हमारा । पंथपूजा सद्गुरु कनहारा ॥
 चारों अंस चिन्हें जो पावै । तन मन धनसों प्रीति लगावै ॥
 माता पिता बंधु सब भाई । पुत्री पुत्र हेतु लोलाई ॥
 घरकी घरणी पुरुष है सोई । इनकी प्रीति न कारज होई ॥
 तासों काल रहै मुख गोई । नारी पुरुष सुरति कारज होई ॥
 गुरुसों अंतर कबहु न राखै । प्रेमप्रीतिसों दीनता भाखै ॥

गुरुको निंदे अक्षरकूं ध्यावे । बिन गुरु अक्षर कैसे पावे ॥
 गुरु संगती शब्द लखावै । जाके बल हंसा घर आवै ॥
 गुरुस्वाती गुरुरूप स्वरूपा । गुरू पास है आदि अनूपा ॥
 गुरुभृंगी गुरु सो बहुरंगी । कीटते करही आप हित संगी ॥
 गुरु है सांचे सिद्ध समाना । गुरु मलयागिर वास प्रमाना ॥
 गुरु सद्गुरु दीपक अस होई । ताको सनेह कहों मैं सोई ॥

गुरुसीखको सनेहवर्णन ।

जैसे स्नेह कमल और भौरा । जैसे स्नेह चन्द अरु कोरा ॥
 जैसे स्नेह मीन जल अंगा । जैसेहि स्नेह है दीप पतंगा ॥
 जैसे स्नेह मृगा अरु जन्त्री । जैसे स्नेह चकमक और पथरी ॥
 जैसे स्नेह स्वाति और पपीहा । जैसे स्नेह चुम्बक अरु लोहा ॥
 जैसे स्नेह मीन अरु नीरा । जल बिछुरै वह तजै शरीरा ॥
 ऐसे गुरु शिष्यको सन्देशा । मुक्ति होय गुरु मिट्यो अँदेशा ॥
 एते स्नेह सीख सहिदानी । इतने गुरुके तत्त्व बखानी ॥
 गुरुसनेह सीख जो पावै । गुरु रूप होय शिष्य समुझावै ॥
 गुरुकी दया चलौ रे भाई । बिन गुरु पार न पावै कोई ॥
 गुरु सोई सत्य शब्द बतावै । और गुरु कोई काम न आवै ॥

साखी-उपमा कहा दीजिये, पटतर कोहू नाय ।

पलपल करो जु बन्दगी, छिन छिन देखो ताहि ॥

धर्मदास उवाच ।

धर्मदास विनती चितलाई । कहनी योग गुरु देहु बताई ॥
 योग ध्यान भाखो टकसारा । जीव उतारौ भवजल पारा ॥
 कायास्थान आदि ते भाखो । कमलभेद गोयें निजराखे ॥

साखी-कहै धर्मदास ।

तुमही करता आदि हौ, जिन सब रचना कीन्ह ।

सत्य शब्द सार निमौलिके, सतगुरु साँचै दीन्ह ॥

कहै कबीर योग विधि बानी । जाते पुरुष सो हो पहिचानी ॥
 प्रथम कमल कहूँ रे भाई । चारि पंखुरी तोहि बनाई ॥
 सिद्ध पवन गनैस है सोई । छैसे जाप अखंडित होई ॥
 दुतिय कमल नाभी तर होई । षष्ठ पंखुरी ताकर सोई ॥
 ब्रह्मवास तेहि कमलमें होई । छै हजार जाप तहाँ सोई ॥
 ६००० । २ तिसरे कमलकी आठ पंखुरी । लक्ष्मीनारायण मूर्ति
 तहां धरी ॥ छै हजार जप तहां प्रमाना । जो कोई साधू साधे प्राना ॥
 ६००० ॥ चैथे कमल शक्ति शिव रहिऊ । षट सहस्र जप तहां
 कहिऊ ६००० ॥ बारा पंखुरी ताकर भाई । सोहैं तत्त्वमें ध्यान
 लगाई ॥ पाँचै कमल अकाशको बासा । सोरा पंखुरी तहाँ निवासा ॥
 अमी चन्द्र है ताकर नामा । सहस्र जाप ताको विश्रामा ॥ १००० ॥
 तहाँते कला अवतारकी आवै । चारि वेद ताके गुण गावै ॥ अब मैं छठो
 कमल कहि भाखों । तीन पंखुरी ताकी पुनि राखों ॥ परमात्मा ताहि
 कमलमें रहई । एकसहस्र जाप तहँ करई ॥ १००० ॥ ६ सहस्र जाप
 दोए पंखुरी ॥ १००० ॥ षष्ठ ध्यानतिहि भीतर धरी ॥ गम्य अगम्य
 अंश दो रहई । तीन देव वहाँ लगि कहई ॥ आठे कमल दश पंखुरी
 कहिये । अगिन वान ताके बल कहिये ॥ कामदहन ताको है नामा ।
 जो लखे सो पावै विश्रामा ॥

प्रकाश ।

नमो कमलकी अविगत बानी । अन्त पांखुरी ताकर प्रानी ॥
 ता मैं पूरण ब्रह्म अखंडा । निसवासर धरणी नहिं चंदा ॥
 एक नाम सत्य है बानी । ताहि नाम सृष्टी उत्पानी ॥

उनकी छाया सबको भाई । तौन छाँह सब घटहि समाई ॥
 दो सरूप आदि सहेदानी । दो सरूप काया बंधानी ॥
 तिसरा रूप रहितहै आपै । भेद लखो तिहि गुरु प्रतापै ॥
 तेहि प्रतिमा दोय हैं भाई । एक नारि एक पुरुष कहाई ॥
 जिनका भेद कहों समझाई । एक नाद एक बिंदु कहाई ॥
 नाद सनेही सुरति हमारी । बिंदु सेनही शब्द बिचारी ॥
 माया नां सुरतिहै नादा । चार नाम है एक समादा ॥
 नरमन शब्द और कहि बिदा । चार नाम भये कहिये बिदा ॥
 नरही नाम मनुष्य बिचारा । मन नाम काल अवतारा ॥
 शब्द नाम सूर्यको दीन्हां । बिन्दु नाम नीरको लीन्हां ॥
 मेदी नाम इस्त्रीको चीन्हां । माया नाम मृतक जो कीन्हां ॥
 सुरति नाम चंद गहि दीन्हां । याहि सूरती मम करि लीन्हां ॥
 रज्जु नाम श्वासाघट राच्यो । पुरुषहि एक सुरतिको साच्यो ॥
 शब्दको धातू जाही थापा । बनावन हारौ आपै आपा ॥

खुद होई कहें कबीर ।

जहां तहां हमही है भाई । दुबिधा छोडे काल भगाई ॥
 दुबिधा काल बडो अन्याई । तन छूटेते लेइ धरि खाई ॥
 पिंडका लेखा दीन्ह चिन्हाई । पिंड ब्रह्मांड लेहु अथाई ॥
 अनंत पंखुरिका कमल है भाई । शुक्ल हंस तेहि माहि समाई ॥
 आएँ कमल उत्पत्ति पसारा । तेहिमें जीव कीन्ह विस्तारा ॥
 दुसरो कमल सहज है स्थाना । तिन्हते सृष्टि भई बंधाना ॥
 तृतीय कमल इच्छा उतपानी । चौथा मूल ले बोले बानी ॥
 पाँचये सुरति सोहंग बंधाना । आठ अंश तिन्हके परवाना ॥
 छठौ कमल अचिंत्यको बासा । निस बासर जहँ प्रेमविलासा ॥
 ताते कमल अक्षर ठहराई । तिनकी तो अस्तुति वेदन गाई ॥

अठवें कमल कैलको वासा । नाम निरञ्जन तहाँ निवासा ॥
नौमे कमल तीन लोक बनाई । तीनि देव तहँ रहै भुलाई ॥
पिंड ब्रह्मांडको लेखा सारा । ज्ञानी पंडित करौ विचारा ॥

साखी—कहै कबीर ।

पिंड ब्रह्मण्डको लेखा, हम दियो प्रगट बताय ।

कहै कबीर धर्मदाससों, तुम निर्भय लोक जाय ॥

धर्मदास वचन—चौपाई

धर्मदास पूछै चित लाई । सद्गुरुसे उठि विनती लाई ॥
सांचे साहबकी बलिहारी । कैल पुरुषकी जुगति विचारी ॥
पंथ विकट कोइ भेद न पावै । जो नहिं सद्गुरु आप लखावै ॥
कैसे कै गुरुवाई करहूँ । कैल पुरुषसों में बहु डरहूँ ॥
प्रपंची है कैल अपारा । मोसो चलै न पंथ तुम्हारा ॥
जंबुद्वीप है यमको देशा । कैसे चलिहै मुक्ति उपदेशा ॥
चार वेदमें सब जीव राचै । कैल फांसते कोइ ना बाचै ॥
हम सेवक हैं आज्ञाकारी । सोइ करो मोहिं लेहु उवारी ॥

साखी—कहें धर्मदास ।

हमसों पंथ चलै नहीं, काल अपबल वीर ।

घाट बाट सब रोक है, जिय कस लागे तीर ॥

चौपाई—सद्गुरु कबीर उवाच ।

धर्मदास तुम्हें सांच न आवा । अंतर खोली में तुम्हें बुझावा ॥
का पुनि करि है काल तुम्हारा । सिरपर समरथ है रखवारा ॥
मारहु कैल रसातल जाई । केती कैल हमही निर्माई ॥
केतिक कैल भए मम आगे । केति सृष्टि उत्पत्ति प्रलै भागे ॥
सत्य वचन सुनिये चितलाई । कैल जुगति में देहु लखाई ॥
सत्त चला है सबते न्यारी । तीनहि लोक प्रपंच पसारी ॥

कैल सकल युग डारो खाई । एकौ जीव लोक नहिं जाई ॥
 ताते समरथ मोहिं फरमाई । सांचै जीव आनु मुक्ताई ॥
 कर्म काल है बहुत अपारा । तुमसों धर्मनि कहां विचारा ॥
 तीन सुरतिका खेल नयारा । भिन्न भिन्न तिनको विस्तारा ॥
 चार प्रकारके ज्ञान ।

अचित अंश समरथको भाई । बारा पलंग राज तिन पाई ॥
 ताते ब्रह्म सृष्टि भई भाई । ब्रह्म ज्ञाति नहीं उपजाई ॥
 ब्रह्महि लरनि ब्रह्मकी बानी । एके मारग एक रहानी ॥
 तिनको चिह्न चले संसारा । अक्षर अतीत नाम है सारा ॥
 जो कोइ एहि मारगको ध्यावे । अचित लोकमें जाय समावे ॥
 प्रेम सुरति उहाँ मंगलचारा । तिनके सँग सखि बार हजारा ॥
 अब अक्षरको कहूँ बिचारा । अक्षर कीन्हा अविगति विस्तारा ॥
 जीव सृष्टिको कीन्ह पसारा । अनभै ज्ञान कीन्ह विस्तारा ॥
 अनभै करनी अनभै वानी । अनभै चाल है अनभै रानी ॥
 तिनके चार अंस हैं भाई । आठहि सुरति नहीं ठहराई ॥
 नीर पवन दोउ गहो निसानी । सुरतियोग अनहद सहिदानी ॥
 यहि प्रकार जो ध्यान लगावै । अक्षर लोकमें जाय समावै ॥
 सुरति योग है महा हितकारी । बीस हजार तिन्ह जीव उबारी ॥
 तिसरे कैल निरंजन राई । तिन पुनि माया सृष्टि उपजाई ॥
 माया सृष्टि है तीस हजारा । त्वचा ज्ञानको कीन्ह विचारा ॥
 तीर्थ व्रत जप तप है करनी । क्रिया कर्म आचार है रहनी ॥
 इच्छा वांछित जो करनी करही । सो फल लेहि जन्म जब धरही ॥
 जोगहि दान यज्ञ मन लावै । चारिहुं वेद साखी समुझावै ॥
 कोउ राजा कोउ पंडित भाई । कोउ सिद्ध कोउ साधक हाई ॥
 चार अंस चारों फल पाई । माया सृष्टिको धरधर खाई ॥

ताके संग सखी बारा हजारा । तहां महंमद गये सुखसारा ॥
 तेहि सुखको उन्ह लहे भाना । आगे ओहं सोहंके स्थाना ॥
 चौथी सृष्टि त्रिगुण परकासा । जो उपज्यो अक्षरकी श्वासा ॥
 तिनके ज्ञान क्षुद्र है भाई । जँत्र मँत्र औ वेद बनाई ॥
 राग रँग पूजा चतुराई । अहंकार मद गर्भ भुलाई ॥
 जीव भोजनते करे अहारा । नौलाख जीवसँग तिनके धारा ॥
 तँहिके ज्ञान जग रहे समाई । घर घर आये कुल बरन दढाई ॥
 कोई उग्र कोई क्षुद्र कहावै । कोई जीव कोई नरियर खावै ॥
 कोई रोगी औषध भावै । कोई देवी कोई देव कहावै ॥
 कोई प्रेत होय बोले आई । इह बिधि सकल जीव भरमाई ॥
 त्री देवा गुण रूप निवासा । इन सब भेद कीन्ह परकासा ॥
 पाहन पूजा तिन ठहराई । कहूँ विष्णु कहूँ शम्भु कहाई ॥
 ब्रह्मा तहां वेद धुन करहीं । विष्णु रूप तहँ पूजा धरहीं ॥
 शंभु भये फलके अधिकारी । तीन देव यह युक्ति विचारी ॥
 इहि प्रपंच पांच मुख बानी । तेहि प्रपंचमें जीव भुलानी ॥
 शुक्लहि पांच काल सहेदानी । जाये लै देइ नर्ककी खानी ॥
 धर्मदास तुम इन विन राचौ । सत्य चाल गहि कैलसो बांचौ ॥

चारि सुरतिका लेखा ।

चार सुरतिका भेद निन्यारा । सो सब खोलि कहूँ भण्डारा ॥
 तिनकी सनद एक है भाई । तेहि सनद लेजाय लेवाई ॥
 यह ज्ञान ताकी चारों बानी । पांचे समर्थक पांच प्रमानी ॥
 चारों गुरु चारी हैं बानी । पांचे शब्द सुरति सहिदानी ॥
 पांचों भेद हैं अगम अपारा । इह पांचों सर्वांग बिचारा ॥
 चार अँश चार अण्ड प्रमाना । एकै सनद एक बन्धना ॥
 चारों गुरु हैं जगमें आवा । तिन भवसागर पंथ चलावा ॥

चारों गुरुकी पेडी ।

प्रथम धर्मदास तुम्हें भाई । वंश बयालिस है अधिकार्ई ॥
 दुसरे सत्त्व बंकेजी राजा । सत्ताइस अंश तिह संग विराजा ॥
 तिसरे गुरु चतुर्भुज हैं भाई । सोरा अँश तेहि सँग समाई ॥
 चौथे गुरु सहतेजी भाई । सात अँस मत तत्त्व बनाई ॥
 चारहि गुरू मता अर्थावा । जीव सरूप हैं जगमें आवा ॥
 चार बानी ।

चार बानि लै तुम्हें समुझावा । प्रथमहि कोटि ज्ञान कहि आवा ॥
 धर्मदास तुम करो विचारा । कोटिबान है ज्ञान पसारा ॥
 दुसरे है टकसारकी बानी । रायबंके जैसा निरणय ठानी ॥
 टकसार भेद चढि हारी लेखा । जो पेखे सो सत्यलोकहि देखा ॥
 नीर पवनको कीन्ह विवेका । तिसरे मूल ज्ञानका एका ॥
 राय चतुर्भुज लीन्ह प्रमानी । चारों गुरू मुक्ति फलदानी ॥
 चारि गुरू मुक्ति कडिहारा । बहु जीवनको करिहै उबारा ॥
 साखी—कहे कबीर चारि बानि, खानी चार ज्ञान निधान ॥

चारि पदार्थ चारि वेद, चारि गुरू प्रमान ॥

धर्मदास उवाच ।

हम चारोंको गुरुकर थापै । पांचे अर्चित राजा है आपै ॥
 तीन अंश वे कहां रहे छाई । तौन भेद गुरू कहो समुझाई ॥
 तिन्हकी कला कहौ गुरू सांचै । औ पुनि कौन खेलमें रांचै ॥

साखी—सत्य सत्य मोसो कहो, कछु ना राखौ गोय ।

सुर नर मुनि ऋषि सबही ठगे, रीते चले सब रोय ॥

चौपाई—सद्गुरु कबीर उवाच ।

धर्मदास घटभय उजियारा । ताते अगम्य सुर्ति विचारा ॥
 आठ अंश सब जमा है भाई । चारि अंश सब ठांव बनाई ॥
 अविगति मोसन कहा न जाई । मैं जो कहों तुम धरौ समाई ॥

पाँचों सुत पाँचों अण्ड पाई । दोई अंश लै गुप्त बैठाई ॥
 अचित बून्द तब तिनही दियऊ । तिनको नाम अक्षर तिन ठयऊ ॥
 पांच अंश नहिं पावत लेखा । और अंशको कहूँ विवेखा ॥
 चार अंश अक्षर सेहेदानी । जिनते उपजी चारों खानी ॥
 देखि अंश मोह तब आवा । दूसर अंश घट आय समावा ॥
 त्रिगुण शक्ति घट गई समाई । तब अक्षरको निद्रा आई ॥
 सोरा चौकडी सोये सिराई । आठवो अंश जलमाँहि समाई ॥
 अंडसरूप जो जलमाँ दीन्हा । यहिअविगतिसबसमरथकीन्हा ॥
 अक्षर जग्यौ निद्रा गई भाई । देखि अंड व्याकुलता आई ॥
 तेहि अंडमें एक निशानी । सो अक्षर पाई सहिदानी ॥
 अक्षर दृष्टिसों अंड बिहराना । तिहिते कैल भयो अभिमाना ॥
 तिन्हके चार वेद भये बंसा । चौथे अंश कलानिधि तंसा ॥
 मनमें अक्षर संख्या आई । यह तो काल समर्थ निरमाई ॥
 तेहिते शक्ति कीन्ह तिवाना । श्वाससुरति अन्तर बिलखाना ॥
 आठों अंश घट रहे समाई । स्वासा संग घट बाहर आई ॥
 सोरा कला अष्टांगी अंगा । रूपकला वाही सबसुख संगी ॥
 अक्षर कन्या दीन्ह पठाई । तिनते तीन पुत्र भये भाई ॥
 अविगति गति काहु नहिं पावा । समरथ सत्य प्रपंच बनावा ॥

सारखी-कहें कबीर ।

इहिविधि सब रचना करी, काहु न जाने भेद ।

जैसे है तैसे तब हती, अब को करै निखेद ॥

सारखी-अविगतिनिषेदकी-धर्मदास उवाच ।

धर्मदास बिनती अनुसारी । साहब बिनती सुनौ हमारी ॥

आठ अंशको भेद हम पावा । गति अविगति दूनौ हम गावा ॥

चारि अंश एके मत ठाना । चारि अंश भिन्न भिन्न मत ठाना ॥

तेहि कारण सब मोहिं बतावहु । केहि कारण प्रपञ्च उर लावहु ॥

साखी-चार सुरति सब मूल है, तुम समरथ परवान ।
तुमरे अंगते उपजि कहु, चारहुको अनुमान ॥

साखी-बीजके कलसाकी-कीसा सतगुरु उवाच ।

धर्मदास मैं कछु न छिपाऊं । तुमको सकलहि भेद बताऊं॥प्रथ-
महि समरथ आप हते, दूसरो कोइ न हुए । तब समरथके मुखते,
सहजहि सुरति भए ॥ सोइ सुरति स्वरूप धरि सहजहि बुन्द दयो ।
तेहिते सहजहि सुरतिका सहज अँकूर भयो ॥ तेहि अँकूरते सप्त
करि भये । दूसरे समर्थके अंशते क्षमास्वरूप सुरति भये ॥ तब
स्वाति सरूप बूँद दियो । तौन कारन सुनो ॥ जैसो सांचो तैसो
स्वरूप, जैसो घात तैसो अनूप ॥ एतो ठेका बँधे जब भयऊ ।
इच्छा सात । ७ । अंड पांच । ५ । चारी अंड एक सिद्धके॥४॥
१॥चारों स्वरूप भिन्न भिन्न हैं ॥ पाँचों अण्ड प्रचण्ड भयो । दोउ
करीमें अण्ड ना भयो ॥

ताहिकरीमें दो अंश हते एक करीमें अक्षर हतो॥एककरीमेंमाया
हती । एहि मता अविगति हतो । आगे तीसरी सुरतिको लेखासु-
नो।अविगत सुरत अशून्य । तीसरी सुरतिका लेखा सो सुरति सखन
उपजाई । तेहिका नाम मूल सुरति है ताह सुरतिको अव्वल बूँद
दीन्हां तेहिते पांच ब्रह्म भए तिनको आज्ञा दर्ई एक एक ब्रह्म
एक एक अंडनमें आए, एते ब्रह्मते पांच अंस भए । तेही तत्त्वके
घर भए । तब अण्ड फूटो पांच तत्त्व प्रगट भए । ५ । चौथी सुरती
श्वासाते भए । ४ । तेहिको नाम सोहंदियो । तेहि सोहंगके ओहं बूँद
कीन्हां तेहिमें आठ अंस भए।सो एती रचना चारि सुरति कीयो ॥

प्रथम अगते भए आगे सब निकास कहूँ । सात इच्छा सातहीं अंश ।
अनइच्छाते आठों अंश भए । आठवाँ अंश भए । ते कोल भयो
सर्व सृष्टिको संहार करै ।

बीजक सारकी साखी—कहें कबीर ।

सात इच्छाके सात अंश भए, अपने अपने भाव ॥

आठवा अंश बिन इच्छा उपजै, ताको मर्म लखाव ॥

धर्मदास उवाच—एह धर्मदासने पूछी ।

आहो साहेब काहेते समर्थ कहत हैं? काहेते अचित कहत हैं ॥
काहेते अक्षर कहत हैं? काहेते जोगमाया कहत हैं ॥
काहेते कैल कहत हैं? इतना भेद कहो समुझाई ॥
भिन्न गुरु देह बताई । एहिकी शास्त्र गुरु कहें ॥
सुनो धर्मदास तखतके धनी । तासों समर्थ कहत हैं ॥
तिनते आठ अंश भए । आठमें जेठ अचित भए ॥
तिनके चिंता नाही । ताहिते अचित कहाये ॥
तिनके प्रेम सुरति भई । तेहि प्रेममें अक्षर आनि समानो ॥
तब मोह तत्त्व उपज्यो । तेहि मोहते चार अंश भए ॥
तेहिते चौरासी लक्ष जोनी भई । ८४००००० । तेहिते अक्षर ॥
कहाये । अब कैलकी हकीकत सुनो । तब अक्षरके मोहतत्त्व ॥
उपज्यो तेहि कारणते कैल भयो । मनसाते बुंद पैदा कियो ॥
सो जहाँ अक्षर बैठो हतो । तहाँ जल तत्त्व हतो ॥
तेहि जलमें एक बुंद आनि पडो । तेहि बुंदते एतेएक अंड भयो ॥
तब अक्षरने देखा उठिके । तब अंड लगि आयो ॥
एक हकीकत लिखी हती । अंडके मुख ऊपर छाप हतो ॥
कहै सृष्टिकी रचना करौ । और एक अंश हम पठायो है ॥
सो तुमते दूसरी करीहै । सो तुम जिन पतियावो । जहाँ लगि

आवै तहां लगि जिन रोको । आवने दीजो जिन काहु भेद
 बतावो । आगे सत्रासौ तीस हजार युग कैल युगका प्रमाण है ।
 जुग सो भुगति लेहे तेहि पीछे । हमारी आठै सुरति आई है ॥
 तब हमारो महातम होई है । तब कालसों जीव छुड़ाई है ॥
 तब कैलको महातम घटि जैहै । एती सनद अक्षर भेदकी ॥

साखी—कहैं कबीर ।

सात इच्छाके सात अंश भए, सातहि सुरति प्रकार ।

अन इच्छाते कैल भए, सब जीवको करै अहार ॥

चौपाई—धर्मदास उवाच ।

धर्मदास जिव शंका आई । उठि सद्गुरुसों विनती लाई ॥
 धन्य भाग्य मोहि मिले गुसाई । अपना करि मोहि लीन्ह मुक्ताई ॥
 इच्छा सातके समर्थ कर्ता । अत इच्छा वहाँ कहाँते बरता ॥
 सो निजु भेद बतावो मोही । इह सनद गुरु पृछौ तोही ॥
 सात करी अंकुर बंधाना । सात इच्छा तेहि माँहि समाना ॥
 सात सुरतिमें थांका राखा । सात अंश तहां बोली भाखा ॥
 आठवाँ अंश वह कहाँते आवा । कौन भाँति वो अंश निर्मावा ॥

साखी—अविगति भेदकी धर्मदास पूछे ।

अविगतिकी गति सब कहो, मैं बलिहारी जाउँ ।

मेटि उँदेशा जीवका, पल पल परसों पाउँ ॥

चौपाई—सद्गुरु कबीर उवाच ।

कहैं कबीर सुनो धर्मदासा । वहि समर्थ गति अजब तमासा ॥
 इतना तत्त्व जिन पृछौ भाई । और सकल शब्द देहों बताई ॥
 इच्छा सात शक्ति उत्पानी । स्वाति सनेह भए परमानी ॥
 एक अंकुरते सब कछु कीन्हौ । सब भंडार तिहि माहे दीन्हौ ॥
 तिहि अंकुरकी सात भे करी । सात इच्छा तेहि माँहि लै धरी ॥

सहजंकुर तिह नाम कहाई । सात सुरति तिहि मांहि रहाई ॥
 ठेकाज्ञान कहतहों भाई । जेहि सुनि हंसा लोके जाई ॥
 धर्मदास सुनिये चितलाई । यहि कलसा सब ज्ञानके भाई ॥
 बीजक ज्ञान सब कहूं निशानी । तेहिपर बीजक निश्चय ठानी ॥
 सात करीके निर्णय सुनिहौ । बिना भेद तुम कछू न गुनिहौ ॥
 भेदमें भेद हम राखौ गोई । सौ पर सून्य लखो ना कोई ॥
 इच्छा सीप स्वरूप उतपानी । सोवाती स्नेह भए परसानी ॥
 बुंद एक आनंद स्वरूपी । इच्छा सात भए भिन्न स्वरूपी ॥
 इच्छा सात रुचि अपने भाई । तेहि प्रमान बुंद तिन्ह पाई ॥
 तेहिते पाँच अंड निर्माई । दोए करी तहाँ गुप्त छिपाई ॥
 तेहिमें गुप्त अंश रहे वासा । प्रथम करीने बुंद निवासा ॥
 तेज अण्ड तहाँ भयो प्रकाशा । तेहिमें सब है जीव निवासा ॥

इच्छाके नाम ।

मुख्य इच्छा तेहि इच्छाको नामा । आदि बुंद तिहि बुंदको धामा ॥
 दूसरी इच्छा नेत्र भरी हेरै । सुकृत अण्ड भए तेहि केरै ॥
 नेत्र इच्छाते नेत्र बुंद पावा । तेहिमें सुकृत अंश निर्मावा ॥
 तिसरी इच्छा अविगति बानी । श्रवन इच्छामें आनि समानी ॥
 श्रवन बुंद अंश तिन्ह लीन्हा । अबोलनाम तेहिबुंदको दीन्हा ॥
 चौथे अण्डमें सत्य पसारा । चौथी इच्छासो वासा उच्चार ॥
 स्वाती इच्छा तेहि करिको नामा । स्वाती बुंद स्वाति सब धामा ॥
 स्वातिते क्षमा अण्ड निर्माई । अण्ड पांचमों कहूं समुझाई ॥
 पांचही इच्छा निमिष ठेहेराई । करा एकमें जीवन पराई ॥
 स्वाति प्रसन इच्छा उपजाई । जलहि अंड तहाँ उपज्यो भाई ॥
 पांच इच्छाके पांच अण्ड निर्माई । दोए इच्छा वेही गुप्त रहाई ॥
 छठि इच्छा है करता भाई । करति बुन्द तेहि मांहि समाई ॥

सातें इच्छा सर्वत्र रहाई । सात बुंद सब कला है भाई ॥
 सातों इच्छाके करता अंकूला । सात करी सब दृष्टिको मूला ॥
 तिनके सोरा अंश प्रमाना । एक वचनके सबही बंधाना ॥
 आनंद बुंद है सदा समीपा । तेहि अंकुरको भिन्न है दीपा ॥
 एक सुरति एक अंकुर कहाई । तिहिको नाम सहज श्रुतिभाई ॥
 सात करी मो थाका बनाई । ताकी गति मति काहु न पाई ॥
 दो सुरति इच्छांकुर निर्माई । आठ इच्छा तेहि माँहि उपजाई ॥
 सात इच्छा करि सात समानी । आठमी इच्छा काल उतपानी ॥
 तिसरी सुरति मूल प्रकाशा । मूलकीर्ति मूल अंकुर निवासा ॥
 सुरतिमूल तिहि माँहि समानी । पांच ब्रह्म तहां भए उतपानी ॥
 सहज ब्रह्मके पांच तत्त्व भये भाई । तत्त्व सनेही सर्व उतपन आई ॥
 दुसरी इच्छा ब्रह्मको चीन्हा । सुकृत चिन्ह उत्पन्न कीन्हा ॥
 तिसरो ब्रह्म मूल परवानी । मूल सुरतिसब सृष्टि उतपानी ॥
 चौथे सोहं ब्रह्म कहावा । तेहि अण्डमों सर्व समावा ॥
 पांचों ब्रह्म जलाहल भयऊ । चौदह अंश गुप्त निर्मयऊ ॥
 तीनि सुरतिकी एती रचना । चौथे सोहं कटे अमृत बचना ॥
 सुरति अभयबुंद तिन्ह पावा । तेहमें आठ अंस निरमावा ॥
 चार गुप्त चार प्रगट पसारा । आपसरूपमिलआठोंअमीअपारा ॥
 तिनके भिन्न भिन्न परसाना । चार अंश भए सृष्टि बंधाना ॥
 चार अंश भए मुक्त प्रमाना । तिन्हको भेद न काहु जाना ॥
 अंशहि अंश काहु नहीं देखा । शब्द स्वरूपी सबको पेखा ॥
 तेहिके सनद अब कहां समुझाई । जेष्ठो अंश अर्चित है भाई ॥
 तिनके प्रेम सुरति घट आई । तेहि प्रेममें मोह समाई ॥
 तेहि मोहमें अक्षर उतपानी । अक्षर जारि वेद सहेदानी ॥
 अक्षर तेहिते चारे भए दीपा । चार अंशने रहे समीपा ॥

चार अंश अक्षरते भयऊ । सर्व सृष्टि भंडार ते ठयऊ ॥
 प्रथम अंशते माया भयऊ । शुक्ल बीज पृथ्वीमहँ ठयऊ ॥
 दूसरे अदल अंश निर्माण । रसना सहस्र तिनते निर्माण ॥
 तिसरे कूर्म भए अवतारा । जिन सर्व पृथ्विको लीनो भारा ॥
 चौथे अंश भए धर्मराई । जिन्हें पाप पुण्यको लेखा पाई ॥
 चार अंशको देखि भुलाना । तब अक्षर घटमाहिं समाना ॥
 तब समर्थ एक युक्ति बनाई । सातवां अंश तब आनि समाई ॥
 तेहिते निद्रा उपजी भाई । सत्तर निमिष युग गयो सिराई ॥
 जब लगि निद्रा अक्षरकूं आई । तब कछु दृश्य रहै ना भाई ॥
 सब समर्थ मन शब्द उचारा । तेहिमो कैल अण्ड भयो भारा ॥
 तेहि अंडमें उत्पति भूपा । नाम निरंजन ज्योतिसरूपा ॥
 तिनते तीन देव भए भाई । यहां संग लेहु लखि भाई ॥
 सर्व सृष्टि काल धरि खाई । काल देवको कोइ न पाई ॥

साखी-टीकाका ।

सात सुरति तब मूल हैं, उत्पत्ति सकल पसार ।
 अक्षरते सब सृष्टि भई, कालते भये तिछार ॥

चौपाई-धर्मदास उवाच ।

सांचे सद्गुरुकी बलिहारी । धर्मदास विनती अनुसारी ॥
 और भेद सर्व हम पावा । आठमी इच्छा कीन्ह निर्मावा ॥
 केहि कारणते इच्छा कहाई । अनइच्छा किमि कारण आई ॥
 किमि कारणस्वरूपजो काल बनाई। यहां अविगति गतिकहो समुझाई ॥

साखी-सत्य पुरुष तुम आदि हो, बोलो शब्द रसाल ।
 अन इच्छाको मर्म कहों, जेहिते उपज्यो काल ॥

चौपाई—सद्गुरु उवाच ।

कहे कबीर सुनो धर्मदासा । सत्य शब्द है हमरे पासा ॥ जेहितेवृद्ध होय सो इच्छा कहावै । जेहिते नास्ति होय ऐसी अनइच्छा कहावै ॥ इच्छा अंकुरकी तन इच्छा हमारी । ते गुणकाल अंश अवतारी । बिना कालजीव नहीं डराई । तेहि वर कालरचा हम भाई ॥ इच्छामें दया अंशभाई है । अनइच्छा निर्दया कहाई ॥ जीवनमुक्ति कहौ समुझाई । वचन न माने ताहि काल धरिखाई ॥

साखी—कालअंश क्या जन करौ, ताते जीव कालको खेल ।

ऐसेका खेल समान है, ज्यों तिल्लीमें तेल ॥

चौपाई—धर्मदास वचन ।

धर्मदास बहुते सुख पावा । उठि सतगुरुसों विनती लावा ॥ उत्पति कारण हम सब देखा । पांजी भेदका कहौ विवेका ॥ पांजी सुरति गुरु देहो लखाई । जेहि मारग हंसा चलि आई ॥ नामप्रताप कहौ समुझाई । जेहिके बल हंसा घर जाई ॥

साखी—धर्मदास विनती करै, जिवरा भयो अनंद ।

आप अपुनको लखि परचो, जब कटे कालको फन्द ॥

चौपाई—सतगुरु कहै पांजी भेद ।

सुनो धर्मदास पांजी भेदप्रकासा । जिनके सुनै हैं हंस निशवासा ॥ पांजी तीनि भेद ओगाहा । जो कोई जीव पहुँचे बांहा ॥ प्रथम पांजी आकाश है भाई । तहाँ अग्रशब्द चढि लोकै जाई ॥ सात शून्य दश लोक प्रमाना । अंश जो लोकलोकको जाना ॥ नौ स्थान दशमो घर साँचा । तहाँ चलि गए जीव सब बाँचा ॥ सोरा असंख्यपर लागी तारा । तेहि चढि हंस गए लोक दरबारा ॥ दूसरी पांजी लोग कहै भाई । तेहि पांजी त्री देव रहाई ॥ अष्टम दीप बावीसमें अकाशा । तहाँ विष्णु चलिगए तेहि पासा ॥

तिसरी पांजीका भेद अपारा । तुमसों धर्मनि कहों विचारा ॥
पाताल पांजी है जीव उबारा । भजन प्रतापसों उधरे दूबारा ॥
वाचा बंधको द्वार बनावा । तेहि पांजी गुरु भेद बतावा ॥
पांच भेद पाताल निशानी । ताते काल करै नहिं हानी ॥
तेहि पांजी जलरंग गुसाई । चौदह मुनि है तिनके ठाई ॥
जलरंग पासको भेद जो पावै । लोकें जात बार नहिं लावै ॥
सोरा लोक सोरा दरवाजा । सोरा अंश तेहि मांहि बिराजा ॥
सोरा अंश चीह्न जो पावै । जाके सद्गुरु निज भेद लखावै ॥

साखी—तीनि पांजीके निर्णय, तुमसों कहो समुझाय ।

सार शब्द जो पाए तो, छिनमें हंस घर जाय ॥

धर्मदास पूछे मंत्र जो गूढा ।

सत्य सत्य मुख दया जो कीजै । अपनोके मोहि निजु करि लीजै ॥
तुम समर्थ गुरु जक्तके कर्ता । सकल भेद जो निर्णय वर्ता ॥
हम चीन्हा तुम बरन छिपाये । बरन छिपाए तुम जगमां आए ॥
आए तुम समर्थ हो अंतर्जानी । सत्य कहौ हम निश्चय मानी ॥
जो अपना करि जानो मोहीं । तो अपना तत्त्व बताओ सोही ॥
अब तुम कहो कैसे जग आये । कैसे तुम जोलहा कहाये ॥

साखी—एहि सब कारन भाखि हो, सब संशय मिटि जाय ।

अपनो कै प्रतिपाल हो, हंस लियो मुकताय ॥

चौपाई—सतगुरु खुदा होय प्रगटे साखी—खुदबानीकी ।

सतगुरु बचन बिहँसिके बोले । सत्य सत्य तुम अंतर खोले ॥
तुमसों अंतर कछू न राखों । सकल भेदकी निर्णय भाखों ॥
कहत बचन प्रतीत न आवै । तजत देह जीव ठौर न पावै ॥
तुम युग बंध होए करौ सेवकाई । तेहि पीछे हम भेद लखाई ॥
धर्मदास करनी निज करिहो । सीख उतार निज आगे धरिहो ॥

बातो साटे वस्तु जो आई । तौ एको जीव विनशिना जाई ॥
 चौका करहो लेहो प्रवाना । तब पुनि कहूँ आप बंधाना ॥
 तब नहीं हते खंड ब्रह्मंडा । तब नहीं नदी अठारह गंडा ॥
 तब नहीं सात सुरत उतपानी । तब नहीं कीन्ह सकल सहिदानी ॥
 तब नहीं कहते अंश और बंसा । तब नहिं काल त्रिगुणको संशा ॥
 तब नहिं पांच अंड निर्माण । तब नहिं लोकहि दीप बनाए ॥
 अविगतिकी गति काहु न पाई । आप बरन हम रहे छिपाई ॥
 तब हम हते हैंता नहिं कोई । हमरे मांहे रहे सब सोई ॥
 हम पारस सब सुर्त वट दीन्हा । एक बुन्दते सब कछु कीन्हा ॥
 नाम बडाई अंशको दीन्हा । शुक्ल प्रकार रची हम लीन्हा ॥
 चारि सुरति हम प्रगट पसारा । पांचवीं सुरति हेम गुप्तविचारा ॥
 तुम जिन शंका मानौ भाई । हमते करता दूसरे न आई ॥
 बरन छिपाय हम जगमें आए । युगन युगन हम जीव मुक्ताये ॥
 चारों युग हम पंथ चलावा । सात सुरति काहु भेद न पावा ॥
 अब हम कीन्हा प्रगट पसारा । सातों सुरति पाय टकसारा ॥
 आठे सुरति सुकृत अवसारा । ताते तुमते ज्ञान पसारा ॥
 नौतम तरति घरमें राखी । तिनके भेद हम कबहूँ न भाखी ॥
 तुम बोधन हम जगमें आए । जाते काल तुम्हें भरमाये ॥
 तब हम लोकते दीन्ह पियाना । तुम कारन हम अक्षयअछिपाना ॥

मारग भेद सद्गुरु कहे ।

प्रथम सहज सुरतिलगि आए । नौतम सुरति हम नाम धराए ॥
 उन्हसों कह्यो हम सत्य संदेशा । सहज अंकुर मानो उपदेशा ॥

सहज पूछै ।

तब उन पूछा तुम को आऊ । सत्य वचन तुम कहों कहाऊ ॥

सद्गुरु कहै ।

तब मैं कह्यो मोर नाम कबीर । मैं समर्थ श्रुति नौतम शरीर ॥
पाँन प्रवाना तुम लेहो भाई । समरथ हुकम लेहो शिर नाई ॥
प्रथम चौका सहज दीपमें कीन्हा । सहज सुरतिको अँकपर लीन्हा ॥
तब हम चले इच्छा सुरतिलगाए । सत्यशब्द उन्हहीं समुझाए ॥
तौन अंकपर जीव चढावा । मूलसुरतिके दीप चलि आवा ॥
सत्य शब्द तहाँ बोलै बानी । मूल सुरतिसों निर्णय ठानी ॥

मूलसुरति पूछै ।

कहो तुम अस कहाँते आए । के तुम समरथ बरण छिपाए ॥
सद्गुरु कहै ।

नाहम समरथ समरत्थ निशानी । नौतम सुरति पुरुषका बानी ॥
जीवकाज संसार पठावा । तुमको सिखावन पुरुष को आवा ॥
लेहु पान तुम तजो बडाई । पान लेत गुरु होवै सहाई ॥
मूल सुरति का चौका कीन्हा । चले सोहंग दीप पग दीन्हा ॥
तहाँ शब्द बोले विर्वाना । सत्य संदेशौ पुरुष प्रमाना ॥
चौथे चौका सोहंको कीन्हा । सोहं सुरत अँकेपर लीन्हा ॥
चौका चारि अधरपर कीन्हा । चले अंचित दीप पग दीन्हा ॥
अंचित अंश है रूप उजागर । मानिक दीपमणिनके आगर ॥
कंचन चरण भूमि उजियारी । मणि आगर मणीन विस्तारी ॥
वहाँ सत्य हम बोले बानी । अंश अंचित करो पहिचानी ॥
अंचित पूछै ।

पूछै अचिन्त कहाँते आये । कौन चितावर इहाँ सिधाये ॥
सद्गुरु कहैं ।

तब हम कह्यो मोहि सप्रथ पठावा । जीवका जवरइहांहमचलिआवा ॥
तुमते समरथ कह्यो संदेशा । ज्ञान गम्य गुरुवच उपदेशा ॥

(१२८)

कबीरबानी ।

कौल पान दीन होय लेहौ । तन मन चित्त समर्थकूं देहौ ॥
तब अचित लीन्हा परवाना । सत्य शब्द हिरदे हित माना ॥
तब आए अक्षर अस्थाना । महा शुन्य माहे होत ठिकाना ॥

अक्षर पूछै ।

तब अक्षर पूछै विहसाई । कौन अंश तुम कहाँ सिधाई ॥
सतगुरु कहैं ।

तब हम कह्यो मोहे समरथ पठावा । जीवकाज इहां हमचलि आवा ॥
तुमते समरथ कह्यो संदेशा । ग्यानगम्य गुरु वचन उपदेशा ॥
कौल पान दीन होए लेहौ । तन मन चित समर्थकूं देहौ ॥
तब अक्षर लीन्हा प्रमाना । सत्य शब्द हिरदै हित माना ॥

अक्षर पूछै ।

तब आए अक्षर अस्थाना । महाशून्य माहे ताहि ठिकाना ॥
तब अक्षर पूछे विहसाई । कौन अंश तुम कहाँ सिधाई ॥
सतगुरु कहैं ।

तब हम कही तहांति आए । जिन एहि सब उतपानि रचाये ॥
जिन इच्छापर सृष्टि रचि दीन्हा । छाप वचन कौल जिन्ह कीन्हा ॥
अक्षर उवाच ।

तब अक्षर घट कीन्ह विचारा । तुमतौ आपै सिरजन हारा ॥
इतना भेद हमीं पुनि जान्हा । सोइ निज भेद तुमकहे उबखाना ॥
सोई छापकी कहां निशानी । तब हम जाने सत्तकी बानी ॥
सद्गुरु उवाच ।

सुनो अक्षर मैं कहूं समुझाई । वस्तु सिखापन तुमको आई ॥
प्रथमें सृष्टि रचौ फुरमाई । दुसरे कालको लीन्ह बचाई ॥
तिसरे वचन दर्शनको कीन्हा । इतना वचन समर्थ तुम्हें दीन्हा ॥

अक्षर उवाच ।

तब अक्षर दोनों कर जोरी । तुम निश्चय जीवन बंध छोरी ॥
एक वचन मैं पूछो अर्थाई । तुम समर्थको अंस हो भाई ॥

सद्गुरु उवाच ।

तब अक्षरते कह्यो समुझाई । कौल तुम्हारे देन हम आई ॥
तब दिल दया जीवनकी आई । वरणबोधकर छिपि जग आई ॥
समर्थ स्वरूप सबजग शिर जाए । गुरुस्वरूप मुक्ता बनि आए ॥
वचन गहे सो उतरै पारा । बिना वचन डूबै संसारा ॥

अक्षर विनती करै ।

तब अक्षर निज विनती ठानी । समग्र देहो पान परवानी ॥
हम चीन्हा तुम पुरुष पुराना । जब आए तुम एहि ठिकाना ॥

सद्गुरु कहें ।

तब अक्षरका चौका कीन्हा । अक्षर सुरत अंकपर लीन्हा ॥
तब चलि दीप झंझरी आए । सत्य शब्द तहां बोल सुनाये ॥
गरजै झंझरी पग धरत न जाई । कैल पुरुष बैठो तिहिं ठाई ॥
दोइ पालँग मुन्य है अंधारा । चारि कोट ज्योति उजियारा ॥
झंझरी दीप हम गए मंझारी । गर्भित कैल नहीं बिदै विचारी ॥

निर्जन कहें ।

को तुम अज धरहो वरियारा । क्यों हम झंझरीमहँ पगधारा ॥
कौन हो अंश कहांते आए । अपुनो नाम कहो समुझाये ॥

सद्गुरु कहें ।

तब हम कही सुनो तुम बानी । योगजीत नाम मोर ज्ञानी ॥
समर्थ मांग जीव मुक्ताई । तेहि कारण आए तुम्हरे ठाई ॥
इतना कहत कैल दुख पावा । क्रोधवंत होइ सन्मुख धावा ॥

कैल अनंत भेष धरि लीन्हा । हम सन्मुख बहुयुद्धते कीन्हा ॥
 गजसरूप होइ सनमुख धावा । गही दंत चहुँ बाजु फिरावा ॥
 तट फटकार लैपडे सुंड डारा । भागे कैल तब पैठ पताला ॥
 गयो पताल जहाँ कूर्म अवतारा । तब हम चाल तहाँ पग धारा ॥

कैल कहे ।

विनती करै कूर्मसों जाई । राखो कूर्म मैं तुम शरणाई ॥
 कूर्म कहे ।

तबै कूर्म उठि विनती लाई । को तुम्ह आहु कहाँते आई ॥
 सद्गुरु कहे ।

तब हम कह्यो नाम मोरा ज्ञानी । योगजीत हम अंश प्रमानी ॥
 समरथ हुक्म जीव उबरण आये । काल फाँसते जीव मुक्ताये ॥
 झँझरिमाहें बहुयुद्ध हमसों कीन्हा । भागिके शरण तुम्हारी लीन्हा ॥
 जो सिखवन समरथका लेहो । तो कैल हमार आगे करिदेहो ॥
 कैल कहे ।

तबही कैल पुनि सनमुख आये । आइ ज्ञानी सों वचन सुनाये ॥
 सुनो ज्ञानी मोर वचनको लेखा । अपने हृदय तुम करौ विवेका ॥
 समरथ वचन दीन्ह मोहे हारी । मैं पायो लोक संसारी ॥
 तबकी बात रहित भइ भाई । अब कसउटी अदल चलाई ॥
 सबै अंश भुगते मध्यानी । हमपर कोप भये तुम ज्ञानी ॥
 सत्तर युग हम सेवा कीन्हां । चौदह भवन बकस मोहिं दीन्हां ॥
 जैसी निर्णय हमें सुनावो । तैसी सिखावन जानि चलावो ॥
 कूर्म उवाच ।

कूर्म अंश तब बोलै बानी । अपनी अपनी करो रजधानी ॥
 इतना वचन सुनि लेहु हमारा । माहिं माहिं मतिकरो बिगारा ॥

चौका पानको जीव तुम्हारा । लोक वेदको कैल पसारा ॥
जो कोई करै जोर बरियाई । ताको संग हम नहिं है भाई ॥
तब ज्ञानी बहुते सुख पावा । कैल उलटि झँझरिसे आवा ॥

सद्गुरु उवाच ।

तब मैं धर्मनि संसारहि आवा । तीन देवसों ढेर सुनावा ॥
एहि भूले माया अभिमाना । सत्य शब्द उनहू नहिं जाना ॥
सुर नर मुनि कोई नहिं मानें । वेदहि क्रिया सब लपटानें ॥
युगन युगनमें शब्द पुकारा । जिन चीन्हें भए हंस हमारा ॥
बहुतेक हंस लोकको गयउ । सत्य प्रती जाके धन भयउ ॥
खोजत खोजत तुमपे आये । सर्व भँडार तुम्हें खोल बताए ॥
अब तुम कहा हमारो करहू । सोरा सतको चौका विस्तरहू ॥

साखी-सोरा सुतका चौका, एक अंग गुरू सिख होय ।

सदा हजुरी वे रहैं, मिले न बिछुरे कोय ॥

सोरठा-जाने संत सुजान, बहुरंगीके रंगको ।

समुन्दर बुन्द समान, मर्म कोइ जाने नहीं ॥

छंद-ज्ञान प्रकासे दीपका, जुगति नाम जिन पाइया ।

सोइ दीप आदि साजिके, सोइ सुरु शीस चढाइया ॥

साखी-ब्रह्मज्ञानकी ।

आगम कोइ चीन्हें नहीं, लोभे ज्योति प्रकाश ।

रसवस जिव बांधे कालसों, फिरि फिरि बांधे आश ॥

चौकाविधि धर्मदास उवाच ।

धर्मदास तब सोंज मैगाये । कर जोरे उठि विनति लाये ॥

चौका जुगति बतावो सोही । पाँन प्रवाना देहो गुरु मोहि ॥

सद्गुरु सम्मुख आसन कीन्हा । चौका पूरि प्रदक्षिण दीन्हा ॥

पान मिठाई नारियर सोपारी । लौंग एलची कपूर विचारी ॥

नारियर मोरिके मालुम कीन्हा । समरथ भोग सुतसों लीन्हा ॥
 लिखनी पान हाथके लेऊ । सत्यके अंक पानपर देऊ ॥
 तब यमपुरमें परचो खँभारा । मुक्तिके पंथ चलयो संसारा ॥
 अजरपान धर्मदासको दीन्हा । हंसरूप करि अपना लीन्हा ॥
 अब तुम हमको चीन्हों भाई । गई तिमिर पिछली सुधि आई ॥
 पान प्रसाद सिखावन पावा । शीश उतारि ले चरण छुवावा ॥
 धर्मदास तुम्हें सब विधिकीन्हा । मांगों बचन मैं सर्वस दीन्हा ॥
 धर्मदास उवाच ।

धर्मदास विनती अनुसारी । पायो बोल वचन मैं हारी ॥
 मैं तरों और हमारी शाखा । और पीछले सबही पुरखा ॥
 सद्गुरु उवाच ।

तब सतगुरु मनमें विहसाने । ते कहा माँग्यो कछु माँगे न जाने ॥
 सर्व सृष्टिको तारो भाई । तुम तो आपन वंश ठहराई ॥
 एहि प्रपंच काल सब कीन्हा । मति बुधि खँचि तुम्हारी लीन्हा ॥
 तब धर्मदास जो भए मलीना । जैसे कैवलको संपुट दीन्हा ॥
 तब सतगुरु फिर बोध विचारा । धर्मदास तुम अंश हमारा ॥
 एक वस्तु गोय हम राखी । सो निर्णय नहिं तुमसों भाखी ॥
 नौतन सुरति हमारी शाखा । सात सुरति जो उत्पति भाखा ॥
 आठवीं सुरत तुमहि चलिआए । नौतम सुरति हम गुप्त छिपाए ॥
 नौतम सुरति वचन निज मोरा । जेहिते पला न पकरै चोरा ॥
 धर्मदास उवाच ।

धर्मदास दोनों कर जोरा । कहो वचन सोई सद्गुरु मोरा ॥
 सोई वचन कहौ समुझाई । जेहिते जीवन सृष्टि नहिं आई ॥
 सद्गुरु उवाच ।

आठ बुन्दकी जुगति बनाई । नौतमते आठों बुन्द मुक्ताई ॥
 बिना गुरु कोऊ भेद नहिं पावै । युग बँधें सो हंस कहावै ॥

तब युग बंध भए धर्मदासा । नौतम सुरतबुन्द परकासा ॥
नौतम अंश हिरम्बर कीन्हा । आशिकबुन्द साहबतिह दीन्हा ॥
धर्मदासकी विनती ।

धर्मदास विनती अनुसारी । साहब विनती सुनो हमारी ॥
नारायण दास हमारे सोई । उनकी सिखावन कैसी होई ॥
कैसी पंगति उनको करहू । अब तुम अपना वंश विस्तरहू ॥
दोइ कैसे चलिहै रजधानी । सो सतगुरु मोहिं कहो बखानी ॥
सद्गुरु उवाच ।

तब सतगुरु एक वचन पुकारा । चूडामणि वंश छत्र उजियारा ॥
और सब कील बीज है भाई । ताते नारायणनाम जीव कहाई ॥
चूरामणि नामसे काल डराई । नगनामको धरि धरि खाई ॥
अदली वंश चुरामणि सोई । बीज वंश निज हमते होई ॥
और सकल जगनाद सनेही । बिन्द वंश पारसकी देही ॥
तिन्हके सनद चले संसारा । उनके हाथ मुक्ति टकसारा ॥
धर्मदास तुम नाद सनेही । तुम्हरे वंशहि व्यालिस देही ॥
मैं दीन्हों तुम लेन नहिं जाना । मुक्तिके वचन हम दीन निदाना ॥
वंश ब्यालिस बुन्द तुमारा । सो मैं एक वचनते तारा ॥
और वंश लघु जेते होई । विना छाप नहिं छूटे कोई ॥
बिंद मिलै तो वंश कहावे । विना वचन नहीं घर पावे ॥
नाद बिन्दु युग बन्ध जब होई । तबही काल रहै मुख गोई ॥
गर्भित नाद वचन नहिं मानै । ताते बिंद हम निर्णय ठानै ॥
बिंद एक नाद बहुताई । बिंद मिले सो बिंद कहाई ॥
मम सरूप है बिंदके वंशा । तिन्हके सनद छूटे सब हंसा ॥

साखी—बंस थापे सो सार है, जो गुरु दिढकै देहि ।
साँचे दाव बतावही, जीव अपन करि लेहि ॥

धर्मदास उवाच ।

धर्मदास बिनती अनुसारी । साहब बिनती सुनो हमारी ॥
पंथ पंगती कैसे नीर बहाई । सो गुरु साँचे दया कराई ॥
सद्गुरु उवाच ।

धर्मदास में कहौं समुझाई । हमही तुमहि कैसे बनिआई ॥
ऐसे नाद मिले बिंदको जाई । तबही हंस पहुँचे वह ठाई ॥
अंश होइहै उनके कडिहारा । तिनकी छाप चलै संसारा ॥
कोटिन योग युक्ति धरि धावै । बिना बिंद नहिं घरको पावै ॥
हम बूंद तुम नाद प्रमाना । नारायण नाम नाहिं ठिकाना ॥
वंश विरोध चलिहै पुनि आगै । काल दगा सब पंथहि लागै ॥
वंशप्रकार ।

प्रथम वंश उत्तम । १। दूसरा वंश अहंकारी । २। तीसरा वंश प्रचंड
। ३। चौथे वंश बीरहे । ४। पाँचवें वंश निद्रा । ५। छठे वंश उदास
। ६। सातवें वंश ज्ञान चतुराई । ७। आठे द्वादश पंथ
विरोध । ८। नौवें वंश पंथ पूजा । ९। दशवें वंश प्रकाश
। १०। ग्यारहवें वंश प्रगट पसारा । ११। बारहवें वंश प्रगट होय
उजियारा । १२। तेरहवें वंश मिटे सकल अँधियारा । १३।
एती दगा कालकी समाई है । तत्त्व बिन्दुकी टेक रह जाई है ॥

आगमबानी ।

अब तुम सुनो अगम्य बानी । तुमपर कोपे काल अभिमानी ॥
चार सुरति कालकी भाई । ताको काल पुनि निकट बुलाई ॥
तुमसों में चार बानी भाषा । चारि निर्णयकी बोली भाषा ॥
तेहिपर काल करै चतुराई । चारों सुरति कहें संधि बताई ॥

कालकी चारसनंध ।

चित्तभंग जग कीन्ह प्रकाशा । बीजकसंघ तिन्ह कीन्ह निवासा ॥
मन भंग लै मूल समाई । फैल जान बहुत चतुराई ॥
ज्ञान भंग है बडो अन्याई । सो टकसार भेद ले आई ॥
चौथे अकिल भंगको लेखा । वो तारतम लै करै विवेका ॥
छै दर्शन ।

आगे चारि संप्रदा भक्ति टढाई । सत्य पुरुषकी खबरि न पाई ॥
चारि पंथ आगम हम भाषा । ताके मैं न्हेचै तुम्हरी साखा ॥
ताते पंथ निनार हम राखा । सो तब तोसों दीनो भाषा ॥
बिंदु हमार चौरामणिदासा । उन्हेके हाथे मुक्ति निवासा ॥
उनके निकट काल नहिं आवे । बचन वंसको शीस निवावे ॥

साखी-चारि बानी चारि खानी, चारि ज्ञाननिधान ।

लख चौरासी जिया जोनिनमें, तहां तीन जीव प्रमान ॥

धर्मदास पूछे तीनि जीवकी सनद ।

धर्मदास पूछै चितलाई । तीन जीवन गुरु देहो बताई ॥

गुरु कहें तीन जीवकी परीक्षा ।

तब सद्गुरु बोले अस बानी । तीन जीवकी लखो सहेदानी ॥
तीन प्रकारके जीव बोधमें आई । चाल चलै सो घरको जाई ॥
प्रथम जीव ब्रह्मसृष्टि है भाई । जिन्ह आवागमनरहित घर पाई ॥
दूसर जीव सृष्टि व्यवहारा । करनी करि लीन्ह अवतारा ॥
तिसरी माया सृष्टि बंधाना । बोध बचन कीनो परमाना ॥
अब तुम पंथ चलावो जाई । पहुँचे जीव तुम्हारी बाई ॥
प्रथम बानि सुनि सुरति लगावै । निश्चय दर्श हमारा पावै ॥
प्रथम बानि हैं ज्ञान हमारा । सुनि हँस आवै सत्य दरबारा ॥
संमत पंद्रासे बीस प्रमाना । मास जेठ बरसायत जाना ॥
तेहि दिन कलिमो उतरे फुरमाना । बंश बयालिस रोपे थाना ॥

चारि गुरु निज सीख हमारा । तिन्हकी छाप चले संसारा ॥
 बंस बयालियस बचन हमारा । तिन्हते मुक्ति होय संसारा ॥
 सहसर भांति होय जो कोइ धावे । कोटिन योग समाधि लगावे ॥
 कोटिन ज्ञान छान बिल छाने । अर्थ परीक्षा बहुविधि आने ॥
 वचन बंशको बीरा नहिं पावै । फिर मरे फिरहि गर्भमें आवै ॥
 धर्मदास सुनो सत्यकी बानी । काल प्रपंचबहुतविधि ठानी ॥

द्वादशपंथ चलो सो भेद ।

द्वादश पंथ काल फुरमाना । भूले जीव नहिं जाय ठिकाना ॥
 ताते आगम कहि हम राखा । बंश हमार चूरामणि शाखा ॥
 प्रथम जगमें जागू भ्रमावै । बिना भेद ओ ग्रन्थ चुरावै ॥
 दुसरि सुरति गोपालहि होई । अक्षर जो योग दढावे सोई ॥
 तिसरा मूल निरञ्जन बानी । लोकवेदकी निर्णय ठानी ॥
 चौथे पंथ टकसार भेद लै आवै । नीर पवनको सन्धि बतावै ॥
 सो ब्रह्म अभिमानी जानी । सोबहुत जीवनीकी करीहै हानी ॥
 पांचौ पंथ बीजकको लेखा । लोक प्रलोक कहें हममें देखा ॥
 पांच तत्त्वका मर्म दढावै । सो बीजक शुक्ल ले आवै ॥
 छठवां पंथ सत्यनामि प्रकाशा । घटके माहीं मार्ग निवासा ॥
 सातवाँ जीव पंथ ले बोले बानी । भयो प्रतीत मर्म नहिं जानी ॥
 आठवें राम कबीर कहावै । सतगुरु भ्रम लै जीव दढावै ॥
 नौमे ज्ञानको काल दिखावै । भई प्रतीत जीव सुख पावै ॥
 दशवें भेद परमधामकी बानी । साख हमारी निर्णय ठानी ॥
 साखी भाव प्रेम उपजावै । ब्रह्मज्ञानकी राह चलावै ॥
 तिनमें वंश अंश अधिकारा । तिनसों शब्द होय निरधारा ॥
 संवत सत्रासै पचहत्तर होई । तादिन प्रेम प्रगटें जग सोई ॥

आज्ञा रहै ब्रह्म बोध लावे । कोली चमार सबके घर खावे ॥
 साखि हमार लै जिव समुझावै । असंख्य जन्ममें ठौर ना पावै ॥
 बारवै पन्थ प्रगट है बानी । शब्द हमारेकी निर्णय ठानी ॥
 अस्थिर घरका मरम न पावै । ये बार पंथ हमहीको ध्यावै ॥
 बारहे पन्थ हमही चलिआवै । सब पथ मिट एकही पन्थचलावै ॥
 तब लगि बोधो कुरी चमारा । फेरी तुम बोधो राज दुबारा ॥
 प्रथम चरन कलजुग नियारा । तब मगहर माडौ मैदाना ॥
 धर्मरायसे मांडौ बाजी । तब धरि बोधो पंडित काजी ॥
 बावन बीर कबीर कहाऊ । भवसागरसों जीव मुक्ताऊ ॥

कलियुगको अंत पठ्यते ।

ग्रहण परै चौंतीससों वारा । कलियुग लेखा भयो निर्धारा ॥
 ३४०० ग्रहणपरै सो लेखा कीन्हा । कलियुग अंतहु पियाणा दीन्हा ॥
 पांच हजार पाँचसौ पांचा । तब ये शब्द होगया साँचा ५५०५
 सहस्र वर्ष ग्रहण निर्धारा । आगम सत्य कबीर पोकारा ॥
 तेरा वंश चलै रजधानी । वंश चूरामणि प्रगटे ज्ञानी ॥
 तिनकी देह छायाँ नहिं होई । सर्व पृथ्वी प्रमानिक सोई ॥

क्रिया सोगंद ।

धर्मदास मोरी लाख दोहाई । भूल शब्द बार जिन जाई ॥
 पवित्र ज्ञान तुम जगमों भाखौ । मूलज्ञान गोइ तुम राखौ ॥
 मूलज्ञान जो बाहेर परही । बिचले पीढी वंस हंस नहिं तरहीं ॥
 तेतिस अर्ब ज्ञान हम भाखा । मूलज्ञान गोए हम राखा ॥
 मूलज्ञान तुम तब लगि छपाई । जब लगि द्वादश पंथ मिटाई ॥

द्वादशपंथका जीव अस्थान ।

द्वादशपंथ अंशनके भाई । जीवबांधि अपने लोक लेजाई ॥
 द्वादश पंथमें पुरुष न पावै । जीव अंशमें जाइ समावै ॥

तुम जिन भूलो ज्ञानमो भाई । बिगडे हंस सब जीव भुलाई ॥

सोरठा—हमरो करै सब ज्ञान, वंस बयालिस तिलक है ।

द्वादश पंथमें मान, पुरुष शब्द तोसे कहूँ ॥

धर्मदास उवाच ।

धर्मदास पूछे चितलाई । वंस बखान गुरु कहौ समुझाई ॥

कौन वंश कौन अंश हमारा । कौन वंश अंश मर्जाद सुधारा ॥

पंथ पंगत तेहि भाव बतावौ । जैसे जगमो पंथ चलावौ ॥

तुम्हरो डर मानै सब कोई । बचन डोर बाँध्यो जग सोई ॥

दास नरायण सरण न पावा । दुसरा वंश अंश धरि आवा ॥

तेहिकी पंगति कहो समुझाई । सोई पंगति आगे चलि जाई ॥

साखी—इतनी निरभये भाखिहों, गुरु मोहि कहौ समुझाय ।

वंश अंशकी पंगति, सबविधि देहु सिखाय ।

साखी—वंशनिखेहकी । सद्गुरु उवाच ।

धर्मदास सुन भेद अपारा । तुमसों कहूँ वंश अंश निर्धार ॥

समर्थ हमसों ऐसी फुरमाई । धर्मदासको लेहो जगाई ॥

धर्मदास है अंस हमारा । उन्हसों भेद कहों निर्धार ॥

उन्ही जागा एक पंथ दटावौ । पीछे हम अपनो अंश पठावौ ॥

ते जन्म लीहे धर्मदासके आई । वोही हंसनके बन्ध मुक्ताई ॥

तिन्हके वंश चले कडिहारा । बहुत जीवनिके करे उबारा ॥

तब हम पुरुषसों विनती कीन्हा । धन्य वंस धर्मदास जो लीन्हा ॥

वो कैसे कै लोकै आवा । सोई बात गुरु मोहि सुनावा ॥

खुदबानी ।

तब समर्थ अस बोले बानी । धर्मदासको वंश अभिमानी ॥

ताते हम अपना अंश पठावा । जंबुद्वीपमें थाना बैठावा ॥

अच्छर अच्छर अतीतकी बानी । निःअच्छर कोई बिरले जानी ॥
 निःअक्षर की अक्षर श्वासा । नहीं धरनी नहीं गगन प्रकासा ॥
 अक्षर तीनि लोक बिस्तारा । तामें अरुझो सब संसारा ॥
 तीन सुत तेज अंडमों आई । आप आप इन्हें आप दृढाई ॥
 चार वेद कहै तिनकी साखी । अक्षर अतीत थापि उन्ह राखी ॥
 अब भिन्न भिन्न कहूँ अर्थाई । सात सुरतिके स्थान बताई ॥
 अक्षर अतीत माया सो कहिए । सोई सुरति निरंजन लहिए ॥
 अक्षर सुरति दुतिय है स्थाना । जिनके चार वेद परवाना ॥
 शब्दातीत अनहद रहता । प्रेम धाम अक्षरकी चहता ॥
 चार सुरतिका भेद नियारा । तीनि सुरतिका देउ बिचारा ॥
 पांचे सुरति अंकुरकी बानी । पांचे स्थान तेहि ठहरानी ॥
 छठे स्थाना अंकुरकी है आपा । जेहिते सात करी उततापा ॥
 सातवीं सुरति सहजकी रही । उहि समर्थको देखा सही ॥
 सात सुरति सात है स्थाना । मूल सुरति है समर्थ प्रमाना ॥
 सहज सुरति सब सुत उपजाई । मूल सुरति लै हंस समाई ॥
 मूल सुरति है सबको मूला । सात सुरतिको एक स्थूला ॥
 सात सुरति मूल सिध सब माहीं । धर्मदास लखि राखौ ताहीं ॥
 शब्द पांजी इतना परमाना । अब कहूँ कायाकी बन्धाना ॥
 सातों सुरति कायामें रहै । ओ काया धरि बातें कहै ॥

सुरति स्थान ।

प्रथमहि दीप अमर मनियारा । तहँ वा मूल सुरति बैठारा ॥
 दुसरा अजर दीप तहां कीन्हा । सहज सुरतिको बैठक दीन्हा ॥

चौपाई ।

तीसर दीप हिरण्मय सोई । सुरति अंकुरकी बैठक होई ॥
 चौथे दीप सुरँग निर्मावा । ओहं सोहं तहाँ बैठावा ॥

पाँचवें अघर दीप रहे वासा । तहाँ है अचित सुरतिको वासा ॥
छठये पच्छ दीप जो कीन्हा । तहाँ अक्षरसुरतिको बैठक दीन्हा ॥
सातवीं सुरत कलदीप बिलमाना । काम क्रोध मोह तहाँ समाना ॥
सातवीं सुरति सातहूँ स्थाना । तीनसुरति निरंजन काल प्रमाना ॥
पुहुप दीप है सबते न्यारा । तहाँ समर्थसे जीव विस्तारा ॥

साखी-घटघटकी जो परचै कहो, सब स्थान बताय ।
कह कबीर विनु काया परचै, फिरिफिरि रह भटकाये ॥

साखी-सुरति पांजीकी धर्मदास उवाच ।

मैं सद्गुरु तुमगी बलिहारी । कर्म फाँस कैसे निरुवारी ॥
मोहि कहों जेहि दुख ना होई । काल चरित्र कहों सब सोई ॥
जो तुम्हरे दिल आवे गुसाई । संशय जालते लेहु छुडाई ॥

साखी-तुमरो भेद अगम्य है, काहु लख्यो नहिं भेद ।
सुर नर मुनि सबही ठगे, सनकादिक शुक्र देव ।

सतगुरु उवाच ।

धर्मदास सुनियो चितलाई । तुम जनि शंका मानो भाई ॥
पंथ हमारो चलावो जाई । वंश ब्यालिस अटल अधिकारी ॥
वंश ब्यालिस अंश हमारा । सोई समर्थ वचन पुकारा ॥
वंश ब्यालिस गरवाइ दीन्हा । इतना चर हम तुमको दीन्हा ॥
वंश अंश समर्थ कडिहारा । सो जीवनको करे उबारा ॥
तुम जिन शंका मानो भाई । समर्थ वचन राखो चितलाई ॥
अटक काहुकी तुम जिन मानो । पाँन नाम तुम निश्चय जानो ॥

साखी-तुम समर्थके अंश हो, जाग्रत वंश तुम्हार ।
समर्थ वचन जनि छोडहूँ, मानो वचन हमार ॥

साखी-ब्यालिसके निसाकी-धर्मदास उवाच ।

धर्मदास जब विनती लाई । हमसों पंथ ना चलै गोसाईं ॥
नरदेहीसों पंथ चलै ना भाई । जाते अपना अंश पठाई ॥
अंश ब्यालिस देहु पठाई । ते जग हंस लेहि मुकताई ॥
तुम्हें सिखावन हमसों लीना । तुम्ह लै धर्मदासको दीन्हा ॥
बचन वंश एक है भाई । नाम वंश जग में बताई ॥
बचन वंश है आदि निशानी । तिन्हकी पावै जग सहेदानी ॥
नाम नरायण हैं अभिमानी । तुम संसार फिरजावो अब ज्ञानी ॥

कबीर उवाच ।

तब समर्थ मोसे अस कही । बंशहि अंश चुरामणि सही ॥
तुम्ह जो सिखावन हमसों लीन्हा । ऐसा जग चूरामणि कीन्हा ॥
संधिक नाम है उन्हकी देही । पावै हंसा जो हमरे सनेही ॥

साखी-यह निज बचन समर्थके, हमसों मेटि न जाय ।

अमीनिको मैं सोंपो है, तुमको सोंपि न जाय ॥

साखी-धर्मदास उवाच ।

धर्मदास तब भए मलीना । उठि सद्गुरुसों विनती कीन्हा ॥
हो साहेब मैं तुम बलहारी । बंसनारायण शरण तुम्हारी ॥
नाम प्रतीत तुम करो संभारी । नामनरायन तुम बोल बिचारी ॥
अपनौ बोध राखौ संसारा । बिंद बंस प्रण आए हमारा ॥

साखी-इतनी विनती मैं कहूं, तुम दाता गुरु मोर ।

संशय मेटो जीवको, लेहो फँदको छोर ॥

साखी-वंश निषेदकी-सतगुरु उवाच ।

धर्मदास तुम बडे विवेकी । तुम्हरे घटमें बुद्धि बढ देखी ॥
घर घर गुरु जगतमें होई । हमरे गुरु बचन बंस है सोई ॥
वह सब करै मुखहि चतुराई । ताते जीव राखे भरमाई ॥

मान तजी लेहि परमाना । खोवै जगतपात अभिमाना ॥
 वचन बंशकी पारख पावै । सोइ हमारे बंस कहावै ॥
 बचन बैस पारख नहिं होई । बंस हंस सब जाय बिगोई ॥
 बचन बन्धीए वंश अधिकारा । पारस सरूपी है संसारा ॥
 पारस छुवे लोहा कैचन होई । पोहोप बास तिल भेदे सोई ॥
 बचन बंश है पुरुष सनेही । कागरूपते हंसकरि लेही ॥
 सो सब उत्पत्ति कहो समुझाई । जो चीन्हे तो लोके जाई ॥
 धर्मदास तुम पन्थके राजा । नाद बिंदु हम दोनों साजा ॥
 तुम्हरे बंश पन्थके कडिहारा । बचन बंस लोक सठिहारा ॥
 सद्गुरु बचन लेहि सिर माई । तब तुमरे वंश करे गुरुवाई ॥
 साखी—कहे कबीर ।

नाम नरायण जगद्गुरु, करै बोध संसार ।
 वचन प्रतापते छूटहि, वो समर्थके कडिहार ॥

साखी—वंश अंसनके—धर्मदास उवाच ।

धर्मदास बिनती अनुसारी । साहब बिनती सुनौ हमारी ॥
 काया पांजीको भेद लखाओ । वंश अंश दोऊ तत समुझावो ॥
 वा सन्धि कहो जाते होय उबारा । सोई भेद तुम कहो पुकारा ॥
 धाम चारिका भर्म वतावो । कैसे कैलसो आनि समावो ॥
 धर्मराय जो अपरबल वीरा । तीन लोकमें ताकी पीरा ॥
 कैसे पन्थ चलै जगमाहीं । तीन लोकमें ताकी छाहीं ॥

साखी—पांजी भेद लखान हौ, वंश अंशानिरधार ।

इतनी संशय मिटावहू, सतगुरु हंस उबार ॥

साखी—काया पांजी—सतगुरु उवाच ।

धर्मदास कहौ समुझाई । काया पांजी आदि है भाई ॥
 सुर नर मुनि कोई गम्य न पावा । झूठी आस बांध सब धावा ॥

पांजी चार भेद है भाई । चार अंश सब जगहि भ्रमाई ॥
अक्षर तीनि लोक उरझावा । तीनि लोक अक्षर ठेहेरावा ॥
जंबु दीप है यमको बासा । कैसे मुक्ति होय परकासा ॥
तुम तो जुगन जुगन चलि आए । काहे न शुक्ल जीव मुक्ताए ॥
चारि बेद तुम्हें नाहीं मानै । वेद क्रिया सब जीव समानै ॥

साखी—हमसों पंथ ना चलिहै, भवसागर दारुण है द्रन्द ।
वंश बयालिस तारहु, काटो कर्मके फंद ॥

सद्गुरु उवाच ।

सुनो धर्मदास कहूँ मैं तोहीं । तुम नहिं निजके चीन्हे मोहीं ॥
हमरो कह्यो नहिं मान्यो भाई । अपना बँस मान्यो मुक्ताई ॥
सकल सृष्टि गुरु तुमकूँ कीन्हां । तुमसों बंस बयालिस लीन्हा ॥
तुमको जानि बडाई दीन्हा । जक्तगुरु हम चूरामणिकीन्हा ॥
हमसों समर्थ ऐसी कही । चूरामणि वंशजीवन निरवही ॥
वचन वंशको जो नहिं मानी । ताकों काल करै जिवहानी ॥
तुमकूँ सेवै गुरु व्यवहारा । सो देखे समर्थ दरबारा ॥
जो नहिं मानें कहा तुम्हारा । ताका सास्ती करै वहि पारा ॥

चौपाई—तुम गुरु बयालिस वंशके, हम कह्यो वचन टकसार ।
तुम्हरे हाथ जीव सब पहुँचहिं, तुम समर्थ कडिहार ॥

साखी—गुरुब्याख्यानकी—धर्मदास उवाच ।

हो सतगुरु मैं तुम बलिहारी । हम मान्यो निज कह्या तुम्हारी ॥
तुम सतगुरु हम शिष्य अजाना । तुम सम तुमहम पुरुष पुराना ॥
गुरुवाईका लेखा सुनाओ । बिन लेखा जीव कैसे मुक्तावो ॥

साखी—लेखा कहो तुम सद्गुरु, सब संशय निरधार ।

हम गुरुवाई करी है, मान्यो वचन तुम्हार ॥

चौपाई-गुरुवाईकी जुगति-सतद्गुरु कहै ।

सुनौ धर्मदास कहों मैं बानी । बात हमारी तुम निश्चय मानी ॥
वचन वंश नहीं लागै भारा । लेखा देखि चले कडिहारा ॥
बिन लेखा गुरुवाई करही । आसाबंध कालमुख परही ॥

चौका बिसथारकी जुगति ।

प्रथम लेखा जब चौका पोतावै । तब निकुत मंत्र ले नीर मँगावै ॥
दुसरे चौका पूरौ भाई । काया मूलको मंत्र जगाई ॥
तिसरे आसन करौ विस्तारा । पुरुषशब्द निज करौ पुकारा ॥
चौथे कलस लै आगे राखौ । पंचतत्त्वको मंत्र मुख भाखौ ॥
पाँचमो नारियर स्नान करावौ । सोहं शब्द लै भद्र करावौ ॥
छठवे स्वेत मिठाई आनौ । मानसरोवर मंत्र बखानौ ॥
सातवें उत्तम पान मँगावौ । पक्ष पालना मंत्र गोहरावौ ॥
आठवें दलकी जुगति सुधारी । दयाशब्द घोखौ अधिकारी ॥

साखी-अरु कपूर लोंग इलायची, दल निरनैकी जुगति ।

विधि विल छांनि केन्द्रहूँ, दीन्हाँ गुरु जिव मुक्ति ॥

चौपाई ।

नौमे नया वस्त्र ले आवो । अमर चीरको मंत्र जपावो ॥
दसवें सोरा सुपारी धरहु । पाताल अंशको मंत्र उचारहु ॥
ग्यारहें पाँच बरतन आनौ । आदि नामको मंत्र बखानौ ॥
बारहें आनि धरो परवाना । संधिकमंत्र कहो परवाना ॥
तेरहें चँदवा छत्र बनाया । समरथ मंत्र छत्रपति आया ॥
चौदहें आरति आनि बनाई । सोहँग मंत्र निर्णय गोहराई ॥
पंद्रहें तिनका अर्पण कीन्हा । चौदा यमका मन्त्र तब चीन्हा ॥
सोरहें षोडश मंत्र प्रवाना । कदली दल तहां उत्तम आना ॥
सत्रह सतगुरु करे निशानी । सो नरियर मों डारो पानी ॥

अठारवेंअमि शब्द ले नरियरमोरे । नहिं तौ काल सीस लै तोरे ॥
बिना एकोत्री जो कडिहारा । ते सब बांधे यमके द्वारा ॥
बिना लेखे जो गुरु कहावे । गुरु डूबै शिष्य पार न पावे ॥

साखी—इतना लेखा पावै, सो साँचो कडिहार ।

कहें कबीर बिन लेखा जाने, छलइ काल बटपार ॥

साखी—कडिहारी भेदकी धर्मदास उवाच ।

साहेब इतना भेद न आवै । सो नाहीं कडिहार कहावै ॥
मूल भेद तुम कहो प्रमाना । तेहिते हंस होय निर्वाना ॥
मूल भेद है आदि निशानी । सो समरथके होय प्रमानी ॥
इतनी परचै हमकूं दीजै । मूल भेदकी दया गुरु कीजै ॥
गुरु सोई जो ज्ञान बतावै । और गुरु कोइ काम न आवै ॥
साखी—धर्मदास क्रीया करै, छुओ सतगुरुके पाँव ।

साहेब जो मैं तुमते बिछुरो, तो मूलशब्द बाहर होइ जाव ॥

साखी—मूल भेदकी सद्गुरु उवाच ।

धर्मदास कहो मैं सोई । भूल भेद घट राखौ गोई ॥
गुरु मर्याद काहू ना पाई । ताते शब्द तुम राखौ छिपाई ॥
मूल भेद है अगम अपारा । विरला हंस पावही पारा ॥
सुर नर मुनि गण गन्धर्व देवा । तिनहू मूल नहिं पायो भेवा ॥
काया मूल है आदि निशानी । सो धर्मनि तुम सुनो प्रमानी ॥
जो निज योग समाधि लगावै । सो तो लाभ तिनहुं नहिं पावै ॥
चार वेद जिस अगम बखाना । मूल भेद वेदो नहिं जाना ॥
अक्षर मूलकी उत्पति भाखी । अजर मूल लै बाहर राखी ॥
अजर मूल है सबको मूला । तेहिते प्रथम काया है स्थूला ॥
लखो सैनमें देउ लखाई । अजर मूल लै लोक समाई ॥
भिन्न भिन्न सब मूल बताऊं । अजर मल माया दिखलाऊं ॥

मूल भेद ।

प्रथम मूल आदि है भाई । जिन सब उत्पति अंकुर बनाई ॥
 दूसर मूल वानी है व्यवहारा । तेहिते सहज सुरति निरधारा ॥
 तीसर मूल मर्मको पावै । मूल सुरति सब भेद बतावै ॥
 चौथ मूल सोहंग बँधाना । तामें सुरति ओहंग समाना ॥
 पाँचवें मूल है अर्चित पर बानी । प्रेम सुरति तिहि माँहि समानी ॥
 छठे मूल अक्षरकी बानी । योगमाया अक्षर उतपानी ॥
 सातवें मूल सबहीकी बानी । तेहिते कैल निरंजन जानी ॥
 अक्षर मूल है सातवें काला । त्रिगुण काल उत्पति प्रतिपाला ॥
 चार काल अपरबल बीरा । जाते जीवको व्यापे पीरा ॥
 इतनो मूल चारि काल बखानी । अजर मूल चारिमाँहि समानी ॥
 सद्गुरु मिले तो भेद लखावै । बिना सतगुरु कोइ पार न पावै ॥

साखी-बिनु सद्गुरु बाँचे नहीं, कोटिन करै उपाय ।

अजर मूलका खोज न पावै, बांधे यमपुर जाय ॥

साखी-मूल व्याख्यानकी-धर्मदास उवाच ।

तुम सद्गुरु हो समरथ दाता । कैसे मिटे कालकी घाता ॥
 तौन भेद गुरु देहु बताई । जेहिते हंस-लोकको जाई ॥
 शब्द-परीक्षा हमको दीजै । सब जीवनकी परचै कीजै ॥
 कैसे सीख हम करै संसारा । तौन भेद मोहे कहो विचारा ॥
 कैसे तरिहैं जगके हंसा । कैसे निर्भय तुम्हारे वंसा ॥

साखी-वंश अंशकी निर्णय, हमसों कहो समुझाय ।

केहि विधि हम जो निस्तरे, कैसे लोकहि जाय ॥

सद्गुरु उवाच ।

सुनो धर्मदास कहूं मैं तोही । वचन बंश प्रताप है सोही ॥
 वंश बयालिस वचन हमारा । जिनको समरथ है रखवारा ॥

ताको खोजि परमपद पावै । भवसागरमें बहुरि न आवै ॥
 जिनके ब्यालिस वंश तुम्हारा । जिनके वचन अंश हैं कडिहारा ॥
 वचन वंशको अंश न दावै । तुम्हरो वंश नहीं बोध चलावै ॥
 एहि विधि वंश अंश जो होई । दूत भूत यम कंपै सोई ॥
 जाति न जै और मोह न आवै । सोई वंश अंश कहलावै ॥
 कलकी दशा जानिके खावै । निश्चय राज वंश गुरु होवै ॥
 जिनके पारस चले संसारा । देखत काल होय जरिछारा ॥
 कडिहारी लेखा ।

अब सुनियो कडिहारी लेखा । वंश अंशको जानि विवेका ॥
 वंश अंशको करै बिचारा । सो कहिये वोहित कडिहारा ॥
 वंश अंश नहीं अक्षर पावै । सो कडिहार बोधकूं ध्यावै ॥
 वंश वचन कडिहारी करहीं । सो कडिहार फाँस नहीं परहीं ॥
 कडिहारका किन होय कडिहारा । लक्ष चौरासी अटकै सो बारा ॥
 जाति पांतिकी दसी न राखै । सद्गुरु परिचय निशिदिन भाखै ॥
 वंश अंशको पान चलावै । सो साँचै कडिहार कहावै ॥
 हंसकी चाल ।

अब सुनियो जग हंस बिचारा । प्रथमहि चौका करै हमारा ॥
 चौका अंश समर्थके भाई । तिन्ह अपनी युग अदल चलाई ॥
 चौका अंश कालकी हानी । तेहिते पुरुषकी सुरति समानी ॥
 तिनका तोए लेहि प्रमाना । यम भाजै छोडै अभिमाना ॥
 चरणामृत हि तत्त्वसों लेही । यमके हाथ चुनौती देही ॥
 प्रेम प्रतीतसो सेवा लावै । नाम पान गुरु अक्षर पावै ॥
 हंस वरन हो तहवाँ जाई । जब सतगुरु सतशब्द लखाई ॥
 एहि विधि वंश हंसकी करनी । ताते तुमसों कहुंवचन प्रमानी ॥

साखी—एहि वचन निज सत्य है, तुम वंश अंशको पान ।
 कडिहारी लेखा सार है, हंसहि भाव भक्ति परवान ॥

साखी-वंशअंशकी-धर्मदास उवाच ।

साँचे सतगुरु हम भल पावा । जमको धोखा सबहि मिटावा ॥
गुरु शिष्यको भेद हम पावा । वंश अंश लै सबै परखावा ॥
अब वंश अंशका कहो प्रमाना । केते वंश केते अंश ठिकाना ॥
वंश अंश केते कडिहारा । तेहिकी परचै देहो विचारा ॥
केतिक वंश कडिहार समुझाई । केतिक संग हंस लै जाई ॥
केतिक प्रमान वंश हंस चलिजाई । सो समर्थ मोहे देहो चिन्हाई ॥

साखी-वंश अंशके प्रमान कहो, लेखा देहो बताय ।

एती सन्धि मोसों कहौ, सब संशय मिटिजाय ॥

साखी-सबवंश प्रमानकी-सद्गुरु कबीर उवाच ।

धर्मदास तुम बडे विवेकी । तुम्हरे घट बुद्धी बढ देखी ॥
बचन वंश बयालिस ठीका । तिन्हको सप्रथ दीनो टीका ॥
वंश अंश वचन एक सोई । दीर्घ वंश अंश लघु होई ॥
जेठौ अंश वचन मोरो जागै । और वंश जगके पीछे लागै ॥
तिन्हकी छाप चलै संसारा । और वंश जगके कडिहारा ॥
बीस दिना और वर्ण पचीसा । इतना कुलमें चलै सँदीशा ॥
साठि वरण अंसा परमाना । चारवंश तेहि माँहि समाना ॥
नामवंशकी पारख देऊ । तिनसे ब्यालिस वंश कहिदेऊ ॥
तिनसे ब्यालिस वंश कडिहारा । वचन वंश ब्यालीस पसारा ॥
चाल चलै और पन्थ दृढावै । भुले जिवन घरघर समुझावै ॥
वंश छत्रपति सिद्ध सुधारी । नाम अंश करे कडिहारी ॥
धर्मदास एक वंशकी हानी । पावै वचन सो वंश समानी ॥
हमरो वचन चुरामनि सारा । वंश अंश ब्यालिस है अधिकारा ॥
सोई वंश जे वचन विचारे । विना वचन नहि वंश हमारे ॥

कडिहार ओ हंस ।

वंश अंश वोहित कडिहारा । सदा हजूरी पलक न न्यारा ॥
वैसी चाल हंसकी होई । सदा हजूरी पलक दूरि ना होई ॥

वंश अंश हंस प्रमान ।

पीढी १ ।

प्रथम वंश अंशकी बानी । बचन कडिहार एके प्रमानी ॥
दो सित्तर हंस तिन्ह तारे । अपने कर सब जीव उबारे ॥

पीढी २ ।

दूसर वंश अंश चलि आवै । पांच कडिहार निशानी लावै ॥
दुसरे वंश अंश अधिकारा । सातसौ तेरे जीव उबारा ॥

पीढी ३ ।

तीसर वंश अंश जब दोई । नख कडिहार तालुके सोई ॥
हंस सोरासे लोक प्रमाना । १६०० । तिन्हके हाथमुचन बंधाना ॥

पीढी ४ ।

चौथे वंश अंश जग आवै । भवसागरमो पीर कहावै ॥
तेरहसो हंस तीनि कडिहारा । १३०३ । तिनके संग उतरि गयोपारा

पीढी ५ ।

तेहि पीछे काल अचरज होई । अंशही वंश बिरोधे सोई ॥
पांचवे वंश अंश परवाना । सात कडिहार तिन्हके बन्धाना ॥
तीन हजार चारसौ सोई । ३४०० । इतना हंस लोकको होई ॥

पीढी ६ ।

छठे वंश अंश अधिकारा । ताते काल आनि पैठारा ॥
पुनि आवै पुरुषहि सहदानी । तरै कडिहार तिन्हके परवानी ॥
छःसै सत्तर सात हजार । ७६७० । वंश अंश संग उतरे पारा ॥

(१५०)

कबीरबानी ।

पीढी ७ ।

सातवें वंश अंश परवानी । द्वादश ताके कडिहार बखानी ॥
तीनि हजार पांचसै बावन । ३५५२ । इतने हंस पहुँचे मनभावन ॥

पीढी ८ ।

आठवें वंश बचन परकासा । सत्रा कडिहार तिनके रहे बासा ॥
पांच हजार चारिसै बारा ५४१२ । पहुँचे लोक पुरुष दरबारा ॥

पीढी ९ ।

नौमें वंश अंश जब आवै । पचीस कडिहार संग तब पावै ॥
सात हजार आठसै छत्तीसा । ७८३६ । प्रगटे बंश अंश जगदीसा ॥

पीढी १० ।

दर्शें वंश अंश अधिकारी । बत्तिस कडिहार भेद जग भारी ॥
तीनसै पांच और आठ हजार । ८३०५ । तबही पंथ चढे असरारा ॥

पीढी ११ ।

ग्यारह वंश तेतीस कडिहारा । नवसै पांच और नव हजार ॥
पीढी १२ ।

द्वादशवें वंश छत्तीस कडिहारा । ३६ । दोसै सत्तर सात हजार ॥
पीढी १३ ।

तेरहा वंश अंशकी बानी । चालीस कडिहार तिनके परमानी ॥
सोरा सहस्र चारिसै पन्दरा । १६४१५ । पहुँचेलोकमितैयमनिद्रा ॥

पीढी १४ ।

चौदह वंश अंश निर्बाना । बावन५२ कडिहार बोहित परवाना ॥
तीससहस्र और नवसै तेरा । ३०९१३ । सब पंथका न होय निवेरा ॥

पीढी १५ ।

पंद्रह वंश अंश चलि आवै । पंथ मेटि आप पंथ चलावै ॥
साठि कडिहार मिलि बोध चलावै । साठि हजार हंस मुक्तावै ॥
चालिस मंडल भयो पसारा । तबही पंथ चलै असरारा ॥

पीढी १६ ।

सोरह वंश कला अधिकारी । सत्तर ७० कडिहार शब्द उजियारी ॥
चौंसठ हजार पांचसै बारा । ६४५१२ । इतने हंस सब उतरे पारा ॥

पीढी १७ ।

सत्रह वंश अंशकी बानी । असी कडिहार तिन्हकी परमानी ॥
छिहत्तर सहस्र पांचसै तीसा ॥ ७६५३० ॥ धर्मदास कुल आदिसदीसा

पीढी १८ ।

बंश अठरहे नवे कडिहारा । असी हजार हंस लै उतरे पारा ॥
८०००० तब कलियुगकी दसी मिटाई । बंश अंश प्रगटे अधिकाई ॥

पीढी १९ ।

उन्निस बंस अंश अधिकारा । एकसै सात तिन्हके कडिहारा ॥
छानवे हजार सातसै दोई । ९६७०२ । इतने हंस लोकको होई ॥

पीढी २० ।

बीसो बंश अंशकी बानी । एकसौ तेरह कडिहार बखानी ॥
लाख एक औ बीस हजारा । पांचसै हंस ज्योति निर्धारा ॥
॥ १२०५०० ॥

पीढी २१ ।

बंस एकसौ जग चलि आई । एकसौ तीस कडिहार अधिकाई ॥
१३० लाख दोय और तीस हजारा । छःसे अंश जो पांच अधिकारा ॥
॥ २३०६०५ ॥

पीढी २२ ।

बंश बावीसे दोय सौ कडिहारा २०० । तीन लाख और चालीस
हजारा । सातसौ अंस जो बीस अधिकारा ॥ ३४०७२० ॥ जाग्रत
बंस करे कडिहारा ॥

(१५२)

कबीरबानी ।

पीढी २३ ।

तेइस वंश अंशकी बानी । दोईसै तेरा कडिहारा जो जानी २१३ ॥
तीन लाख और तीस हजारा । इतने हंस जो पांच अधिकारा
॥ ३३०००५ ॥

पीढी २४ ।

चौबीसे वंश अंश जग आवै । तीनसै कडिहार बीसते पावै ॥
पीढी २५ ।

लाख चारि जो तीस हजारा । चालिस हंस पहुँचे दरबारा ॥
वंश पचीसे तीनसे छप्पन कडिहारा । लाख पांच हंस भयो पारा ॥
पीढी २६ ।

छबीसौं वंश चारसौ कडिहारा । लाख पांच और तीन हजारा ॥
नवसै सत्तर हंस उबारा ॥ ५०३९७० ॥
इतना मर्म हंसको जानी । सब मंडल अटलै रजधानी ॥
पीढी २७ ।

सत्तावीस वंश अंश अधिकारी । छःसो हंस करै कडिहारी ॥ ६०० ॥
सात लाख छानवें हजारा । सातसै पैसठ हंस निरधारा ॥ ७९६७६५ ॥
पीढी २८ ।

वंश अठाविस जाग्रत होई । पांचसौ कडिहार जो पंदरा सोई ५१५
लाख चारि जो बीस करोरी । पैतिस हजार तीन सोकोरी ॥
॥ २००४३५३०० ॥

पीढी २९ ।

उनतिस वंश मंडल उनचासा । सातसै तीस कडिहार प्रकाशा ॥
७३० ॥ तीस करोर लाख है सोरा । साठ हजार सात सौ तेरा ॥
॥ ३०१६६०७१३ ॥

पीढी ३० ।

वंश तीस नौसों कडिहारा ॥ १०० बयालीस करोड लाख है सत्रा ॥
बारा हजार आठसों सत्रा ॥ ४२१७१२८१७ ॥ इतना हंस कीन्ह
पवित्रा ॥

पीढी ३१ ।

एकतिस वंश त्रेपन हजार । चारिसौ बावन भयो कडिहारा ४५२
सत्तर करोड और पैसठ लाखा । सैंतालिस हजार नौसे बावन
हंस उबारा ॥ ७०६५४७९५२ ॥

पीढी ३२ ।

बतीसे वंश सतावन हजार । नौसौ सैंतालिस तिनके कडिहारा ।
५७९४७ ॥ एक पदम दोय नील बखानी । छहत्र करोड लाख
बाविस जानी । नौहजार सातसे तेरे । इतने हंस पहुँचे निज मेरे ।
१०२००००७६२२०९७१३ ॥

पीढी ३३ ।

तेतिस वंश ओनसठि हजार । छेत्तीस हंस अधिकारी कडि-
हारा । ५९०३६ ॥ चारी शंख पदम दस सोई । तीस खर्व
नील ब्यालिस होई ॥ सित्तर लाख और पचीस हजार ।
सातसै हंस चार अधिकारा ॥ ४१०४२३०००००७०२५७०४

पीढी ३४ ।

चौतीसौ वंश औरा बासठि हजार । सातसों चौपन तिन्हके
कडिहारा ॥ ६२७५४ ॥ छतिस शंख खर्व उनहत्तर । चारि
पदम अर्ब छेहत्तर ॥ बत्तीस करोड लाख नव आवै । ब्यालिस
हजार तीनसै आवै ॥ ३६०४००६९७६३२०९४२३०० ॥

पीढी ३५ ।

वंश पैतिस सत्तर हजार । पांचसै उनचास तिनके कडिहारा ॥
७०५४९ ॥ पदम असी सात खर्व अर्ब है बारे । छत्तिस

क्रोड लाख है तेरे ॥ बारे हजार नवसै साता । पहुँचे हंस
निज इतने साथ ८००००७१२३६१३१२९०७ ॥

पीढी ३६ ।

छत्तीस वंश और साठ हजारा । तीनसै चौंसठ तिन्हके कडि-
हारा ॥ ६०३६४ ॥ पचहत्तर पदम खरब उनचासा । अर्बुद
सात करोड पचासा ॥ लाख चार तेरा हजार सातसै बावन ।
इतने हंस पहुँचे मनभावन ॥ ७५००४९०७५००४१३७५२ ॥

पीढी ३७ ।

सतीससै वंश और चोसठ हजारा । सातसे पैंतालीस हैं कडि-
हारा ॥ ६४७४५ ॥ सत्तर शंख पदम नव होई । छयासी
खर्ब नील बावन सोई ॥ नव अर्बुद हैं चौदह करोडी । ग्यारे
लाख बारे हजारा नौसे तेरे जोडी । मंडल अठानवें फिरे
दोहाई । सत्य थापि असत्य उठाई ॥ ७००९५२८६०९१४१
११२९१३ ॥

पीढी ३८ ।

अडतीसौ वंश बहत्तर हजारा । छहसै तेरा हंस कडिहारा ॥
७२६१३ ॥ शंख तीस और खरब है सोरा । नव अर्बुद करोर
है तेरा ॥ छप्पन लाख हजार चौबीसा । नवसै बहत्तर पहुँचे
हंसा ॥ ३०००००१६०९१३५६२४९७२ ॥

पीढी ३९ ।

उनतालीस वंस और असी हजारा । सातसौ तिहत्तर तिनके
कडिहारा ॥ ८०७७३ ॥ पांच असंख शंख पचवीसा ।
चालीस पदम नील एक बीसा ॥ सात खरब अरब है बारे ।
नव करोड लाख है छयानुं पंचवीस हजार सातसौ बानी ।
बानौ उत्तम जानि बखानी । इतने हंस लोक भल जानी ॥

पीढी ४० ।

चालिस बंश छयासी हजार । नवसै बहत्तर तिनके कडिहार ॥
४६९७२ ॥ नव शंख नीले हैं बावन । पचहत्तरि खरब
अर्ब दोय भावन ॥ सात करोड और बत्तिस लाखा ।
त्रेसठ हजार पांचसै तेरा साथ । इतने हंस लोक लै राखा ॥
९००५२७५०२०७३२६३५१३ ॥

पीढी ४१ ।

ब्यालीसवें वंश विस्तारा । लाख एक चौसठ हजार
कडिहारा ॥ अगणित हंस लहै को पारा । १६४००० ॥
तीस अंश शंख पंदरा सोई । आठ नील नौ खर्ब तहां होई ॥
अर्ब ब्यालिस तेरा करोडी । ग्यारा लाख सहस्र दश जोरी ॥
इतनो वंश अंश हंसको लेखा । जो पहुँचे सो करै विवेका ॥
३०१५०००८०९४२१३१११०००० ॥

एते बचन वंश परमाना । सो पावै निज वंशको पाना ॥
चारि गुरुके बाहर राखो । उन्हके प्रमान उनहीसों भाखो ॥
साखी—कहैं कबीर ।

वंश अंश हंसकी निर्णय, और कडिहारी लेख ।

कहैं कबीर धर्मदास सों, तुम हिरदै करो विवेक ॥

लिखते कबीर बानीके कलसा । धर्मदास पूछेव ।

चौपाई ।

धर्मदास विनती अनुसारी । धनि सतगुरु तुम्हरी बलिहारी ॥
संशय एक मोरे दिल आई । सो समर्थ मोहे कहा समुझाई ॥
इतना आगम ठानी तुम राखा । सो समर्थ तुम आगम भाखा ॥
वंशके संग चलै कडिहारा । सो तुम खोलि कहो विस्तारा ॥
कडिहार संग जो हंस पियाना । ताका तो तुम्ह कीन्हा बन्धाना ॥

तिनमें फेरफार कछु नाई । सो समर्थ तुम कहिं दिखलाई ॥
 सबही हंसलोकको जाई । तो काहेको पुनि करै कमाई ॥
 सब कडिहार जहँ एक ठिकाना । सब हंसनको एकै स्थाना ॥
 सबही हंसा एक सरीखा । अब गुरुमहिमाको कौनबिशेखा ॥
 एक भौम्य एक है स्थाना । सब कडिहार एक करिं जाना ॥
 वचन वंश थापै कडिहारा । सगरे रहे एक दरबारा ॥
 सबही वंश कडिहारके बोधे । योग युक्ति काहेको सोधे ॥
 काहेको एहि तन मन बारे । काहेको धन जोबन गारे ॥
 काहेको चरणामृत लेही । सीथ लियेकी महिमा केही ॥
 सबही हंस हैं एक समाना । काहेको चौका आरतिठाना ॥

साखी-धर्मदास ।

भलौ नाव वाही कैलको, जिव सब एक न समान ।
 जैसी कमाई जीवकी, ताको देवै सोउ स्थान ॥

चौपाई सद्गुरु कबीर उवाच ।

सुनो धर्मदास यह भेद नियारा । तुमको खोलि कहों सो निस्तारा ॥
 सब रजधानी पुरुषहि कीन्हा । कैलक सिखावन पुरुषहि दीन्हा ॥
 ऐसी शंक जिन पूछो भाई । कच्चा जीव बिचलिके जाई ॥
 समुझे हंस बहुत सुख पाई । सर्वज्ञान कालमूल बताई ॥
 द्वादश पंथ भेद ना पावो । सातों सुरति पुरुष निर्मावो ॥
 सर्व सरीखे नहिं होय कडिहारा । कैसे रहे एक दरबारा ॥
 केतिक सातों सुरति घर जैहैं । उन्हके दीपमों बासा लैहैं ॥
 सोलहै अंश समर्थ बड कीन्हा । उन्हको दीप बडे बडे दीन्हा ॥
 कितने रहैं उन्हे दीप मँझारा । आपन बोध लिये कडिहारा ॥
 अवरदीप पुरुषके रहई । उनहीं दीपमें वासा लहई ॥

सहस्र अठासी दीप सुधेरा ८८००० । तहाँ सब हंसा करै बसेरा ॥
सब दीपनमाँ शोभा पावैं । वहाँके गए बहुरि नहिं आवैं ॥

गुह्य भेद ।

एक बात है अन्य नियारी । सोइ मैं धर्मनि कहीं पुकारी ॥
सकल दीप थे दीप निन्यारा । तहवाँ अमरथको दरबारा ॥
कितने कडिहार वा घरकूँ जाई । गुप्त भेद तुम अछप छिपाई ॥

छन्द—तहाँ समर्थ आपबिराज हैं ताका महिमा को लहै ।
दीपउजियारी कहा बरनौ बास स्वासा सो रहै ॥
आन दीपके हंस हैं सो वाको जाने नहीं ।
उहाँके बासी हंस सोहेला सो और दीप मानैं नहीं ॥
सदा हजूरी हंस विहँगम जिन देही उन बिसराइया ।
गुरु शिष्य दोई एक होइके सो वा दीपसिधाइया ॥

सोरठा—कदली करें पात, पात पातमें पात है ।

ऐसे बात बातमें बात, जानैगा जन जौहरी ॥

चौपाई—धर्मदास उवाच ।

धर्मदास फिरि शीस नवावा । दोउ कर जोरिके विनती लावा ॥
सोइ हंस रहे पुरुष हजूरी । उनकी रहनि कहौ गुरु थोरी ॥
कैसे रहै वे कैसे बोलैं । कैसे बैठें वे कैसे डोलैं ॥
कौन ज्ञान कौन है करनी । सो सद्गुरु कहो मोहि बरनी ॥
जगमें रहै कौन सत्य भाऊ । कैसे काया केर सुभाऊ ॥
आन दीप रहै सत्य सुभाऊ । कहो उन्हकी कायाकेर प्रभाऊ ॥
दोउकी परचै मोहि सुनावो । ज्ञान दृष्टि करि मोहि दिखावो ॥

साखी—यह कछु अचरज बात है, कहि दिखलावो मोहि ।

देखो ज्ञान बिचारिके, तबहि हृदय सुख होहि ॥

सद्गुरु कबीर उवाच ।

सुनो धर्मदास मैं कहूँ समुझाई । गुह्य भेद जिन बाहेर जाई ॥
 द्वादश पंथ यह भेद न पावे । वेहे दोजकका पंथ चलावे ॥
 बहुत होइहै अपनो कडिहारा । सो नहिं जाने भेद हमारा ॥
 पूरण दया सद्गुरुकी होई । वंश आपुमें लेहि समोई ॥
 जिनकूं देहि निरअक्षर पहिचानी । सो कडिहार ले अगमकी बानी ॥
 सो निज पावे भेद टकसारा । सदा हजूरी पलक नहिं न्यारा ॥
 देखा देखी करै कडिहारा । भेद ना पूछे मूढ गँवारा ॥
 देखा देखी बोध चलावै । फूलि फूलि साखी पद गावै ॥
 चौके बैठि ना करे निरुवारा । चौका जुगुति ना जाने गँवारा ॥
 पूरुष अंश पुरुष सम होई । अपने दीप ले जावे सोई ॥

बिहंगमतिके हंसवर्णन ।

अब तुम सुनौ विहंगम बानी । विहंगमति हंस पहुँचानी ॥
 निरअक्षर निस्तत्त्व निवासा । निहंतत्त्व अगम्य है वासा ॥
 चौका करै जानै वहिवारा । अंश बतीसै सबसो प्यारा ॥
 सब अंसनको प्रमाण करि जानै । अपने अपने स्थान वे जानै ॥
 सब अंशनकी लाग्य चुकावे । सुरति निरति सद्गुरुसों पावे ॥
 नौतम सुरति संग सनेही । एको पलक दूर नहिं होई ॥
 ओ कहिये बोहोत कडिहारा । सदा हजूरी पलक नहिं न्यारा ॥
 अस कडिहार ते साररस होही । एक प्राण दोई है देही ॥

साखी-जैसी मति कडिहारकी, तैसी मति हंस होय ।

सदाहजूरी पुरुषके, छिन छिन दर्शन जोय ॥

चौपाई-धर्मदास उवाच ।

सुने सद्गुरु कडिहार रहानी । सबहि स्थान परे मोहि जानी ॥
 अब कहिये नूर न हंसका भाऊ । सो समर्थ मोहि बानि सुनाऊ ॥

आन दीपमों करै रजधानी । प्रथम भाषौ उनकी सहिदानी ॥
सदा रहै वह पुरुष हजूरी । उन हंसनकी कहो मत पूरी ॥
साखी-जेहि तुम बानी कहत हौ, मोहि सुनि होत अनंद ॥

पूरा सद्गुरु पाइया, मिटे कालके फन्द ॥

चौपाई-सतगुरु कबीर उवाच ।

आनद्रीपके हंसनके वर्णनकी ॥

अब सुनियो उनहंसनकी बानी । कुल करनीमें रहै लपटानी ॥
सहजभाव वोह भक्ति करैहीं । झूठ संसार सों रहै सनेही ॥
चौका आरति ज्ञान समाना । दोइ दिशा वह रहै लपटाना ॥
इतनी वंश छाप अधिकाई । धोखे हंस नष्ट नहिं जाई ॥
जिन्हकी जैसी चाल प्रमाना । जो जस पहुँचै जाहि स्थाना ॥
जिन हंसन जैसो सुतन सवारा । जाहि दीपमें बास बसारा ॥
सब दीपनमें करें आनन्दा । देहि क्रांत उगे गवि चन्दा ॥

बिहंगमस्ती हंसके वर्णन ।

अब तुम सुनौ उन हंसकी बानी । बिहंग मताके हंस पहिचानी ॥
जगमें रहै कमल जस भाऊ । तन मन यौवन सब विसराऊ ॥
देहि इहाँ सुरती गुरुचरना । सूझै नहिं सुख जीव न मरना ॥
जैसे सर्प कांचरी जानै । कायाको ऐसे करि मानै ॥
युक्ती युक्ती देह बनावै । जगका सुख नहिं उनको भावै ॥
गुरु शिष्य एकै मत होही । एकै प्राण दोई है देही ॥
सो कडिहार गुह्य नहिं भाई । सोही जानै ताके ताई ॥
सोई हंस जानौ सब दूरी । जिन्हको कहिये पुरुष हजूरी ॥
नूतन सुरति है उनके पासा । सो कडिहार रहत उरदासा ॥
ज्ञान ध्यान सद्गुरु मन प्यारा । सदा हजूर पलक नहिं न्यारा ॥
युक्ति साँझि चरणामृत लेही । युक्तिहि युक्ति बनावै देही ॥
सदा रहै वह पुरुष हजूरा । छिन छिन दर्शपलक नहिं दूरा ॥

चार लाख छानवें हजारा । नवसैं बावन निज कडिहारा ॥
 इतने कडिहार निज घरैं सिधावैं । छिन छिनदर्श पुरुषका पावैं ॥
 इतनेके शिर छत्र धराई । अर्थ सिंहासन बैठक पाई ॥
 हस सुहल जाइ हजूरी । छयानों लाख और तेरा करोरी ॥
 बावन हजार पाँचसे आवैं । इतनै हंस शिर चँवर करावैं ॥
 एक देही एकै है ल पुरुष हंस एकसम तूला ॥
 पुरुष हंस एकसम भाई । सबके शीसपर छत्र तनाई ॥
 इतना सुख है पुरुष हजूरा । पहुँचे हंस सद्गुरु मत पूरा ॥

साखी-निःतत्त्व भेद यह गुप्त है, पाँच तीनसे न्यार ।

निःतत्त्वी जो हंस हैं, जैहैं पुरुष दरबार ॥

धर्मदास वचन चौपाई ।

सांचे सतगुरुकी बलिहारी । अपना कर्जिन लीन्ह उबारी ॥
 कठिन काल दारुन बड होई । यहि संसार लखे ना कोई ॥
 विन सतगुरु कोई भेद ना पावैं । सतगुरु मिले तो सन्धि लखावैं ॥

साखी-मनका संशय सब मिटा, हम पाया गुरु पूर ।

विना परिचय जो गुरु करै, सो नर मूरख कूर ॥

चौपाई ।

सुनौ धर्मदास हम तुम्हें बखानी । आदि अन्तकी सुधि तुम जानी ॥
 सम्बत पन्द्रसैं उनहत्तर आवैं । सतगुरु चले उडीसा जावैं ॥
 जबलगि वंश करै गुरु आई । तब लगि धरनी धरौं न पाई ॥
 जब लगि वंश ब्यालिस संसारा । तब लगि नाहिं आऊँ पिछारा ॥
 बचनवंश हम ब्यालिस भाखा । जगकी मुक्ति बचनकी शाखा ॥

साखी-तीनलोकके बाहिरे, सात सुरतिके पार ।

तहवाँ हंस पहुँचावहूँ, समरथके दरबार ॥

इति ग्रन्थ कबीरबानी समाप्त ।

विवेचन ।

इस ग्रन्थकी एकही प्रति सम्वत् १८४७ की लिखी हुई है इसकी दूसरी प्रति न होनेसे बहुत स्थानोंमें ज्योंका त्यों छोड़ना पडा है और अशुद्धियाँ रहगयी हैं । जब इतने वर्ष पीछेकी लिखी कबीर-पंथी ग्रन्थोंकी यह दशा है तब नवीन कबीर पन्थियोंकी लिखे ग्रन्थोंकी क्या गति होगी पाठक स्वयम् विचार कर लें ॥

इति ।





सत्यसुकृत, आदिअदली, अजर, अर्चित, पुरुष, मुनीन्द्र,
करुणामय, कबीर, सुरतियोग, संतायन, धनी धर्म-
दास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपतिनाम,
प्रबोध गुरुवालापीर, केवल नाम, अमोल
नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम, पाक
नाम, प्रकट नाम, धीरज नाम,
उग्रनाम, दया नामकी वंश
ब्यालीसकी दया ।

अथ श्रीबोधसागरे ।

एकोनविंशस्तरंगः ।

कर्मबोध ।



कर्म कथा अब कहूँ बखानी । जौन फांस अटके नरप्रानी ॥
चारों खानि कर्म अधिकाई । चहूँ खानि मिलि कर्म दृढाई ॥
कर्महि धरती पवन अकाशा । कर्महि चन्द्र शूर प्रकाशा ॥
कर्महि ब्रह्मा विष्णु महेशा । कर्महिते भयो गौरि गणेशा ॥

सात बार पन्द्रह तिथि साजा । नौग्रह ऊपर कर्म बिराजा ॥
 कर्महि राम कृष्ण अवतारा । कर्महि रावण कंस संहारा ॥
 कर्महि ले वसुदेव घर आवा । कर्म यशोदा गोद खिलावा ॥
 कर्महिते वन गऊ चराई । कर्मते गोपी केलि कराई ॥
 कौशल्या तप कर्म जो करिया । कारण कर्म राम औतरिया ॥
 कर्महि दशरथ कीन्ह उदासा । कर्महि राम दीन्ह बनवासा ॥
 कर्म जाय जब धनुष चढावा । कर्महि जनकसुता सिर नावा ॥
 कर्म हरयो सीता कहँ आई । दुख सुख कर्मताहि भुगताई ॥
 कर्म रेखते कोइ न मुक्ता । लछिमन राम करम फल भुगता ॥
 कर्मसागर बांधेउ बन्ध कहिया । कर्महि जल जीवन दुख सहिया ॥
 रुद्र राम कर्म कीन्ह लडाई । भला मिलाप हनू भेंट चढाई ॥
 कर्मरेख नहिं मिटे मिटाई । जीव पपील लङ्का होय आई ॥
 कर्मरेख लंकापति गयो । लंकापति विभीषण भयो ॥
 कर्म रेख सबहीं पर छाजा । कहा राम कहा रावण राजा ॥
 कर्मरेख सबहिन पर होई । देखो शब्द बिलोय बिलोई ॥
 कर्मरेख सागर बँध हीना । बिरला कोई चीन्हे चीन्हा ॥

साखी—कर्म रेख सागर बँध्यो, सौ योजन मर्याद ।

विन अक्षर कोइ ना छुटे, अक्षर अगम अगाध ॥

रमैनी ।

सागर भव सागर धारा । नहिं कुछ सूझे वार न पारा ॥
 तहवाँ बावन अक्षर लेखा । कर्म रेख सबहिन पर देखा ॥
 कर्म रेख बंधा सब कोई । खानी बानी देखि बिलोई ॥
 वेद कितेब कर्महीं गाया । कर्महिको निःकर्म बताया ॥
 सद्गुरु मिले तो भेद बतावें । कर्म अकर्म मध्य दिखलावें ॥
 कर्म अकर्म मध्य है सोई । सो निःकर्म अकर्म न होई ॥

अक्षर सागर निर्भय बानी । अक्षर कर्म सबन पर जानी ॥
 गोरख भरथरि गोपीचन्दा । कर्म फांस सबही पुनि फन्दा ॥
 सौ औ सात चौदह इक्कीसा । ब्रह्माके चौरासी भेसा ॥
 कर्म फांस तहवाँ लग राखा । जहँ लग वेद व्यास कछु भाषा ॥
 दश औ द्वादश कर्म बखाना । जिन जाना तिनही पहिचाना ॥
 कर्म अकर्म भूल जो करई । गहे मूल सो कर्म न परई ॥
 अक्षर सागर मूल भँडारा । अक्षर मूल भेद उजियारा ॥
 अक्षर मूल भेद जो जाने । कर्मी होय निःकर्म बखाने ॥

साखी-कबीर-कर्म डोर चारों युग, सुनो सन्त सब दास ॥

तत्त्वभेद निस्तत्त्व लहि, जगते रहो उदास ॥

रमैनी ।

सतयुग तप कीन्हे रघुराजा । कारन कर्म नन्द घर गाजा ॥
 एक नारि रघुवर दुख पावा । सोलह सहस गोपि निरमावा ॥
 कारन कर्म केलि भव कीन्हा । कुञ्ज कुञ्ज गोपिन सुख दीन्हा ॥
 जहँ तहँ गोरस जाय चुरावा । जहँ जहँ कर्म तहाँ ले खावा ॥
 कर्म कंस ठीका आयो जबहीं । मारन कृष्ण विचान्यो तबहीं ॥
 कर्म पूतना भेष बनायो । कर्म पयोधर कृष्ण लगायो ॥
 कर्म कारण जो तहाँ सिधारा । कारण कर्म पीव विषधारा ॥
 मारि तासु कीन्हीं गति चारा । कर्म फाँस बोन्यो संसारा ॥
 कर्म इन्द्र बरस्यो दिन साता । कर्म कृष्ण गिरि लीन्यो हाथा ॥
 कर्महि मारि विध्वंस जो कीन्हा । कर्म फाँस सबही आधीना ॥
 कुब्जा कछू कर्म जो कीन्हा । कारन कर्म कृष्णगति दीन्हा ॥
 कर्मपताल कालेश्वर नाथा । साँवर अङ्ग भयो तेहि साथ ॥
 यज्ञ अश्वमेध करत बलिराजा । कर्मते जाय पताल विराजा ॥
 कर्महि वामन रूप बनाया । बलिराजापै दान दिवाया ॥

कर्म अहूठ नापी पग लीन्हा । तीनै पग तीनों पुर कीन्हा ॥
आधा पाँव कर्म अधिकारी । बाँधि नृपति पातालहिं डारी ॥
जहँ लगि जीव जन्तु उत्पानी । तहँ लगि कर्म राय परवानी ॥
कर्म फाँस ते कोइ न छूटे । कर्म फाँस सबहिन घर लूटे ॥

साखी-कर्म फाँस छूटे नहीं, केतौ करो उपाय ।

सद्गुरु मिले तौ ऊबरे, नहिं तो परलय जाय ॥

रमैनी ।

जो कुछ कर्म जगतमें करई । करि करि कर्म बहुरि भवपरई ॥
एक न होय यज्ञ व्रत ठाना । एक न पाप पुण्य पहुँचाना ॥
एक कर्म कुल लीन्ह उठाई । कर्म अकर्म न जानै भाई ॥
एक छापा और तिलक बनावै । पहिरि मेखला साधु कहावै ॥
वैष्णव होय करै षट कर्मा । वेद विचार सदा शुचि धर्मा ॥
कथा पुराण सुनै चितलाई । कर्महिं सुमिरै बहुविधी भाई ॥
विष्णु सुमिरितपबहुविधि कियो । सो निःकर्म विष्णु नहिं भयो ॥
कर्मकी डोरि बँधा संसारा । क्यों छूटे उतरे भवपारा ॥
एक अभंग एकादशि करई । तन छूटे वैकुण्ठहि तरई ॥
यह वैकुण्ठ न स्थिर होई । अन्त कर्मगति परलय सोई ॥
करै कर्म वैकुण्ठहि जाई । कर्म घटे भवजल फिरि आई ॥
योगी योग कर्मको साधे । किरिया कर्म यवन आराधे ॥
योगी कर्म पवनकी किरिया । भुगतै कर्म देह पुनि धरिया ॥
संन्यासी जो बन बन फिरहीं । होय निःकर्म कर्म फिर परहीं ॥
जीयत दग्ध देहको करई । जटा बढाय व्यसन परिहरई ॥
कोई नग्न कोई वज्र कछोट्टा । भरमत फिरै सहै पग ढोटा ॥
राजद्वार पावै अवतारा । भुगतै कर्म अकर्म व्यवहारा ॥
पण्डित जन सब कर्म बखानी । नख शिख कर्मफाँस अरु ज्ञानी ॥

कर्म धर्मकी युक्ति बतावै । दान पुण्य बहुविधि अरथावै ॥
 वज्र दान लै जन्म गँवावै । होइ ऊँट बहु भार लदावै ॥
 एक जो करै बरत अवतारा । होई है सूकर श्वान सियारा ॥
 सूकर श्वान हो कर्मजो भुगता । विन निःकर्म न होइ हैं मुक्ता ॥

साखी ।

कबीर—बहु बन्धनसे बाँधिया, एक विचारा जीव ।

जीव बेचारा क्या करे, जो न छुडावै पीव ॥

रमैनी ।

शब्द भेद निःशब्द बताओं । करि निःकर्म हंस मुक्ताओं ॥
 निरालम्ब अवलम्ब न जानैं । शब्द निरन्तर भेद बखानैं ॥
 पाप पुण्यकी छोडे आशा । कर्म धर्मते रहे उदासा ॥
 रहे उदास नाम लौ लाई । तत्त्व भेद निस्तत्त्व समाई ॥
 तीरथ व्रतके निकट न जाई । भ्रम भूतको दई बडाई ॥
 सुख सम्पति नहिं विपति विचारे । काम क्रोध तृष्णा परचारे ॥
 क्रिया कर्म आचार विसारे । होय निःकर्म कर्म निर बारे ॥
 सो ग्रहै जो निग्रह काया । अभिअन्तर की मेटे माया ॥
 शील स्वभाव शरीर बसावे । अन्तर स्थिर ध्यान लगावे ॥
 ब्रह्म अग्नि मनमें परजाले । ताको विष्णु चरन परछाले ॥
 गहे तत्त्व निस्तत्त्व बिचारा । काम क्रोधको करै अहारा ॥
 सहज योग सो योगी करई । कर्म योग कबहूँ नहिं परई ॥
 धन यौवनकी करै न आशा । कामिनि कनकसे रहे उदासा ॥
 चहुँ दिशि मंसा पवन ककोले । ज्ञान लहर अभ्यन्तर डोले ॥
 उनमुनि रहे भेद नहिं कहई । तत्त्वभेद निस्तत्त्वहि लहई ॥
 जो कोइ आय अग्नि होय दहई । आप नीर होय नीचा बहई ॥
 मन गयन्द गुरुमतसे मारा । गुरु गम लूटे ज्ञान भँडारा ॥

शूरा होय सो सम्मुख जूझै । भोंदू शब्द भेद नहिं बूझै ॥
 दुखिया होय रैन दिन रोई । भोगी भोग करै सुख सोई ॥
 दुख सुख भोग सोगसम जाने । भली बुरी कछु मन नहिं आने ॥
 भली बुरीका करे सो त्यागा । निश्चय पावै वह बैरागा ॥
 सींगी अक्षय रैन दिन बाजै । सिद्ध साधु तहँ आसन छाजै ॥

साखी-आसन साधे आपमें, आपा डारै खोय ।

कहैं कबीर सो योगी, सहजै निर्मल होय ॥

काल पुरुषने जब सृष्टिकी उत्पत्तिकी तब कर्मका जाल बनाया ।
 वे कर्म दो प्रकारके हैं । एक शुभ दूसरा अशुभ । ये दोनों कर्म
 बड़ी बेड़ी हैं । इन दोनों कर्मोंकी बेड़ीने समस्त सृष्टिको बाँध
 लिया । जो कोई शुभ कर्म करता है सो सांसारिक धन स्वर्ग
 वैकुण्ठ इत्यादि सब सुखकी सामग्री पाता है, और उस पुण्यका
 अन्तिम फल चार प्रकारकी मुक्ति है, इससे अधिक नहीं । सो
 सब बनावटी हैं । ऋषीश्वरोंने कठिन तपस्या की और योग समाधि
 तथा पूजादिको उच्च श्रेणी पर पहुँचाया । दाससे स्वामी बन-
 गये तो भी उनका बन्धन न छूटा और आवागमनमें फँसे
 रहे । काल पुरुषने समस्त वेद और किताबवालोंको इन्हीं दोनों
 कर्मोंमें बाँध लिया । इस कर्मके तीन भेद हुए । कर्म-
 अकर्म-विकर्म । कर्म तो मनुष्यको करना उचित है । अकर्मसे दूर
 भागना और विकर्मसे मनुष्य अपनेको मुक्त और भाग्यवान् बनाता
 है । जो शास्त्रानुसार कर्म ईश्वरनिमित्त किया जाताहै वह विधि
 है । दूसरा अकर्म जिससे लोक परलोकमें कहीं सुखकी प्राप्ति नहीं
 होती है, उसे शास्त्रसे निषेध कहते हैं, यह अकर्म ईश्वरके विरुद्ध है ।
 विकर्म उसको कहते हैं जिसके करनेसे कर्मसे छूटे और बन्धनकी
 पाश टूटे और ज्ञान लाभ हो । पहिले स्वर्ग आदिककी लालच

दिखाकर कर्म करवाते हैं । इसके उपरान्त स्वर्ग इत्यादि सुख सबका त्याग है । जिस प्रकार पिता रोगी लड़केको लड़्डू दिखाकर औषध देता है, उसी प्रकार स्वर्ग तथा वैकुण्ठादिकी लालच मनुष्योंको दिखाई गयी है । फिर भी एक कर्म तीन नामोंसे प्रख्यात हुआ सञ्चित-प्रारब्ध-क्रियमाण । सञ्चित उस कर्मको कहते हैं जो रक्षापूर्वक रखा हुआ हो-अर्थात् सहस्रों जन्मसे बराबर उसके साथ लगा चला आता है । ऋण अदा करनेका समय नहीं मिला और वह ऋण माथे चढ़ा रहा । दूसरा प्रारब्ध कर्म वह है जिसे भाग्य कहते हैं । इसी प्रारब्ध कर्मके अनुसार मानुषिक शरीर प्रस्तुत हुआ है । अर्थात् अपने पूर्वकर्मानुसार शरीर बना है । जब यह जीव अपने पूर्व शरीरको छोड़ता है तब अहम् बोलता है । अहम् का अर्थ मैं हूँ । अहं बोलकर दूसरे शरीरमें प्रवेश करता है । चारों खानिके जीवोंकी यही रीति है । जैसे एक प्रकारका कीड़ा होता है । जो वृक्षोंके पत्तोंपर रहता है । जब वह एक पत्तेको छोड़कर दूसरे पर जाया चाहता है तब पहले वह अपने अगले पैरोंको पत्तेपर जमा लेता है । जब उसके अगले पैर दूसरे पत्तेपर भली प्रकार जम जाते हैं, तब वह अपने पिछले पैरोंको भी खींचकर दूसरे पत्तेपर जमा लेता है और अगले पत्तेपर भली प्रकार जमकर बैठ जाता है । और पिछले पत्तेसे संबंध छोड़ देता है । इसी प्रकार सदैव ही इस (जीव) का आवागमन हुआ करता है । ब्रह्मासे लेकर सर्व जीवोंमें अहङ्कार भरा हुआ है । जिसमें अहङ्कार नहीं उसका आवागमन नहीं । अहम् बोलनेसे उसके आवागमनका संबन्ध बराबर जारी रहता है । वह ब्रह्मा जो पहले अहम् बोला वही ब्रह्मा अनन्त स्वरूप और स्वभावोंमें चारों खानमें समारहा है । अहम् कर्मोंका आकर्षण है ।

जो एक योनिसे खींचकर दूसरीमें डाल देता है । जैसे चुम्बक लोहेको खींच लेता है ।

तीसरा क्रियमाण कर्म वह है जो अब कर रहे हैं । यदि यह क्रियमाण कर्म बलवान् होकर शुभ वा अशुभकी ओर झुका तो वह अपना रंग ढंग दिखला देता है । यदि वह सुकर्मकी ओर झुक जावे और सुकर्मकी पूर्णता करले तो वह अपने स्वरूपको प्राप्त करा देता है । यदि अशुभकी ओर झुका तो जड योनिमें जा समाता है और नरकके समस्त दुःखों तथा अत्यन्त कष्टोंमें अपनेको डालकर कंकड पत्थरकी तरह बेकाम कर देता है, फिर उसको सुपथ नहीं मिलता ।

महाकर्ता—महाभोगी—महात्यागी । महाकर्ता उसको कहते हैं कि, जो कर्म करता है और अपनेको कर्ता नहीं मानता ।

महाभोगी उसको कहते हैं कि जो सर्व भोग भोगता है और अपनेको भोगता नहीं मानता ।

महात्यागी उसको कहते हैं जो अहंकारको त्याग दे । इस त्याग का गुण तब जाना जाता है जब उसको अन्तर-दृष्टि होती है । जबलों इन तीनों बातोंका गुण भलीप्रकार जाना न जावे तबलों वेद और पुस्तक पाठसे कोई लाभ नहीं होगा । अन्तरदृष्टिसे जाना जाता है कि, यह तीनों क्या बात है ।

महाकर्ता तो यह तब होता है कि जब यह अन्तरदृष्टिसे भली भाँति देखता है, कि मैं कुछ करही नहीं सकता और मैं किसी कार्यका कर्ता नहीं हूँ केवल मैं अपनी मूर्खतावश आपको अपने कार्यका कर्ता समझ रहा हूँ । मैं और यह समस्त संसार कलके सदृश चल रहा है । मेरा और किसीका कोई वशही नहीं कि कोई काम करे । न मालूम वह कौन है जो मुझको तथा समस्त संसारको

चला रहा है । जब मैं कुछ करता ही नहीं और न मेरा किया कुछ हो सकता है, ऐसी अवस्थामें यह अपनेको कर्मोंका कर्ता नहीं मानता । जब यह अपनी अन्तरदृष्टिसे भली प्रकार देख लेता है तब फिर यह अन्यान्य ओर ध्यान नहीं देता और जानता है कि जब मैं किसी कार्यका कर्ता ही नहीं तो मैं व्यर्थही अपनेको कर्ता क्यों ठहराऊँ ? तब वह इस अज्ञानतासे पृथक् होता है । संसारी इसी अज्ञानतामें फँसा रहता है और आपको अपने कर्मका कर्ता समझकर दुःख सुखमें धक्के खाता है । मैं क्यों अहम् बोलता हूँ नहीं जाने, मुझे कौन अहम् बोलता है और कौन बोलता है । अतः इससे जानागया और प्रमाणित हुआ कि मुझको मेरे कार्योंके बन्धन अहम् बोलते हैं और दूसरा कोई नहीं । जब मैं अपने कर्मोंके बन्धनसे छूटजाऊँगा तब मेरा अहम् बोलना भी छूट जावेगा । जबलों यह आपको कार्यका करनेवाला मानता है तबतक यह क्रियामें आपको स्वतन्त्र समझता है । तब यह अन्तर दृष्टिसे भली भाँति निगाह कर लेता है कि, मैं अपने कर्मोंका कर्ता नहीं, तब अपने शुभ अशुभ कामोंको परमेश्वरको सौंपके और उसके शरणमें होकर उससे सहायता मांगता है और जान लेता है कि, मेरे कार्य मुझको बचाने योग्य नहीं । मैं सत्यगुरुकी शरण हूँ, इसके अतिरिक्त और छुटकारेका कोई उपाय नहीं है । अपनी अज्ञानताके कारण मैं अपने कार्योंका करता आपको जानता था, परन्तु आगे अब ऐसा कदापि न कहूँगा ।

यदि यह स्वतन्त्र होता तो सब कुछ करलेता । फिर अपनेको दीनता तथा दुर्दशामें कदापि नहीं फँसाता ।

एक दिनका वृत्तांत है कि, एक पादरी साहब आकर मेरे पास बैठे और वाद विवाद पर प्रस्तुत हुए । उसने कहा कि,

मनुष्य अपने कार्योंमें स्वतंत्र हैं । इसपर मैंने उत्तर दिया कि यह बात कदापि नहीं, कर्म स्वतंत्रता किसीको प्राप्त नहीं । सब कलके समान गतिमान् हैं । सुतरां तौरीतमें उत्पत्तिकी पुस्तक देखो जब आदम उत्पन्न हुआ । खुदाने उसको मना किया कि तू यह कार्य कदापि न करना और इस वृक्षके फलको न खाना । आदमने न माना और खाया जिससे वह दुर्दशाग्रस्त हुआ । यदि आदम कर्म करनेमें स्वतंत्र होता तो ऐसा कदापि न होता । फिर आदमके पुत्र काबील और हाबील हुए वे भी ऐसे ही थे । कारण यह है कि, दोनोंने एक दिवस परमेश्वरके समक्ष भेंट चढाई । छोटे भाईकी भेंट तो स्वीकृत हुई और काबीलकी अस्वीकृत हुई, इस कारण काबील अत्यन्त क्रुद्ध हुआ, तब परमेश्वरने कहा कि ऐ काबील ! तू काहेको क्रोध करता है यदि तू अच्छे मनसे देता तो क्या तेरी भेंट स्वीकार न की जाती ? परंतु तू अपने भाईपर जय पावेगा । काबीलने अपने भाईपर जय पाई और उसको मार डाला । जब परमेश्वरने उसको पूछा कि तेरा भाई हाबील कहाँ है ? तब उसने उत्तर दिया कि मैं नहीं जानता क्या मैं अपने भाईका रखवाला हूँ । इस पर खुदाने उत्तर दिया कि तेरे भाईका खून मुझे पुकारता है । अब तू हत्यारा तथा दोषी हुआ यह कहकर खुदाने उसको शाप दिया । भला जी ! यह न्यायकी बात थी कि खुदाने तो स्वयम् कहा कि तू अपने भाई पर जय पावेगा उससे जय पाई और उसको मार डाला । फिर वह दोषी कैसे ठहरा ? यदि अपने भाईको न मारता तो खुदा झूठा होता और मारा तो दोषी हुआ और हुजूरसे दूर किया गया । वह तथा उसकी सन्तान पापिष्ठी ठहरी ।

ऐसा ही नूहके विषयमें जानना चाहिये कि नूह सिखाते सिखाते विवश होगया, किसीने उसका कहना न माना । अन्तको बाढ आई और समस्त मनुष्य डूब मरे । कोई जीव सिवा उनके कि जो नूहकी नावपर था नहीं बचा । फिर नूहकी शिक्षा तथा खुदा की चौकसी किस कामकी आयी । वह भी कर्ममें स्वतंत्र न ठहरा जब बाढसे सबको नन्यानाभ कर चुका और नूहकी ओर खुदाने ध्यान दिया तब खेद करने और पछताने लगा कि मैंने सबको बाढसे क्यों नष्ट किया । कारण यह कि मनुष्योंके ध्यान तो बचपनसेही बुरे हैं अब भविष्यमें मैं बाढसे लोगोंको न मिटाऊंगा । इससे प्रमाणित हुआ कि इस खुदाको भी स्वतन्त्रकार्याधिकार प्राप्त नहीं । यदि ऐसा होता तो जब वह आदमका पुतला बनाने लगा तब फिरिश्तोने मना किया कि आदमका पुतला न बनाओ वे पाप करेंगे । फिर पृथिवी रोई और कहा कि मुझसे मिट्टी मत लो और मनुष्यका पुतला न बनाओ, मनुष्य बड़ा पाप करेंगे । पर खुदा साहबने किसीका कहना न माना । अपनी इच्छासे मनुष्यका पुतला बनाया । आगे मनुष्योंके पापोंसे रुष्ट होकर बाढ लाकर पछताया । आगे फिर मैं कैसे कहूं कि खुदा साहबको कार्य स्वतन्त्रता प्राप्त थी ।

हजरत नूहके उपरान्त हजरत इबराहीम अच्छे और पवित्र खुदा के पैगम्बर हुए । वे भी स्वतन्त्र नहीं थे, कारण यह कि उनकी शिक्षासे नमरूद बादशाह इत्यादि सभी विरुद्ध होगये ।

इबराहीमके उपरान्त इसहाकको पैगम्बरी मिली और इसहाककी स्त्री रबका जब गर्भवती हुई, उसके पेटमें दो बालक थे और वे दोनों पेटके भीतर परस्पर लडते थे—तब रबकाने खुदाके निकट जाकर निवेदन किया कि मेरे पेटके दोनों लडके आपसमें क्यों

फिसाद करते हैं तब खुदाने कहा कि, बड़ा छोटेकी सेवा करके बड़ाई पावेगा । फिर इसहाकने ज्येष्ठ पुत्र ईसूको बरकत देनी चाही पर उस बरकतको छोटा पुत्र याकूब ले गया । इसहाककी युक्तिने काम नहीं दिया ।

देखो मूसाकी पहली पुस्तक २५बाबका २१-२२-२३ आयत ।

इनके उपरान्त हजरत मूसा थे वह भी अपने कार्यमें स्वतन्त्र नहीं थे । कारण यह कि परमेश्वरने मूसाको मिस्रमें फिरूनके सिखलानेके लिये भेजा और यह भी कह दिया था कि फिरूनके मनको मैं कडा कहेगा । वह तेरा कहना न मानेगा । मूसाकी शिक्षा किसी काम न आयी ।

मूसाके उपरान्त हजरत ईसाने खुदासे बहुत प्रार्थना की कि, मैं सलीबसे बच जाऊं पर नहीं बचे ।

इसके उपरान्त मुहम्मद मुस्तफाने बहुत कुछ बल लगाया और रक्तपात किया तो भी सबको मुसलमान कर नहीं सके । यह बात सब कहकर और दिखाकर फिर मैंने पादरी साहबसे कहा कि इन महाशयोंमें तो कोई स्वतन्त्र नहीं ठहरा । कदाचित् आपके नाम अब खुदाई परमाना कार्य स्वतन्त्रताका उतर पडा हो तो क्या आश्चर्य है ? मेरी बातें सुनकर पादरी महाशय चुप हो रहे और फेर मुखतारीका दावा छोड दिया ।

केवल कबीर साहबको ही स्वतन्त्रता है दूसरेको नहीं । कारण यह कि, जब वे मनसे जिसको छुटकारा दिलाया चाहते हैं उसको अवश्य छुटाही लेते हैं और जो कुछ करना चाहते हैं करही लेते हैं । उनका रोकनेवाला दूसरा नहीं ।

जैसा कुल कार्य यह मनुष्य जाग्रत अवस्थामें करता है, वैसाही कार्य स्वप्नावस्थामें किया करता है । परन्तु स्वप्नावस्थाके कर्मोंको कोई नहीं कहता कि मैंने किया । यद्यपि जाग्रत अवस्थाके कर्मोंका कर्ता यह स्वयम् बनता है कि यह कर्म मेरे हैं, यद्यपि जाग्रत तथा स्वप्नावस्था दोनों समान हैं । केवल इतनी ही विभिन्नता है कि, जाग्रत देरलों उसके साथ रहती है और स्वप्न थोड़ी देरमें बीत जाता है । यदि स्वप्नके कर्म उसके नहीं तो जाग्रतके कर्म भी उसके नहीं, इस कारण आपको स्वकर्ममें स्वतंत्र समझना अज्ञानता है । यह स्वतन्त्र कदापि नहीं । ज्ञानकी दृष्टिसे यह अहंकार जाता रहता है । इस जीवकी चारों दशा स्वप्नके समान हैं ।

दूसरे महाभोगी वह है कि जो समस्त भोगोंको भोगता है और आपको भोगनेवाला नहीं मानता । यह भी बिना अन्तर प्रकाशके जाना नहीं जा सकता कि, भोगनेवाला कौन है और मैं कौन हूँ । यदि मैं भोगनेवाला होता तो मैं जो चाहता सो भोग भोग लेते और भोगोंसे कभी न भागता । कोई भोग ऐसा नहीं है कि जो भोगोंसे अलग जानता है उसके सामने अच्छा और बुरा समस्त भोग समान हैं । कारण यह कि जब रानी द्रौपदीने श्वपच सुदर्शनके सामने भौँति भौँतिके स्वादिष्ट भोजनोंको थाल धरे तब उन्होंने सब खट्टा मीठा और नमकीन एकमें मिलाकर खाना आरम्भ किया । कारण यह कि, उनको स्वादोंकी कामना नहीं थी । एक साधुको एक मनुष्यने कड़ुई तुम्बेकी तरकारी बनाकर खिला दिया । वह साधू कड़ुई तरकारी बिना कुछ कहे सुने खा गया । जब पीछे गृहस्वामी खाने लगा तब उसको वह तरकारी विषसम मालूम हुई । वह अपनी स्त्रीको डाटने लगा कि तूने यह विषममान नग्नकारी साधुको खिला दी साधुको कितना दुःख हुआ होगा ।

उसके मनमें बड़ा भय समाया और वह साधुके पास जाकर उससे क्षमा प्रार्थना करने लगा ।

एक साधुको एक गृहस्थने खीर खिलाई और चीनीके बदले भूलसे नमक डाल दिया । कारण यह कि, वह नमक चीनीके सदृश था । वह साधु बिना कुछ कहे खा गया उसके भीतर जब नमककी आग लगी तब उस गृहस्थके घरमें आग लगी जब घरमें देखने लगे तब जान पड़ा कि, साधुको चीनीके भ्रमसे नमक दे दिया गया । लोगोंने कहा कि, उस साधुके हृदयमें ठण्ठक आवे तब घरकी आग भी बुझे । थलीमें कोई सरदार था उसके पास एक वैष्णव साधु आया और उसने नहा धोकर ठाकुरजीकी पूजा की । उस समय उस सरदारने दूध और चीनी साधुके निमित्त मँगवा दी उस वैष्णवने ठाकुरको भोग लगाया । इसके उपरान्त जब आप वह दूध पीने लगा तब उस सरदारको याद आया कि, जहां चीनी थी वहां घोड़ेकी दवाईके लिये संखिया भी पीसा धरा था । ऐसा न हो कि साधुको संखिया दिया गया हो दौड़के देखा तो संखिया दिया गया था । उस सरदारने पुकारके कहा महाराज ! यह दूध मत पीओ इसमें संखिया पड़ गया है । तब उस वैष्णवने कहा कि अब तो यह संखिया ठाकुरके भोग लगाया जा चुका है मेरे ठाकुर संखिया पीवें और मैं चीनी पीऊँ ? वह वैष्णव दूध तथा संखिया सब कुछ पीगया और चंगा रहा । संखियाने उसको किसी प्रकारकी क्षति नहीं पहुँचाई । उसके भीतर भोगता विष्णु था । विष्णु उसको देखता था और वह विष्णुको देखता था । आप उस भागसे अलग रहा ।

तीसरे महात्यागी—तब होता है जब देहके अभिमानको छोड़े जबलों देहका अभिमान न छूटे तबलों त्यागी नहीं । अभिमानही

करके यह देह मिलती है और इसीसे स्थित हो रही है । सहस्रों त्यागी हो गये परन्तु देहका अभिमान न छोड़नेसे बंधनमें रहे बाहरसे तो उन्होंने सब छोड़दिया, पर भीतरसे छोड़ नहीं सके । और न देह अभिमान छूटा । देहका अभिमान छूटा तब जाने कि, जब किसी प्रकारकी आपत्ति तथा साहसकी घटना संघटित हो तब स्थिरता न छूटे और न किसी प्रकारकी घबड़ाहट हो । सुतरां ऋषिमुनिगण उजाड़ तथा वनमें बसते हैं । उनको वहां प्रत्येक प्रकारकी आपत्तियाँ आ घेरती हैं । शेर, साँप, भेड़िये, रीछ और कानखजूरें इत्यादि नानाप्रकारकी आपत्तियाँ दिखाई देती हैं । इस स्थानपर साधु अपने मनको बहुतही दृढ़ रखते हैं । कोई हिंसक जीव फाड़कर खाजावे तो तनिक भी न समझते कि यह मेरी देह है । सब तपस्वियोंकी ऐसी ही अवस्था होती है । जब भीतरी अथवा बाहरी उनको अपने शरीरकी ओर ध्यान हुआ तब उनका त्याग कुछ नहीं सुतरां सर्व त्यागियोंमें बड़े त्यागी शुकदेवजी थे कि मायाके भयसे बारह वर्ष पर्यंत माताके गर्भमें थे । जब बाहर निकले तब उनको त्याग और वैराग्य रहा । उनका हाल बहुत प्रसिद्ध है जब राजा जनकके समीप गये तब उन्होंने एक कौतुक दिखाया कि उनके समस्त नगरमें आग लगी और सब कुछ जलने लगा । राजा जनक निर्भय बैठे रहे और शुकदेवजी अपनी तूंबी लँगोटी लेने तो दौड़े । तब राजाने कहा कि बैठ, किधर जाता है? तूतो आपको बड़ा त्यागी समझता है अब लँगोटी और तूंबी लेने दौड़ा । मेरे राज्यका समस्त सामान जल रहा है और मैं तनिक भी अधीर नहीं हुआ । तू कैसा त्यागी है । तुझे तो लँगोटी और तूंबीकी चिन्ता लगी है जिसको तूंबी लँगोटीकी चिन्ता नहीं छूटी उसको देहका अभिमान कैसा छूट जावे ? अतः जबलों देहका अभिमान न छूटे तबलों महात्यागी कैसे हुआ, यह सब

प्रशंसा तथा गुण कबीर साहबहीके हैं और दूसरेके नहीं। बनारसमें कैसे २ कष्ट मिले परंतु उनका तनिक भी ध्यान नहीं किया और न मनमें कुछ कष्ट माना महात्याग इसीका नाम है। सहस्रों साधुसन्तोंने अपनेको ईश्वरमें लीन करदिया तो भी देहका अभिमान और वासना उनके मनमें रहा, इस कारण उनका भगवतमें लीन होना भी काम न आया। जो लोग सत्यगुरुको पहुँचान कर भगवतमें लीन होते हैं वे धन्य हैं। उन्हींका भगवतमें लीन होना सफल है।

वेद तीन भागोंमें विभक्त हुआ—कर्म—उपासना—ज्ञान। कर्मोंमें दो भाग हुये। एक तो यज्ञ इत्यादि जो सांसारिक अर्थोंके निमित्त करते हैं। दूसरा योग जो अपनी मुक्तिके निमित्त करते हैं। इन कर्मोंद्वारा सांसारिक तथा पारलौकिक अभिप्राय सिद्ध होते हैं। जिसके जैसे पाप पुण्य होते हैं वैसीही अवस्थामें वे जाते हैं और वैसाही उनको भोग मिलता है।

दूसरी उपासना है—सांसारिक लोग उपासना करते हैं और उपासनाके निमित्त विष्णु, राम, कृष्ण, शिव, चण्डी, सूर्य और गणेश आदि देवता ठहराये हैं।

तीसरा ज्ञान—इसकी सात भूमिका हैं और यह सब स्वप्नवत् हैं। इन समस्त युक्तियों द्वारा किसीका छुटकारा नहीं हो सकता। इनमें पारखपदकी कुछ सुधि नहीं। अतः यह समस्त कर्म-काण्डी और ज्ञानी अपनी अपनी सीमाको पहुँच जाते हैं। तो भी उनको छुटकारेकी राह नहीं मिलती। बिना पारख गुरुके अन्धोंकी तरह टटोलते फिरते हैं। परंतु राह नहीं पाते। क्या युक्ति करें कोई तदवीर नहीं सझती, तब विवश होकर बैठे रहते हैं। जो जो तद्वीरि वेदने बताई उनसे तो कुछ काम न

हुआ और अब दूसरा उपाय कहाँ पावें, क्या करें। जो कुछ ज्ञान मिला उसीपर सन्तोष कर बैठे, आगे कोई पथ वेदों तथा पुस्तकों द्वारा नहीं मिला, किसे पूछें और किसके घर जावें ।

मीमांसक और जैन कर्महीको मुक्तिमार्ग समझते हैं । परंतु यह नहीं जानते कि, यह कर्म कहाँसे उत्पन्न हुआ है और कहाँ तक पहुँचा सकता है । यह विधि निषेध दोनों शाखा निरञ्जन निर्मित हैं । वहाँ ही तक पहुँचानेका सामर्थ्य रखते हैं । इन कर्मों द्वारा स्वर्ग तथा नरक सब कुछ प्राप्त होता है । जहाँलों कर्मोंकी पहुँच है वहींलों कालपुरुष हस्तक्षेप करता है । कर्मोंका सुविशाल वन है उसमें यह जीव भूलकर अपने घर-से बाहर हो गया है यह वनहिंसक जन्तुओंसे भरा हुआ है और सूर्य चन्द्र सितारे इत्यादि तनिक भी दिखाई नहीं देते । न कोई सड़क और न पगडण्डी है । जो पगडण्डी कहीं है, सो पशुओंकी है मनुष्यकी नहीं । इस कारण इन कर्मोंके वनसे कोई बाहर हो नहीं सकता । कर्म करता है और फिर फिर कर्म करनेके लिये बारम्बार देह धारण करता है । इसको कुछ पता नहीं लगता कि वह कौन कर्म है जिससे मेरे कर्मका बन्धन कटे । वह कर्म जिससे इसका बन्धन कटे केवल स्वसंवेदकी शिक्षा है, उससे तो यह जीव अज्ञान हैं । इन्हीं कर्मोंकरके समस्त योनि ठहराई हैं । जैनी जिनका समस्त ध्यान कर्मोंपर है वे आठ प्रकारके कर्म कहते हैं, वे ये हैं:-

- १-ज्ञानावर्णी कर्म । २-दशनावर्णी कर्म । ३-वेदनी कर्म ।
- ४-मोहिनी कर्म । ५-नाम कर्म ६-आयु कर्म । ७-गोत कर्म ।
- ८-अन्तराय कर्म ।

अब इन आठों कर्मोंका सुविस्तृत विवरण सुनो । आवरण नाम ढक्कनका है । १ ज्ञानवर्णी कर्म अर्थात् ज्ञानका ढांकनेवाला कर्म इसके कारण ज्ञान नहीं होने पाता, यह ज्ञानके ऊपर परदा डाल देता है । इसके कारण ज्ञान जो उत्पन्न होने नहीं पाता सो ज्ञान पांच प्रकारका है ।

१-मतिज्ञान । २-श्रुतिज्ञान । ३-अवधिज्ञान । ४-मनप्रजय ज्ञान । ५-केवल ज्ञान ।

मति ज्ञान-मति नाम बुद्धिका है । अर्थात् वह ज्ञान जो बुद्धि तथा सोचसे संबन्ध रखता है । इस मति ज्ञानमें समस्त संसारकी हुनर तथा कारीगरियां संयुक्त हैं । जिसको मतिज्ञान होता है वह कारीगरी और शिल्पकारीमें बड़ा चैतन्य रहता है । जिस किसीको मतिज्ञान आवर्णी कर्म उगता है-उसको गुणोंका पाण्डित्य प्राप्त नहीं होता ।

दूसरा श्रुतिज्ञान है-श्रुतिज्ञान समस्तशास्त्रोंके कण्ठस्थ करनेको कहते हैं । कुछ कागज तथा ग्रन्थ इत्यादि देखनेकी आवश्यकता न हो सब बातें हृदयमें रहें । शास्त्रद्वारा तीनों कालोंकी बातोंको जानता हो उसको श्रुति केवली अथवा श्रुतिज्ञानी कहते हैं । इस श्रुतिज्ञान को जो कर्म रोक ले और न होनेदे उसका श्रुति ज्ञान-आवर्णी कर्म नाम है ।

तीसरा अवधिज्ञान है-अवधिज्ञान उसको कहते हैं जिसके द्वारा लोग मनुष्योंके मनकी बातको जान लेते हैं । समस्त गुप्त बातोंको बतलाते हैं और अन्तर्यामी कहलाते हैं, जो कर्म इस अवधि ज्ञानपर परदा डाले और होने न दे उसको अवधिज्ञानावर्णी कहते हैं ।

चौथा मन प्रजय ज्ञान है-मनप्रजय ज्ञान उसको कहते हैं कि जो हृदयकी गतिको जाने । अर्थात् जहां हृदय दौड़े वह सब कुछ

मालूम करले हृदयकी समस्त चाल तथा स्थिरताको बूझले जो कोई इस प्रकारकी विद्या रखता हो उसको मनप्रजय ज्ञानी जानते हैं । मनप्रजय ज्ञानमें यह गुण है कि, जब जिसको यह ज्ञान उत्पन्न होजाता है फिर कभी नहीं जाता । मनप्रजय ज्ञानी अवश्यही केवल ज्ञानका अधिकारी हो जाता है, पूर्वके तीन ज्ञानोंमें तो संदेह रहता है क्योंकि वे होते हैं और जाते भी रहते हैं, परन्तु मनप्रजयको स्थिरता तथा स्थिति है, मनप्रजय ज्ञान अवधि ज्ञानसे बहुत बढके है । जो कर्म इस मनप्रजय ज्ञानको छिपा लेता है और नहीं होने देता उसको मनप्रजय आवर्णी कर्म कहते हैं ।

पांचवां केवल ज्ञान है—यह सबसे बढकर है । यह समस्त ज्ञानोंका राजा है । जैनी ऐसा मानते हैं कि इस केवल ज्ञानसे कोई बात छिपी नहीं रहती । सबसे उच्चश्रेणी ज्ञानकी यही है । जैनके चौबीस तीरथंकर सब केवल ज्ञानी होते हैं । उनके अतिरिक्त और कितने दूसरे साधू भी केवल ज्ञान रखते हैं । इस केवल ज्ञानको जो छिपाये रखे और न प्रकाशित होने दे उसका नाम केवलज्ञानावर्णी कर्म है ।

दूसरा दशनावर्णी कर्म है—जिसके कारण प्रत्यक्षमें दर्शन नहीं होता और उसके परदेमें अलख करतार रहता है । उसकी चार शाखायें हैं ।

तीसरा वेदनी कर्म है—जिसके कारण जीवको दुःख सुख होता है । उसकी दो शाखायें हैं ।

चौथा मोहनी कर्म है—उसकी दो शाखायें हैं ।

पांचवां आयु कर्म है—इससे आपदाका अन्दाजा होता है और इसकी चार शाखायें हैं ।

छठवें नाम कर्म है—इसकी तिरानवे शाखायें हैं । यह नाम कर्म जीवधारियोंकी मूर्ति और स्वरूप बनाता है ।

सातवां गौतकर्म है—इस गौतकर्मकी दो शाखायें हैं। एकसे नीची जगह और दूसरीसे ऊँची जगह जीव देह धरकर उत्पन्न होता है ।

आठवाँ अन्तराय कर्म है—उसकी दो शाखायें हैं। इस अन्तराय कर्मका यह काम है कि जो ज्ञान होनेवाला हो उसको होने न दे उसमें विभिन्नता डाल दे । आठों कर्मोंका विवरण मैं ग्रन्थ कवीर भानुप्रकाशमें लिख आया हूँ जो चाहे सो देखले । इन्हीं आठ कर्मोंसे समस्त जीव चार खानि चौरासी लाख योनिमें आवागमन किया करते हैं । कर्मोंपासना योग और ज्ञान भी सविस्तर रूपसे वहीं लिखा है । जिससे स्पष्ट प्रगट होता है कि इस जीवका आवागमन कैसे सुकर्म तथा कुकर्मोंसे हुआ करता है । यह समस्त कर्म तो भ्रमरूप हैं । इनसे कदापि छुटकारा नहीं होता । जिसको वेद धर्मके लोक और जैनी केवल ज्ञान कहते हैं सो केवल ज्ञान शुद्ध नहीं है इसमें अन्धकार है इस कारण इन केवल ज्ञानियोंको स्वच्छ प्रकाश नहीं है, जिससे वे लोग मुक्तिकी सुधि नहीं रखते हैं, जीवके कर्म ही उसका स्वरूप बनाते हैं । कर्मों ही करके इस जीवका आवागमन चारों खानिमें बराबर बना रहता है । सत्यगुरु भेद बतलावें तो आवागमनका सम्बन्ध टूटे ।

मुसदस ।

तू है करतार किव्रिया बारी । तेरा है हुक्म सब जगह जारी ॥
तेरी तसबीर सुबुक और भारी । नकशहा सब शिंगरफो जंगारी ॥

आलमोंका है सारे काम तुम्हें ।

ऐ अमल हाय सद सलाम तुम्हें ॥

तूही इनसान हुआ तूही हैवान । तूही रहबर हुआ तूही शैतान ॥
जिस्म सदहाव एकही है जान । होवे क्यों करबयां तुम्हारी शान ॥

(१८२)

कर्मबोध ।

लोक तीनों दिया इनाम तुम्हें ।

ऐ अमलहाय सद सलाम तुम्हें ॥

मलिक व आदमघजिन्नोपरी । हबशी हिन्दीवखैबर औरततरी ॥
रंगविरंग ढंग चार खान करे । अदलो इनसाफ साफसाफकरे ॥

दिया आलमका इन्तजाम तुम्हें ।

ऐ अमलहाय सद सलाम तुम्हें ॥

बन्दः साहब कहीं किया है जुदा । कहीं बन बैठे आप आप खुदा ॥
सारे आलममें तेरी सूतोसदा । तुझसे सारे शरीर शाहो गदा ॥

सिजदा करते हैं खासो आम तुम्हें ।

ऐ अमलहाय सद सलाम तुम्हें ॥

तूही बाचून और तूही बचून । सूरत सूब तुझीने गूनागून ॥
तूही मकबूल औ तूही मलऊन । तूही खुद रमरहा है सारेजून ॥

दे जमीनों जमा तआम तुम्हें ।

ऐ अमलहाय सद सलाम तुम्हें ॥

तूही जेरीन दरमयाँ बाला । मनका मनका हुआ तूही माला ॥
तूही पैदा किया तूही पाला । तूही सबजा हुआ तूही जाला ॥

कौन पहचान अक़्क़ खाम तुम्हें ।

ऐ अमल हाय सद सलाम तुम्हें ॥

इन्द्र ब्रह्मा व विष्णु भी भूले । अपने अमलोंके झोकमें झूले ॥
कहीं पजमुर्दा और कहीं फूले । हिर्स हैवाँ घर बघर डोले ॥

दे रहीमो करीम नाम तुम्हें ।

ऐ अमलहाय सद सलाम तुम्हें ॥

आशकोंको दिखाया राहे सवाब । फासिकोंके लिये सहीद अजाब

साराअलम बना खयालोख्वाब । कोई नदेरी ना सारने कशबरआब ॥

सारे जानदार दे गुलाम तुम्हें ।

ऐ अमल हाय सद सलाम तुम्हें ॥

सारे जानदारको फँसा मारा । नहीं इस जीवका रहा चारा ॥
कगके तदबीर तुमसे सब हाग । जिन्दा करकरके फिर फिर मारा ॥

देमुकद्दर बदस्त दामतुम्हें ।

ऐ अमल हाय सद सलाम तुम्हें ॥

तूही बखसिन्दा है अपनो अमाँ । मातहत तेरे सब हैं जिसमो जाँ ॥
तुझसे पैदाँ है बाणी वदो कुराँ । अबिदानो जाहिदाने जमाँ ॥

याद करते हैं सुबहों शाम तुम्हें ।

ऐ अमल हाय सद सलाम तुम्हें ॥

सारे मजहब जहाँमें जारी है । पीर मुरशिदकी राहदारी है ॥
अर्श फशौकी सब तयारी है । आजिज इसरारसे सब आरी है ॥
पेशवा भी किये इनाम तुम्हें । ऐ अमलहाय सद सलाम तुम्हें ॥

कर्मोंके चिह्नके विषयमें ।

कर्मोंके चिह्न जीवधारियोंके शरीरमें कालपुरुषने बनाया है । इस जीवने जैसे कर्म पूर्वजन्ममें किये हैं वैसेही चिह्न उसकी देहमें बने हैं । सब जीवोंके शरीर पर चिह्न होते हैं परन्तु मनुष्यके शरीर पर भली भाँति स्पष्ट प्रगट होते हैं । इसी कारण मनुष्यकी देहहीसे इसके कर्मोंका भली प्रकार हिसाब किताब होता है । मनुष्यके शरीरके चिह्न देखनेसे भलाई बुराई जानी जाती है । जिस सयम वीर्य स्त्रीके गर्भमें स्थिर होता है, उसवीर्यके भीतर जीव होता है और उस जीवके साथ उसके पहलेके किये हुए कर्म हैं । उसके भाग्यके अनुसार

उसका शरीर प्रस्तुत होता है तथा समस्त रंग डीलडौल पूर्वकर्मानुसारही होता है । जब वह माताके गर्भसे निकलता है तब उसके पूर्व जन्मके कर्मोंके चिह्न उसके शरीरके धर होते हैं । पांच वरपके भीतर चिह्न स्पष्ट प्रगट नहीं होते जैसे जैसे यह बड़ा होता जाता है वैसेही वैसे इसके पूर्व कर्मके चिह्न दिखाई देते जाते हैं । तिल और मस्सा इत्यादि भी पूर्वकर्मानुसारही प्रगट होते हैं और बहुतेरे चिह्न छिपे रहते हैं । शिरसे लेकर पैरतक सुकर्म तथा दुष्कर्मके चिह्न भरे हुए हैं । कहीं दुर्भाग्यके तो कहीं सौभाग्यके चिह्न होते हैं । यदि एक स्थानपर दुर्भाग्य और दूसरे स्थान पर सौभाग्य एकही बात पर चिह्न होवे तब उसका मध्यम फल होता है । जो लोग सामुद्रिक जानते हैं उनको यह बातें मालूम होती हैं । सामुद्रिक विद्या अत्यन्त कठिन है । जो सामुद्रिकमें प्रवीण हो वह मनुष्यका आकार देखकर सब कुछ कह सकता है ।

कबीर साहबने इस सामुद्रिक विषयमें बहुत कुछ कहा है कर्मोंके चिह्न देखकर सामुद्रिकका ज्ञाता सब कुछ कह सकता है । उदाहरण युनान देशका महातत्त्वज्ञानी सुकरात (Socrates) एक पाठशालामें अपने शिष्योंको पढ़ा रहा था उस पाठशालामें एक सामुद्रिक जाननेवाला आगया । जब सुकरातके शिष्योंने जानलिया कि यह पुरुष इस इस प्रकारकी विद्या रखता है, तब उसको वे अपने उस्तादके निकट ले गये और कहा कि, इस पुरुषके दोष और अवगुण कहो । वह सामुद्रिक जाननेवाला इस बातको नहीं जानता था कि वह हकीम सुकरात है । उस

समय उस सामुद्रिकीने सुकरातकी देहके समस्त चिह्न देखे और पहचानकर बोला कि यह मनुष्य बड़ा पाजी, दुष्ट, व्यभिचारी, झूठा, ठग, दगाबाज और दुष्कर्मी है, यह बातें सुनकर सुकरातके शिष्यों-ने उसके ठट्टे उड़ाये और हँसते हँसते बोले कि यह मनुष्य झूठा है। तब सुकरात जो स्वयं सामुद्रिक विद्या जानता था कहने लगा कि, तुम लोग इसको झूठा मत समझो। यह मनुष्य जो कहता है वह सत्य कहता है। उसमें कोई सन्देह नहीं कारण कि, उसने जो कुछ कहा उन सब बुराइयोंके चिह्न मेरे शरीरमें परिलक्षित हैं मेरे शरीरमें वे सब चिह्न ज्योंके त्यों बने हुए हैं। मेरा स्वभाव वैसाही था परंतु मैंने अपनी विद्या और योग्यतासे अपनी वासनाओंको भली प्रकार दमन किया है, अपने हृदयको दुष्कर्मोंकी ओर हिलने नहीं दिया और भलीप्रकार दृढ़ कर लिया जिसमें तनिकभी हलचल न हो। ऐसी वासना दमन किया है कि वे मुरदेकी तरह होगई हैं। परंतु ये चिह्न जली हुई रस्सीकी ऐठनके समान हैं तब सुकरातके शिष्योंको निश्चय हुआ कि, हमारा उस्ताद सत्य कहता है इस प्रकार पुरुषार्थ प्रारब्ध पर जय पाता है। मनुष्यके अतिरिक्त कितनेही पशुओंमें भी यह चिह्न देखे जाते हैं जैसे कि हाथी, घोड़ा, बैल इत्यादिमें जो लोग उनको मोल लेते हैं। उनके भले बुरे चिह्नोंको पहचान कर दुर्भाग्य तथा सौभाग्य जान लेते हैं। उनके कर्मोंके चिह्न साधारणतः जड़ स्थावर पदार्थ पर प्रगट नहीं होते गुप्त रहते हैं, परंतु कभी कभी किसी चिह्नसे उनके पूर्वजन्मोंका चिह्न प्रगट होता है और सर्व साधारण देखकर जान लेते हैं। सुतरां लगभग पैंतालीस वर्ष होते हैं जब मैं एक बस्ती चुनारगढमें जो काशीके समीप है गया। वहां पर्वतपर जाके मैंने एक प्रकारका वृक्ष देखा उस वृक्षके जड़से लेकर डालियों पर्यन्त नागरी अक्षरोंमें राम राम लिखा था। वहां इस प्रकारके अनेक

वृक्ष थे । समस्त वृक्षोंकी यही दशा थी कि सबमें राम राम लिख हुआ था । जब सर्व वृक्षोंकी यही दशा देखी तब भली भौंतिदृष्टि दौड़ाई जडसे ऊपर पर्यंत समानही देख पड़ा । तब अनुमान किया कि इन वृक्षोंपर कोई आकर लिख गया होगा और इन वृक्षोंमेंसे एक वृक्षकी छाल हटाकर देखा तो छालके भीतर भी वही राम राम सुन्दरताके साथ लिखा हुआ था । तब निश्चय होगया कि यह किसी मनुष्यके हाथों का लिखा हुआ नहीं बरन् प्राकृतिक लिखावट है और उसकी उत्पत्तिकालसेही वह गुण उसमें आगया है उन वृक्षोंकी यह दशा देखकर मैं गाँवमें गया लोगोंसे पूछा कि इस वृक्षका क्या नाम है तब लोगोंने कहा कि इसे रामनामी वृक्ष बोलते हैं । उस वृक्षकी जडमें जो अक्षर थे उनकी स्याही बहुत काली थी और जैसे जैसे वे ऊपर जाते थे वैसेही वैसे स्याही फीकी पड़ती जाती थी । पतली डालोंकी स्याही बड़ी फीकी थी । परंतु पत्तोंके नाम तो अत्यन्त फीकी स्याहीमें होंगे कि वे दिखाई भी न देते थे । उस वृक्षका वह रंग ढंग देखकर मैंने जाना कि, पूर्वकालका यह कोई भक्त है और किसी दोषवश वृक्ष हो गया है ।

उस समय यमलार्जुन कुबेरके पुत्र याद आये जो नारद मुनिके शापसे दोनों वृक्ष हो गये थे श्रीकृष्णजीने उनका उद्धार किया । उस वृक्षकी अवस्थासे उन्हें छुड़ाकर उनको यथार्थ स्वरूप प्रदान किया । इसी प्रकार गौतम ऋषिकी स्त्री (अहल्या) गौतमके शापसे पत्थर होगयी थी । श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे अपनी पूर्वावस्थामें प्राप्त हुई । इसी प्रकार सर्व जीव कर्मके बन्धनमें पड़े हैं जड और चैतन्यमें सर्व फँसे हुये हैं और किसी योग्यत्वसे कदापि नहीं छूटते उलटा दिन प्रतिदिन अधिक फँसते जाते हैं ।

इस प्रकार सर्व जीव बन्धनमें पड़े और कर्मकी फाँसी सब जीवों को लगी । इससे छूटना असम्भव हुआ । सहस्रों युक्तियां करता है परंतु प्रतिदिन बैधा जाता है । यह तीन लोक भवसागर (उत्पत्तिसागर) कर्मने बनाया है, कर्म—मन—ब्रह्मा—काल पुरुष इत्यादि यह सब नाम इसीके हैं । इसी कर्मने यह भवसागर बनाया है और यही कर्म इस पर अधिकार कर रहा है । ब्रह्माण्ड और पिण्ड दोनोंकी स्थिति कर्मसे है । अनगिनती ब्रह्माण्ड हैं जिनकी सीमा नहीं । यह ब्रह्माण्ड तथा पिण्ड दोनों अनगिनती नाना प्रकारके जीवोंसे परिपूर्ण हैं । जीवोंका अनगिनती स्वरूप तथा स्वभाव है कि जिनका कुछ विवरण हो नहीं सकता । किसीका वय लाखों वर्षका है और कोई ऐसे हैं कि एक बार स्वांसके आने जानेमें बहुत बार उत्पन्न होते और मर जाते हैं । कोई गरम हैं कोई अत्यन्त ठण्डे हैं ये सर्व जीव वासनासे भरे हुये हैं इस भवसागरमें पड़े गोता खाया करते हैं । कभी स्वर्ग, कभी नरक और कभी मृत्युलोकमें रहते हैं । इस चौरासी लाख योनिके जीवोंको सुख नहीं मिलता सदैव दुःखी सुखी हुआ करते हैं । चारों खानिके जीवोंमें कोई न सुखी और न सन्तुष्ट है । कर्मोंके बन्धनसे सदैव इनका आवागमन हुआ करता है, यह भवसागर पशुओंसे बसा हुआ है इसमें मनुष्य कोई नहीं और जो मनुष्य हैं उनमें काम क्रोध लोभ आदि वासना नहीं । जबलों अपनेको वासनाओंसे पृथक् न करे तबलों मनुष्यताके योग्य न होगा । जाग्रत्—स्वप्न—सुषुप्ति—तुरिया यह चारों अवस्था मनमें स्थिर किया है । जबलों कलुषित कार्योंसे पृथक् न हो, तबलों प्रकाशका मार्ग न देखेगा । इस कारण वासनाओंके आनन्दसे दूर भागना चाहिये । हंस वही है कि, जो भवसागरके दूसरे जीवोंको कालके

(१८८)

कर्मबोध ।

जालमें फँसा देखकर बुद्धिमानीसे दूर भाग जावे । जबलों मनुष्य अपनेको जाग्रत् अवस्थामें न अधिकृत करें तबलों मनुष्यता प्राप्त न करेगा । इस जीवको वासनासे नष्ट करके भवसागरमें बाँध रखा है । समस्त बुराई तथा बन्धनकी जड़ यही वासना है । इस मनके पाँच अहंकार हैं इन्हीं पाँचोंमें स्वामी तथा सेवक सभी फँसे हुये हैं ।

इति श्रीकर्मबोधे एकोनविंशस्तरंगः ॥ १९ ॥



॥ श्रीः ॥



अथ श्रीअमरमूलप्रारंभः ।

भारतपथिक कबीरपंथी—

स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संशोधित ।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष—“श्रीवेङ्कटेश्वर” स्टीम-प्रेस,

बम्बई

मं० १९०१, अ० १८५३.

सत्य नाम ।



श्रीकबीर साहिब ।



सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष,
मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरतियोग, संतायन,
धनी धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शननाम,
कुलपतिनाम, प्रबोध गुरुवालापीर, केवल
नाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क
नाम, पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज
नाम, उग्र नाम, दया नामकी,
वंश ब्यालीसकी दया ।

अथ श्रीबोधसागरे ।

विंशमंगलः ।

अथ श्रीअमरमूल प्रारंभ ।



धर्मदास वचन साखी ।

धर्मदास बिन्ती करें, सुन गुरु कृपानिधान ।
जरा मरन दुख मेटके, दीजे पद निर्वाण ॥
मरन काल त्रयलोकमें, अमर न दीखा कोय ।
यह संशय निश दिन लगो, जीते ताहि विगोय ॥

सोरठा—हे प्रभु दीनदयाल, जक्त जीव अति दुखित है ।

हरहु बेग उर साल, करहु कृपा निज दास कहँ ॥

सद्गुरु वचन—चौपाई ।

धर्मदास तुम मुक्ति अधीना । सो तब कथा सुनहु परवीना ॥

जरा मरन जिवको मिटजाई । पुरुष नाम गहै चितलाई ॥

अम्मर काया तबही पावे । अमर शब्द घट मांहि समावे ॥

ताकी महिमा और न जानी । अमर मूलमें कही बखानी ॥

अमर मूल है सबते सारा । अमर मूलका कहौ विचारा ॥

साखी—अमर मूल निज ग्रन्थ है, कहैं कबीर विचार ।

अमर मूल जाने बिना, बूडा सब संसार ॥

चौपाई ।

अमर मूल जानौ धर्मदास । ताकर भेद कहौ परकासू ॥

अमर नाम कबीर कहाई । अक्षर विन बूडी दुनियाई ॥

धर्मदास वचन—चौपाई ।

धर्मदास विन्ती अनुसारी । सुनहु गुरू अपराध विसारी ॥

अमर भेद साहिब कह दीजे । तृषा बुझाय अमीरस पीजे ॥

बंदी छोड मुक्तिके दाता । अमर मूल कहिये विख्याता ॥

संधि भेद कहिये निर्बारी । यहै ग्रंथ है बहुत अपारी ॥

भिन्न भिन्न सब मोहि बताई । जिहिते मनकी संशय जाई ॥

प्रेम प्रीति तुमही सो लागी । वचन सुधा सुन हो अनुरागी ॥

अमृत नाम कबीर है सारा । पाउँ ताहि होय निस्तारा ॥

सद्गुरु वचन—चौपाई ।

तब सतगुरु अस कहै विचारी । तुमसों ज्ञान कहों अति भारी ॥

प्रथमहि सुनो पानकर लेखा । तिहि पीछे नरिरकरा लेखा ॥

तव प्रसाद में कहों विचारी । इतनी बातमें जीव उबारी ॥

शब्द विदेह भयो उच्चार । तिहिं पीछे त्रैलोक पसारा ॥
 शब्दहि नाम लोक है भाई । निः अक्षर में रहै समाई ॥
 निःअक्षर की परिचय होई । तब सतलोक पहुँचै है सोई ॥
 जीवत लोक बैठ पुन जाई । सार शब्द महुँ रहै समाई ॥
 अमर शब्दकी होय चिन्हारी । अंबू द्वीप ताहि बैठारी ॥
 अंबू द्वीप लोक कर नामा । शोभा कहा कहौं निज धामा ॥
 अवर्ण रूप वर्णों नहिं जाई । धर्मदास सुनियो चितलाई ॥
 षोडश भान हंस को रूपा । पुरुषहि महिमा अमृत अनूपा ॥
 अमर शब्द सों प्राणी भयऊ । वही शब्द सों लोकहि गयऊ ॥
 पान परवाना शब्द है सारा । एही मूल सों हंस उवारा ॥
 अकह नाम अक्षर है भाई । तुम निःअक्षर रहौ समाई ॥
 निःअक्षर को करै नबेरा । कहैं कबीर सोई जन मेरा ॥

धर्मदास वचन चौपाई ।

निःअक्षर गुरु मोहि बताई । जाते हंस लोकमें जाई ॥
 लोक प्रतीति करौं मैं कैसे । कहो विचार चित आवै तैसे ॥
 तुम प्रभु निर्गुण भाख सुनावा । अब कहिये सर्गुण परभावा ॥

सद्गुरु वचन चौपाई ।

धर्मदास तुम मतिके आगर । सार शब्द कहियो सुखसागर ॥
 हंसा सज्जन परम सनेही । कहियो ताहि परम पद तेही ॥
 धर्मदास सो शिष्य तुम्हारा । सार शब्दको करै सम्हारा ॥
 तुम्हरे वंश कहिये उपदेशा । ज्ञानी होय तेहि कहो संदेशा ॥

साखी-मूरख सौं जिन खोलिहौ, कहै कबीर विचार ॥

ज्ञानी सों न दुराइ हौ, सुनौ सत्त मत सार ॥

चौपाई ।

ज्ञानी होय जे मतिके धीरा । तहीं समाय वस्तु गंभीरा ॥
 धर्मदास सुनियो चितलाई । लोक प्रचय अब देउँ बताई ॥
 निर्णय नाम निःअक्षर सारा । सर्गुण सकल कीन्ह विस्तारा ॥
 निर्गुण सर्गुण बूझे कोई । सार शब्दमें रहै समोई ॥
 अमर मूलका करै विचारा । धर्मदास सो शिष्य हमारा ॥
 और ग्रंथ बहुतक मैं भाखा । अमर मूलकी है सब शाखा ॥
 शाखा पत्र सबै लपटाना । अमर मूल काहू नहिं जाना ॥
 अमर मूल धर्मनि सुन लेहू । यही सँदश हंसन कहि देहू ॥
 यह संतनको मत है भाई । जातें आवागवन नशाई ॥
 सोई जीव उतर है पारा । नातर बूड मुआ संसाग ॥

साखी—ज्ञानी होय सों मानहीं, बूझे शब्द हमार ।

कहैं कबीर सो बाचिहै, और सकल यमधार ॥

धर्मदास वचन चौपाई ।

पवन भेद अब कहो बुझाई । तामहिं जक्त रह्यो अरुझाई ॥
 नीर भेद मोहिं कहो विचारी । बंदी छोड जाउँ बलिहारी ॥

सद्गुरु वचन—चौपाई ।

नीर पवन का भाखों लेखा । सुकृत घटमें करौ विवेका ॥
 हम टकसार ग्रन्थ यक भाखा । नीर पवन ताही महँ राखा ॥
 एही माहिं रहे लिपटाई । नीर पवन महँ रहे भुलाई ॥

साखी—नीर पवन की उत्पत्ति, कहैं कबीर विचार ।

जो निज शब्द समावही, सोई हंस हमार ॥

चौपाई ।

सार शब्द मैं कीन्ह नवेरा । नहिं माने सो जमको चेरा ॥
 गर्भ बास जन्म सो घरई । जो यह लेखा बाहर परई ॥

छत्तिस नीर पचासी पवना । तासों रची सकल ही भवना ॥
यह तो भेद कालको दीन्हा । नाम जो एक गुप्त हम कीन्हा ॥
नाम भेद जो पावे सांचा । सोई जीव काल सों बाँचा ॥

साखी-सार शब्द जो जानही, सो जैहै भव गीत ।

नातो जमपुर जायँगे, कठिन काल विपरीत ॥

चौपाई ।

गोरख पवन साध मर गएऊ । नाम प्रचय अजहूँ नहिं भयऊ ॥
व्यास देव ज्योतिषहि विचारा । लगन सोधकर घरी सम्हारा ॥
नामहि सार चित्त नहिं दीन्हा । लग्न मुहूरत सब गहि लीन्हा ॥

साखी-लग्न मुहूरत साधिया, कम का भीत बनाय ।

भर्म टरै सद्गुरु मिलें, तबहीं लोकहि जाय ॥

चौपाई ।

यहै भर्म तब छूटै भाई । सतगुरु शब्द गहे चित लाई ॥
नाम पान मैं कहौ विचारी । जातैं छूटै भर्म किबारी ॥
मोह नसे सत चौकी होई । तबहि नाम कहँ पावै सोई ॥
ताते पान प्रवाना भाखा । भक्ति ज्ञान ताकर है साखा ॥
बिना नाम नहिं उतरे पारा । कैसे साध कहावे सारा ॥
पढ पढ विद्या वेद पुराना । नाम विना नहिं होय प्रमाना ॥
चारहि गुरु जक्तमहँ कीन्हा । तिनके हाथ मुक्ति हम दीन्हा ॥
वे हंसन कहँ लोक पठावें । भवसागरि महँ बहुरि न आवें ॥

साखी-चार गुरु संसारमें, धर्मदास बड अंश ।

मुक्ति राज मैं दीन्हऊँ अटल ब्यालिसहि वंश ॥

चौपाई ।

धर्मदास तुम मत के धीरा । तातैं दीन्ह मुक्ति कों वीरा ॥
तुमते जीव उतर है पारा । दीन्हां सौंप जक्त को भारा ॥
राय बंकेजी चतुर्भुज राजा । सहतेजी गुरु तहां बिराजा ॥

साखी—राय बंकेजी चतुर्भुज, सहते जी हैरान ।

येहि छुडाय हरेक हीं, शब्द देहिं पहिचान ॥

चौपाई ।

यही छुडाय काल सों हंसा । शब्दहि दै कर हैं निःशंसा ॥

तुम धर्मदास ब्यालिसहि वंशा । ये निज आहि पुरुषके अंशा ॥

इन कहिं सौंप दीन्ह जिवभारा । सब जीवनको करै उबारा ॥

इन ही छोड अन्त चितलावै । जन्म जन्म सो भटका खावै ॥

वंश ब्यालिस तुम्हरे सारा । और सकल सब झूठ पसारा ॥

साखी—नाम भेद जो जानही, सोई वंश हमार ।

नातर दुनियां बहुत ही, बूड मुआ संसार ॥

चौपाई ।

धर्मदास में कहों विचारी । यह बिधि निबहै यह संसारी ॥

काल कठिन है बहुत अपारा । जिन यह सृष्टि कीन्ह संहारा ॥

ता कहैं कोइ न जाने भाई । कालहि सुमरण करहिं बनाई ॥

काल दुःख दे सबहि रुवावे । शब्द होय तहैं माथ नवावे ॥

नाम एक है गुप्त अमोला । सो धर्मनि में तुमसे खोला ॥

जो यह नाम को करै सम्हारा । सो भवसागर उतरै पारा ॥

तुम कहैं दीन्ह शब्द उपदेशा । सो हंसन कहैं कहौ सँदेशा ॥

ज्ञान प्रकाश जाहि घट होई । जीवन मुक्ति पावै जन सोई ॥

धर्मदास वचन—चौपाई ।

धर्मदास कहें सुनिय गुसाई । जीवन मुक्ति कहो समुझाई ॥

जीवन मुक्ति कहौ किमि जाना । लोक वेद कैसे पहिचाना ॥

सो मोसों यह कहिये भेदा । जिहिंतें मनकी संशय छेदा ॥

सद्गुरु वचन—चौपाई ।

कहैं कबीर सुनो धर्मदास । वह निज भेद कहौ तुम पास ॥

उग्र ज्ञान जाके घट होई । मुक्ति भेद कहैं पावै सोई ॥

अब मैं कहौं ज्ञान उपदेशा । तुम अपने घट करौ प्रवेशा ॥
 मुक्ति नाम निःसंशय होई । अमर नाम जब सुत समोई ॥
 जहँलग कहि जिभ्या कर गाया । तहँ लग जानों सो सब माया ॥
 अकह नाम कहा नहिं जाई । घट २ व्याप्त निरंतर आई ॥
 नाद शब्द जबहीं उच्चार । तासों अक्षर भयो विस्तारा ॥
 अक्षर हीते उपजी माया । संशय भई सबनकी काया ॥
 तब ही शब्द सुत मन लाया । मन थिर भए नहीं है माया ॥
 स्थिर घट मन लहर समानी । मुक्तिरूप तबही पहिचानी ॥
 सो निःकर्म जीव हमारा । कर्म काट भव उतरै पारा ॥
 जो यह गहै शब्द मन लाई । ताकर आवागवन नसाई ॥
 सीखै पढै काम नहिं आवै । कर्म जीव मुक्ति नहिं पावै ॥
 ज्ञानप्रकाश चाहि घट होई । ताके हृदय मोह नहिं कोई ॥
 जैसे सूरज बादल छँधा । ऐसे मोह ज्ञान कहँ मूँदा ॥
 जब लग मोह न छूटे भाई । तबलग नाम न हृदय समाई ॥
 जब लग मोह रहै तन बासा । तबलग नाहिं ज्ञान प्रकाशा ॥
 जन्म जन्म कर भक्त जो होई । तबहिं नाम कहँ पावै सोई ॥
 कोटिन जन्म भक्ति जिन कीन्हा । अमर मूल तबही पर चीन्हा ॥
 अमर मूल कर पावे भेदा । कहँ कबीर सो हंस अछेदा ॥

धर्मदास वचन चौपाई ।

धर्मदास विनती अनुसारी । सदगुरु वचन जाउँ बलिहारी ॥
 जिहि विधि मम मन होय अछेदा । सो समरथ कहि दीजे भेदा ॥
 जो मोहे कहो पान परवाना । नरियर भेद कहो सहिदाना ॥
 कहाँ ते भयो पान परवाना । कहवाँ ते नरियर उतपाना ॥

सतगुरु वचन ।

अमर मूल सों पान बनावा । बेली बीज नहीं निर्मावा ॥
 हतो न बेल बीज तिहि ठाई । शब्द माहि बेली निर्माई ॥

उपजो तबै पान परवाना । जाते हंस होय निर्वाना ॥
 नरियर आहि धर्मको माथा । सो मैं दीन्ह तुम्हारे हाथा ॥
 जीवके बदले नरियर दीन्हा । हंस छुडाय धर्म सो लीन्हा ॥
 नरियर पान प्रसादकी जोरी । सार शब्द सो नरियर मोरी ॥
 जिन नरियरको पाय प्रसादा । जन्म मरनका पाप नसादा ॥
 जे जीव पायो पान प्रवाना । देह छोड सतलोक पयाना ॥
 काल दगा तबही मिटजाई । सत्यलोक महुँ जाय समाई ॥
 ऐसी भक्ति जीव जो करई । भक्ति बिना सो नहिं निस्तरई ॥

धर्मदास वचन ।

धर्मदास बिन्ती अनुसारी । हे सतगुरु तुम्हरी बलिहारी ॥
 नरियर पान प्रसाद बतावा । ताकर भेद नाहिं हम पावा ॥
 सोइ भेद मोहे देहु बताई । जिहितें मन संशय मिटजाई ॥

सद्गुरु वचन ।

धर्मदास तुम सुनो सुजाना । नरियर भेद पान परवाना ॥
 धर्मराज जब सेवा लाई । तबकी कथा कहौ समुझाई ॥
 जब तुम सुनो धर्मकी आदी । तब मिटि है जिवकी बकवादी ॥
 सेवा बसहि पुरुष तब भयऊ । तीन लोक भवसागर दयऊ ॥
 मानसरोवर बैठक दीन्हा । कामिनि देख बहुत सुख कीन्हा ॥
 धर्मराज कामिन कहँ ग्रासा । तबही पुरुष श्राप परकाशा ॥
 तीनलोक जिव करौ अहारा । तबही भरि है उद्र तुम्हारा ॥
 तीनलोक महुँ जीव जो होई । धर्मराय कहँ आवैं सोई ॥
 तातें नरियर बदला दीन्हा । जीव छुडाय कालसों लीन्हा ॥
 भक्ति प्रवान कहेउ समुझाई । बिना भक्ति नहिं काल पराई ॥
 नरियर पान शब्द है नौका । भक्ति प्रवान कहेउ तहँ चौका ॥

धर्मदास वचन ।

भक्ति प्रवान कहौ समुझाई । कवन भक्ति सों जीव मुक्ताई ॥
तुम प्रभु हौ हंसनके नायक । पुरुष पुरातन जीव हित लायक ॥
भक्ति अँग मोहे देव बताई । तिहिं गहि हंसा लोक सिधाई ॥

सद्गुरु वचन ।

धर्मदास सुन भक्ति विचारा । जासों उतर जाय भव पारा ॥
प्रथमहि पान प्रवाना पावै । साधनकी सेवा मन लावै ॥
सार शब्द घट रहे समोई । अक्षर भेद पावै जन कोई ॥
अमर वस्तु गुप्त हम राखा । ज्ञानी होय तेहि सों भाखा ॥
शब्द रूप निःअक्षर जानो । सो हंसा सत लोक पयानो ॥
इतना ज्ञान जाहि घट होई । अमर मूलको जानै सोई ॥

छन्द—ज्ञान पूरन होय जा घट पान नरिअर भक्ति हो ।

बिना ज्ञान नहिं भेद पावैं केते पढ गुण शक्ति हो ॥

अमरमूल यह ग्रन्थ धर्मनि सुनियो चित्त लगायकै ।

जन्म २ को पाप नासै अमरलोक सिधायकै ॥

सोरठा—सुन धर्मदास सुजान, किहिं विधि साधु कहावई ।

कहैं कबीर बखान, अमर मूल जाने बिना ॥

इति श्रीअमरमूल ग्रन्थ प्रथम विश्राम ।

ज्ञान भक्ति वर्णन ।

धर्मदास वचन—चौपाई ।

धर्मदास कहैं सुनो गुसाई । जीवन मुक्ति सो मोहे बताई ॥
नाम अमोल तत्त्व अति भारी । दुविधा माहिं जीव संचारी ॥
यह संशय मोहे निसदिन व्यापे । हरहु बेग गुरु यह संतापे ॥

तुम सतगुरु घर बैठे तारा । आवागवन मोरे निर्बारा ॥
मन अरु जीव भेद बतलाओ । अब जिन मोसन अन्तर लाओ ॥
समुझो तबै जीव मुक्ताऊँ । वही डोर गहलोक पठाऊँ ॥

सद्गुरु वचन ।

पवन पचासी सकल पसारा । जीव पवनसों आहि निनारा ॥
ब्रह्म रूप सब मांहि समाई । सूक्ष्म परू जीव दरसाई ॥
दसवां भाग राई कर जाना । आतम रूपी देह समाना ॥
अरु योगिनमें बरतै भाऊ । मानस देहमें मुक्ति प्रभाऊ ॥
पांच तत्त्व दस इन्द्री संग । प्रकृति पचीस कहेउ प्रसंगा ॥
यह प्रमान मन करे बखाना । जीव ब्रह्मसों भए उतपाना ॥
मन करता यह देह समाना । सूक्ष्म रूप नाहि पहिचाना ॥
अंक चीन्ह स्थिर होये सोई । ताकी आवागमन न होई ॥
ताकौ बरन भेद जब पावे । मुक्ति होय जग बहुरि न आवे ॥
चौरासी कब बंधन छूटे । काल जंजाल ताहि नहि लूटे ॥
मुक्ति भेद कोइ बिरले जाना । काल फांस जग सब लपटाना ॥
अमरमूल है मुक्ति पसारा । ताकौ संतो करौ विचारा ॥
आतम ब्रह्म एक है भाई । परमातम मिल ब्रह्म कहाई ॥
ज्यों जलमधि सों लहिर उगाई । तिमि परमातम आतम आई ॥
जिमि किसान चिनगी संचारा । इमि जिव भयउ ब्रह्म विस्तारा ॥
जिमि कंचन आभूषण कीन्हा । ऐसै जीव ब्रह्म कहँ चीन्हा ॥
उभै अंश दीपक इक फूटैं । जीव ब्रह्म संग न छूटैं ॥
जिमिरविज्योति किरणपरकाशा । ऐसे ब्रह्म कर मोहिं जिवबासा ॥
एही विधि ब्रह्म जीवहिं गाई । समझे तबही एक होजाई ॥
शिव शक्ती एकहिं मत कीन्हा । ताकर भेद कोइ बिरले चीन्हा ॥
जे जाना ते मुक्ति समाना । प्रेम भाव सतगुरु पहिचाना ॥

साखी-जिन जाना निजप्रेम कहँ, सोई जन परवान ।

तासों कहिये सूरमा, कहँ कबीर बखान ॥

चौपाई ।

केवल ज्ञान पाय है सोई । जिहि पर कृपा गुरूकी होई ॥
 केवल ज्ञान प्रकट समझाऊं । भिन्न २ कर तोहि लखाऊं ॥
 प्रथमहि सुनो ज्ञान कर भेदा । निर्मोही होय हंस अछेदा ॥
 सुर्वंत अक्षर पहिचाना । और सकल जग मिथ्या जाना ॥
 सुखदाई सबही कहँ भावै । बाल रूप होय अग्रि बुझावै ॥
 समदृष्टी एकहि कर जानै । भला बुरा कुछ मन नहिँ आनै ॥
 हृदय पुनीत शुद्ध मन होई । पाखण्ड भर्म डार सब खोई ॥
 ब्रह्म वियोग सदा अनुरागी । दसहूँ दिशा झूट तिन त्यागी ॥
 झूठ सकल जग देखौ जानी । जैसे अहै बुदबुदा पानी ॥
 अस मति जाकर होय सुहाई । केवल ज्ञान ताहि समझाई ॥
 माया बिना मोह नहिँ आवै । नाम पदारथ निश्चय ध्यावै ॥
 यह विधि केवल ज्ञान कहावै । जो सुमिरत सतलोक सिधावै ॥
 केवल काम निःअक्षर आई । निःअक्षर मैं रहै समाई ॥
 निःअक्षर तो करै नवेरा । कहँ कबीर सोई जन मेरा ॥
 अमर मूल मैं बरन सुनाई । जिहिते हंसा लोक सिधाई ॥
 शब्द भेद जाने जो कोई । सार शब्द मैं रहै समोई ॥
 शब्द ज्ञानका लख जिन पाया । समदृष्टि सब माहिँ समाया ॥
 जेतक जीव देह धर आए । शब्दहिँ सों ते सकल उपाए ॥
 शब्द अखंडा और सब खंडा । सार शब्द गरजे ब्रह्मंडा ॥
 निःअक्षर की परिचय पावै । सत्तलोक महुँ जाय समावै ॥

धर्मदास वचन छन्द ।

बिन्ती कैरँ कर जोर धर्मन, सुनहु सतगुरु सार हो ।

सत्तलोक है कौन शोभा, तहां कौन व्योहार हो ॥

कवन रूप जो पुरुष रहहीं, कवन सुख हंसा करै ।
 कामिनी किहि रूप राजै, तहां सुख विस्तार हो ॥
 सोरठा-सो मोहे प्रकट सुनाव, दया करौ निज दास कहँ ।
 बार बार बलि जांव, अब जिन मोहि छिपावहू ॥

सद्गुरु वचन चौपाई ।

कहैं कबीर सुनहु धर्मदासू । सत्तलोक को कहों प्रकासू ॥
 है सतलोकहि अम्मर काया । एक रूप सबही त्रय माया ॥
 षोडश भान हंस की कांती । अमर चीर पहिरे बहु भाँती ॥
 शोभा पुरुष कही नहिं जाई । कोटिन रवि इक रोम लजाई ॥
 अमर लोक अमर है काया । अमर पुरुष जहां आप रहाया ॥
 अमर पुरुष का पावै भेदा । कह कबीर सों हंस अछेदा ॥
 सत्तलोक सत शब्द पसारा । सत्त नाम है हंस अधारा ॥
 अमृत फल के भोजन करहीं । युगन २ की क्षुभ्या हरहीं ॥
 पीवत सुधा भर्म मिट जाई । जन्म २ की तृषा बुझाई ॥
 कामिनि रूप वरन उजियारी । चार भान की ज्योति पसारी ॥
 शोभा बहुतक प्राण पियारी । प्रेम भाव सब हंस निहारी ॥
 अनहित बचन बोल नहिं बानी । प्रेम भाव अमृत रससानी ॥
 शोभा बहुत जहां मन भावन । हंस कामिनी रंग बढावन ॥
 अमृत नाम हृदयमें लावे । प्रेम भाव पुरुषहि मन भावे ॥
 आशा बस मन कोऊ नाही । भयो प्रकाश शब्दके माहीं ॥
 बूझे संत ज्ञानी जो होई । सतगुरु शब्द हृदय समाई ॥
 है निहशब्द शब्द सों कहेऊ । ज्ञानी सोई जो वह पद लहेऊ ॥
 धर्मदास मैं तोहि सुझावा । सार शब्दका भेद बतावा ॥
 सार शब्द का पावै भेदा । कहैं कबीर सो हंस अछेदा ॥

सार शब्द निःअक्षर आहीं । गहै नाम तेहि संशय नाहीं ॥
सार शब्द जो प्राणी पावै । सत्तलोक महिं जाय समावै ॥

साखी--कहै कबीर विचार कै, सुनहु साध धर्मदास ।

अमर मूल निज शब्द है, ताकर अस परकास ॥

चौपाई ।

अमर मूल ग्रन्थन में सारा । विना अमर नहिं हंस उबारा ॥

धर्मदास वचन ।

धर्मदास कर जोर निहोरा । स्वामी सुनिये बिनती मोरा ॥
कवन प्रसाद दरश हम पाया । कवन प्रसाद अमर भइ काया ॥
कवन प्रसाद साध कहलायऊ । कवन प्रसाद हंस गति पायऊ ॥
कवन प्रसाद ज्ञान हम पाया । कवन प्रसाद अमर भइ काया ॥
कवन प्रसाद नाम हम पाया । कवन प्रसाद हम लोक सिधाया ॥
कवन प्रसाद सजन जन जानी । सो समुझाय कहो मोहे बानी ॥

सद्गुरु वचन ।

कहैं कबीर सुनौ धर्मदासू । यह सब भेद कहों परकासू ॥
पुरुष दयातैं दर्शन पावा । कोटि भक्ति सतनाम समावा ॥
जब कीन्ही सतगुरु ने दाया । नाम जान अमर भई काया ॥
सेवा कीन्ही साध कहाए । लोक जायके हंस कहाए ॥
हेत दीप सजन जन जाना । कहैं कबीर भेद निर्वाणा ॥

साखी--एक नामकी शोभा, कहैं लग कहों बखान ॥

निःअक्षर जो जानि है, सोई सन्त सुजान ॥

चौपाई ।

सत सहिदानि तोहि समझाई । अमर मूल महिं देखौ आई ॥
कोटि जन्म को पातक होई । नाम प्रताप जाय सब खोई ॥
नामहि गहैं सुरमा जानी । बिना नाम कायर सो मानी ॥

नाम बिना सबही विधि हीना । नाम बिना है ज्ञान बिहीना ॥
 नाम बिना सो मूरख कहिये । नाम बिना सो पापी लहिये ॥
 नाम जान सोई गुण आगर । नाम जान पहुँचे सुख-सागर ॥
 छंद ।

नाम अमी अमोल अविचल अंक बीरा पावही ।
 तज कागकि चाल मरालपथ गह अमरलोक सिधावही ॥
 जिमि सदन दीपक बिना नहिं मिटत है अँधियार हो ।
 तिमि नाम बिन सुनु दास धर्मनि नहीं घट उजियार हो ॥
 सोरठा-नाम अमोल अपार, अमर मूल मैं वर्णेऊ ।
 करहि कर्म जर छार, कहैं कबीर बिचार कर ॥
 इति श्रीअमर मूल नाम लोकमहिमा वर्णन ।

द्वितीय विश्राम ।

धर्मदास वचन-चौपाई ।

बिन्ती इक में करों गुसाँई । जिहि तें मन की संशय जाई ॥
 अमर मूल का कहौं विचारा । जाते हंस उतर है पारा ॥
 कौन भक्त सों हंस कहावा । कौन विधीसों पंथ चलावा ॥
 सो मर्याद देहु बतलाई । तुम प्रभु हो हंसन सुखदाई ॥
 सद्गुरु वचन ।

कहैं कबीर सुन धर्मनि नागर । यह विधि हंस पहुँच सुखसागर ॥
 प्रथम करै सतगुरु की सेवा । जाते मिटै काल कर भेवा ॥
 महा प्रसाद प्रेम सो पावै । सेवा कर निज गुरुहि मनावै ॥
 घट में राखे प्रेम अनंदा । चौरासी के छूटे फंदा ॥
 गुरु साहिब एकहि कर जाने । सो हंसा सतलोक पयाने ॥
 साधन सों एकहि मति रहई । दुबधा भाव न कबहूँ करई ॥
 गुरु साधु सेवा जिन कीन्हा । ताकहूँ मुक्ति निकट हम दीन्हा ॥

साखी-गुरु संतनको जानकै, हृदय करै परतीत ।

कहै कबीर सो हंस है, चलि है भव जल जीत ॥

चौपाई ।

सतगुरु तहां आरती करहीं । सब तज जहां जाय पगु धरहीं ॥

वरणामृत साधन को लीजे । मुख पूजाकर अचवन कीजे ॥

गुरुकी दया निरवरत रहई । निंदा रूप न कबहूँ करई ॥

निःअक्षर सुमरौ चितलाई । जासों आवागवन नसाई ॥

निःअक्षर को निखै भावा । देह छोड सतलोक सिधावा ॥

गुरुके वचन सोचकर माना । नाम बिना मिथ्या जग जाना ॥

और न देख और नहिं पेखै । निस दिन पल २ नाम विवेखै ॥

साखी-छूट पसारा देख जग, करनी देय बहाय ।

एक नाम कहँ जानके, ता मँह रहै समाय ॥

चौपाई ।

कर्म भर्म की छोडहि आशा । एक नाम सों कर विश्वासा ॥

कुलकी लज्जा भर्म नसावै । ऐसी रहिनी साध कहावै ॥

यह विधिसों तुम पंथ चलावो । जन्म जन्म को पाप नसावो ॥

वंश तुम्हार लोक कहँ जाई । नाम बिना बूडी दुनियाई ॥

नाम जान सो वंश तुम्हारा । बिना नाम बूडा संसारा ॥

नाम पार नहिं वेदन पावा । नेति नेति कर सब गुहरावा ॥

आदि ब्रह्मको पार न पावे । पढ पढ पंडित भर्म लगावे ॥

मुक्ति पंथ नहिं सुत समावा । पढ गुन थकित पार नहिं पावा ॥

अंतकाल जम घेरे आई । तब विद्या कछु काम न आई ॥

विद्या पढ कीन्हा अभिमाना । अंतकाल होय नर्क निदाना ॥

वेद पुराण साख यह भाखा । नाम बिना को जमसों राखा ॥

व्यास ब्रह्मकी अस्तुति कीन्हा । श्रीभागवत भाख नित लीन्हा ॥

काम रूपकर सबहि सुनावा । पंडित तासु मरम नहिं पावा ॥
 पूरन ब्रह्म नाहिं चित दीन्हा । काम रूप सबही गहि लीन्हा ॥
 बिन सद्गुरु कोइ मरम न पावे । झूठ राह सबही लपटावे ॥
 सतपुरुषको मरम न जाने । झूठहि धाय सांच कर माने ॥
 झूठहि झूठ रहा लिपटाई । सत्तपुरुषको लखा न जाई ॥
 अठारा पुराण ग्रन्थ बहु भाखा । तिनमहि सिरे भागवत राखा ॥
 ब्रह्म महातम कहि समुझावें । श्री भागवत भक्त दृढावें ॥
 कृष्ण चरित्र सब करहि बखाना । कृष्ण मरम काहू नहिं जाना ॥
 निर्गुन भक्ति नहीं चित दीन्हा । सर्गुण भक्ति सबन गहि लीन्हा ॥
 निर्गुन ब्रह्म मरम नहिं जाना । शिवसमाधि लगावहिं ध्याना ॥
 विष्णु ध्यान कीन्हा मन माहीं । अलख निरंजन देखें छाहीं ॥
 देखत छांहि मग्न मन भयऊ । निरंजन रूप विष्णु ह्वै गएऊ ॥
 दैत्य देव कीन्हें उतपानी । कीन्हें दैत्य देवनकी हानी ॥
 दैत्य मारिकै देव छुडावा । ताते विष्णु सबन मन भावा ॥
 गोपिन मिलकर रास पसारा । लीला एहि भक्त चित धारा ॥
 ता लीला महि सृष्टि भुलानी । ब्रह्मादिक सब मुनि अरु ज्ञानी ॥
 ज्ञान कथें अरु जोति दृढावें । जोति स्वरूप मर्म नहिं पावें ॥
 जोति स्वरूप निरंजन राई । जिन यह सकल सृष्टि भर्माई ॥
 सत्त पुरुष का मर्म न जाना । झूठ ज्ञान सबही लिपटाना ॥
 सत्य पुरुष सतगुरु सों पावे । सत्य नाम महुँ जाय समावे ॥

साखी—कहे कबीर धर्मदास सों, अमर मूल निज जान ।

अमर शब्द जा घट बसै, पावै पद निर्वान ॥

चौपाई ।

सत्यलोक महुँ पावहु बासा । बिना अमर नहिं काल विनाशा ॥
 पद २ मूरख ज्ञान बिगारै । ज्ञान गम्य नहिं कोइ बिचारै ॥

ज्ञान गम्य जाके घट होई । शब्द खोज करि है जन सोई ॥
ज्ञान गम्य नहिं मूरख पावै । सतगुरु मिलै तौ भेद बतावै ॥
सब संसार दूण्ड फिर आवै । ज्ञान बिना सब मूल गँवावै ॥

साखी-संत मिले संशय नसै, नहिं तौ पच पच मरना ।

नाव मिली केवट नहीं, किस बिधि पार उतरना ॥

धर्मदास वचन-चौपाई ।

धर्मदास कहै सुनहु गुसाँई । ज्ञान शब्द मोहे समुझाई ॥
ज्ञान रूप सतपुरुष प्रकाशा । सत्य लोक महुँ कीन्हौ बासा ॥
किहि विधि समझ परै यह बानी । कहिये सद्गुरु नाम निशानी ॥

सद्गुरु वचन ।

ज्ञान स्वरूप पुरुष कर आही । ज्ञानहि रूप कबीर लखाही ॥
ज्ञान प्रकाश दीप सम जानौ । बिना ज्ञान सब झूठ बखानौ ॥
बिना ज्ञान घटमें अँधियारा । ज्ञानबिना नहिं होय उबारा ॥
ज्ञान बिना अक्षर नहिं पाई । ज्ञान रूप अक्षर है भाई ॥
ज्ञानरूप पुरुष कर जानौ । एही वचन सत्य कर मानौ ॥
ज्ञान रूप निःअक्षर कहिये । अक्षर भेद ज्ञान सो लहिये ॥
निः अक्षर सो ज्ञानहि जानौ । अक्षर निः अक्षर पहिचानौ ॥
ज्ञान शब्द पूरुष कर अंशा । ज्ञान जान जन सोइ मम वंशा ॥
बिना ज्ञान नहिं वंश कहावै । ज्ञान होय तब शब्दहि पावै ॥
सोई वंश सत शब्द समाना । शब्दहि हेत कथै निज ज्ञाना ॥

साखी-कहे कबीर विचारके, सुनियो हो धर्मदास ।

जो यह शब्दहि पाय है, करि है लोक निवास ॥

धर्मदास वचन चौपाई ।

बिनती करि धर्मनि कर जोरी । हे सप्रथ बिनती यक मोरी ॥
जेहि ते वंश शब्द कहँपावै । सत्य लोक कहँ सत्य सिधावै ॥
औ जीवन कहँ देहु दृढाई । जाते जीव मुक्ति गति पाई ॥

सद्गुरु वचन ।

अब मैं वंशका कहों विचारा । धर्मदास तुम अंश हमारा ॥
 आदि नाम आमोदिक शाखा । सोई शब्द वंश कहैं राखा ॥
 साठ समै बारह चौपाई । एही तत्त्व हंस घर जाई ॥
 जब माली का भेदहिं पावै । सत्य नाम में जाय समावै ॥
 ऐसो भेद सुनौ धर्मदासू । जन्म जन्म की मेटत त्रासू ॥
 सद्गुरु दया कर्म होय छीना । अमर होय नामहि लौ लीना ॥
 संशय का मैं कहौं ठिकाना । संशय काल घटमाहिं समाना ॥
 जबही पुरुष धर्म कहैं कीन्हा । तबही संशय उत्पन लीन्हा ॥
 निः अक्षरकी परिचय पावै । संशय मिटे अमर घर जावै ॥
 संशय को खंडित है ज्ञाना । ज्ञान हीन संशय लिपटाना ॥
 संशय काल सबन कहैं खाई । निःसंशय हो नाम समाई ॥
 संशय काल लखै नहिं कोई । तातें गए बिगोय बिगोई ॥
 संशय नाम सुनौ धर्मदासू । एक नाम की राखहु आसू ॥
 नाम छोड अन्तहि चित आनै । संशय तमहि पकर गहि तानै ॥
 नामहि गहै तेहि निहसंसा । नाम बिना बूडे सब हंसा ॥

साखी—कहैं कबीर धर्मदाससों, संशय को बिस्तार ।

एक नाम कहैं जानके, उतरहु भौ जल पार ॥

धर्मदास वचन—चौपाई ।

हे स्वामी संशय उतपानी । ज्ञान हीन सब जीवहिं जानी ॥
 विरला हंस होय अंकूरी । सो यह ज्ञान गहै निज मूरी ॥
 ज्ञान लखे बिन मुक्ति न होई । तौ यह दुनियां जाय बिगोई ॥
 नाम महातम भाख सुनावा । बिना नाम कोइ पार न पावा ॥

सद्गुरु वचन ।

कहै कबीर सुनौ धर्मदासू । यह निज भेद कहौं तुमपासू ॥
 ज्ञान हीन प्राणी जो होई । ताकर भेद कहौं मैं सोई ॥

ता कहँ दीजै पान प्रवाना । निश्चय हंस होय निर्वाना ॥
 और प्रतीति हीय में धरई । सो प्राणा भवसागर तरई ॥
 पान पाय सत्यहि मुख भाखै । सद्गुरु चरण हिये में राखै ॥
 सद्गुरु केर निछावर करई । साधु चरण चित निश्चय धरई ॥
 तन मन धन संतन पर वारै । सतगुरु चरण हृदयमें धारै ॥
 सुत नारी कर मोह न आवै । सबही त्याग चरण चित लावै ॥
 चरण धोय चरणामृत लीजै । सत्यलोक महुँ अमृत पीजै ॥

धर्मदास वचन ।

पुरुषरूप कर यह उपदेशा । नारी को अब कहौ सँदेशा ॥
 नारी नाम मुक्ति किमि होई । ताके घट महुँ ज्ञान बिगोई ॥

सद्गुरु वचन ।

ताकर तोहि भेद समझाऊँ । मनो कामना सकल मिटाऊँ ॥
 नारी तरै सुनौ धर्मदासू । कहें कबीर नाम विश्वासू ॥
 ज्ञान हीन नारी को रूपा । ताको मैं सब कहों स्वरूपा ॥
 तन मन धन संतन पर वारै । संतन की सेवा चित धारै ॥
 साधन सौं जो अन्तर करई । धर्मरायके फंदा परई ॥
 गुरुके चरण निछावर जाई । तन मन धन सब देय चढाई ॥
 गुरुकी सेवा निगिनि करई । सो तिरिया भवसागर तरई ॥
 ऐसी धरन धरै धर्मदासू । तबही मिटै कालकी फांसू ॥

धर्मदास वचन ।

धर्मदास बिन्ती अनुसारी । हे स्वामी तुम्हरी बलिहारी ॥
 यही वचन प्रभु मोहि सुनाऊ । मोरे मन इक भर्म समाऊ ॥
 नारी रूप सकल हम जाना । पुरुष रूप एकहि पहिचाना ॥
 नारी कहिये सब संसारा । आदिब्रह्म है पुरुष अपारा ॥
 आदि पुरुष हम तुम कहँ चीन्हा । दूसर पुरुष कहाँ अब कीन्हा ॥

जो तुम कही सोइ हम जानी । नारी रूप सुत पहिचानी ॥
 दूसर नारि कहां है कीन्हा । यही वचन हम संशय लीन्हा ॥
 मैं नररूप आँहु मति हीना । यही भेद सुन भयउ मलीना ॥
 तुम तौ दयावंत गुरु स्वामी । क्षमिय चूक प्रभु अन्तरयामी ॥
 नारी नाम मात जो कहिये । इनहि भेद कैसे निर्वहिये ॥
 नारी नाम बहिन जो आही । तासौं कैसे अंक मिलाही ॥
 नारी नाम पुत्री जो होई । तासौं कैसे अंक सजोई ॥

साखी—यह सब भेद बतावहु, सुनहु हो बंदीछोर ।

यह संशय प्रभु मेटहु, चरण गहों प्रभु तोर ॥

सद्गुरु वचन—चौपाई ।

कहैं कबीर सुनो धर्मदासू । यह संशय उपजी तुम पासू ॥
 आदि पुरुष तब हते अकेला । शब्द स्वरूपी पंथ दुहेला ॥
 तब साहिब ऐसा मत कीन्हा । सकल सृष्टि रचिबे चित दीन्हा ॥
 मनसा घटते भिन्न निकारी । उत्पति भई तहां इक नारी ॥
 सोई नारि सकल जगजाया । भग भोगे तैं पुरुष कहाया ॥
 भग द्वारे होय बालक आया । यही भांति सब जग भर्माया ॥
 मैं तो एक मतौ रच जबही । पुत्र, बंधु, पिता भयो तबही ॥
 मैं तौ एक नारीकर जबही । पुत्रि, बहिन, माता भइ तबही ॥
 भाई बहिन कीन्हां व्योहारा । धर्मराय को यह संसारा ॥
 यह संशय महँ मार लै जाई । मार जार सब दुनियां खाई ॥
 आपहि पिता आपही पूता । आपहि देव आपही भूता ॥
 आपहि नारिरूप औतरिया । आपहि सकल सृष्टि विस्तरिया ॥
 आपहि कर्म धर्म उपजावन । आपहि रचै आप विनसावन ॥
 तातैं भेद बताऊँ तोही । ज्ञानी होय समझ करलेही ॥
 धर्मदास को संशय छूटा । जन्म जन्म के पातक दूटा ॥

ज्ञानी सों कहिये उपदेशा । मूरख सों जिन कहौ संदेशा ॥
संशय कीन्ह सकलजग भंगा । काहु न चीन्हा संशय अंगा ॥

सारखी कहैं कबीर सो बाचि है, गुरू चरण चित दीन्ह ।
अमर मूल निज शब्द है, हंसा चित गहि लीन्ह ॥

चौपाई ।

धर्मदास तुम करौ विचारा । विना शब्द नहिं उतरौ पारा ॥
सार शब्द सों सब उपजावा । नारि पुरुष दोई निरमावा ॥
सूरज पुरुष चन्द्र है नारी । यह घटमें द्वै रूप सँवारी ॥
जैसे धातु कनककी एका । सांचा माही रूप अनेका ॥
पाप पुण्य रूपहि सों बांधी । कीन्ह धर्म यह अगम अगाधी ॥
पाप रु पुण्य भर्म है भाई । धर्म राय सब भर्म उपाई ॥
भर्म अमल तबही मिट जाई । सत्य नाम जब रहै समाई ॥
जब लग भर्म अमल है भाई । तब लग नाम बूझ नहिं जाई ॥
बूझ सीख गावै बहु भाँती । सुमरन भर्म करै दिनराती ॥
आप न चीन्हे मूढ गँवारा । भर्मी भ्रम भूला संसारा ॥
धर्मदास तुम भर्महि छाडौ । निर्भय होय नामचित माडौ ॥
जो तुम भर्म करो जो माहीं । तौ कस हंसलोक कह जाहीं ॥
भर्म छोडके भक्ति दृढावहु । यह विधि हंसनलोक पठावहु ॥
तुम कहैं दीन्ह जक्तकौ भारा । तुम्हरी मुहर चलै संसारा ॥
हाथ तुम्हार जीव सब तरहीं । भवसागर तै हंस उबरहीं ॥
धर्मदास जग पारस देहू । जीव छुडाय काल सों लेहू ॥
पारस नाम कहेउ उपदेशा । मूरख सों जिन कहौ संदेशा ॥

छन्द-ज्ञानी कहैं यह भेद धर्मनि देहु तुम समझायकै ।

रहनगहन विवेक बानी कहहु सकल बुझायकै ॥

नाम पारस परस घट महाँ काग होय मराल हो ।
 अमर लोकहिं बास कर तहाँ नाहिं काल कराल हो ॥
 सोरठा-करलेहु आप समान, गुरु भृंगी यह जीवको ।
 देकर नाम निशान, रूप बरख पल्टायकै ॥
 इति श्रीअमरमूल ग्रंथ नाममहिमावर्णन तृतीयविश्राम ।

धर्मदास वचन--चौपाई ।

धर्मदास उठ विनती लाई । तुमपर ताप हंस मुक्ताई ॥
 किहि विधि पलटै जिवकी काया । सो समझाय करौ मोहे दाया ॥
 हो सतगुरु तुम अन्तर्यामी । पारस भेद कहो मोहे स्वामी ॥
 सद्गुरु वचन ।

कहै कबीर सुन सन्त सुजाना । पारस भेद सुनाऊँ ज्ञाना ॥
 ज्ञानी काहिं कहँ शब्द है सारा । यह पारस तें हंस उबारा ॥
 पारस पान बालक कहँ दीजे । तातें हंस काल नहिं छीजे ॥
 कामिनि कहँ पारस है सेवा । धर्मदास लखियो यह भेवा ॥
 यही रहन तुम पंथ चलाओ । जीवन बोध लोक पहुँचाओ ॥
 तीनहु विधि यह कहै बुझाई । जो मानैं सो लोक सिधाई ॥
 पुरुष होय शब्द नहिं जाना । निश्चय हुइ है नरक निदाना ॥
 बालक हो बीरा नहिं पावै । कैसे कै वह लोक सिधावै ॥
 कामिनि हो पारस नहिं लेही । गुरु सोई जो पारस देही ॥
 कामिनि जो सो पारस लेही । कैसे मुक्ति होय पुनि तेही ॥
 यासे गुरु जो अन्तर करई । धर्मराय के फंदा परई ॥
 गुरु नहिं शिष कहँ ज्ञान बतावा । यह गुरुमें फिर धोख समावा ॥
 शिष्य जो गुरु सों अन्तर राखा । शिष्यमहँ धोखा सत हम भाखा ॥
 गुरु सोई जो शिष्य समुझावै । शिष्य सोई जो गुरु मन लावै ॥

गुरु कहँ पेंट करै अधिकारै । निश्चय नरक जाय रे भाई ॥
तुम सों भेद कही निहतता । निश्चय वचन सुनौ मतिमंता ॥

धर्मदास वचन ।

धर्मदास बिनवैं कर जोरी । स्वामी सुनिये बिन्ती मोरी ॥
नारी नाम नरक की खानी । सो गुरुको किमि दीजै आनी ॥
सकल नरक नारी ढिग कहिये । सोई नरक गुरु कैसे चाहिये ॥
गुरु तो ब्रह्म रूप हम जाना । नरक भोगे सो कौने ज्ञाना ॥
गुरुकी महिमा अगम बताई । नीच वचन कैसे कहूँ साँई ॥
नीच सोई जो नीची कहै । नीच पंथ सों पार न लहे ॥
ऊँचा होय सो गुरु पद धारा । नीचा छोड उंच भव पारा ॥
नीचे कर्म काट गुरु दीन्हा । गुरुका वचन मान में लीन्हा ॥
दोहा—सो अब मोहि बतावहू, तुम गुरु अगम अपार ।

धर्मदासकी बिनती, सुनियो हो करतार ॥
साखी—रहिन ज्ञान तुम भाखिया, सत्य शब्द ठहराय ।
व्यभिचारी महुँ सत कहौं, कहौ गुरु समुझाय ॥
सद्गुरु वचन चौपाई ।

कहैं कबीर सुनो धर्मदास । अब यह भेद कहौं तुम पास ॥
हम जानी तुम संशय छूटा । काल कठिन भव तुम कहँ लूटा ॥
काल केरि गति तुम नहिं जाना । झूठी मायामें लिपटाना ॥
जब जाना निज ब्रह्म स्वरूपा । ता कहँ नाहिं रंक अरु भूपा ॥
नाम अमल रस छाके अंका । ताको कहा नरककी शंका ॥
तुम कहँ जीव बुद्धि नहिं छूटा । ताते जमरा फिर २ लूटा ॥
धर्मरायकी गति नहिं जानी । हर मंदिर उपजाओ आनी ॥
यह बाजी महुँ जीव भुलाना । शिवहि ममाधिलगावदि ध्याना ॥
विष्णु रूप काहू नहिं जाना । सुर मुनि नर बूडे अभिमाना ॥

यही वचनमें सब जग बंध्या । नाम बिना नहिं छूटत फंध्या ॥
 झूठी माया सब जग फंद । फंद कटे बिन नहिं निर्द्वन्दा ॥
 अज्ञानी जिव पर है फांसा । नर्क स्वर्ग दोऊ कर आशा ॥
 संशय काटनको हम आए । धर्मराय सब दुनियां खाए ॥
 ज्ञान सँवाद तुम कहैं समुझाए । तुम कहैं धर्मराय भर्माए ॥
 वचन हमारे दोष लगाए । झूठी माया तुम लिपटाए ॥
 शिष्य सोई गुरु बचनहि माना । आप ज्ञान बूझे नहिं ज्ञाना ॥
 गुरु प्रतीति हृदये नहिं आई । तातें बूडी सब दुनियाई ॥
 बूडत जाह थाँह नहिं पावा । तातें जन्म जन्म भर्मावा ॥
 तब सतगुरु भये अन्तरध्याना । धर्मदास मनमहँ पछताना ॥

धर्मदास वचन ।

दया करौ गुरु पूरन स्वामी । मैं नहिं जाना अंतर जामी ॥
 हों अज्ञान तुम मर्म न जाना । जान बूझ भूले अभिमाना ॥
 क्षमि अपराध मोर प्रभुराया । मोरे चित जो अन्तर आया ॥
 तुम गुरु सतगुरु ब्रह्म समाना । मैं शिष आँहु महा अज्ञाना ॥
 कुवचनः वचन बोल जो भाखा । माता पिता हृदये नहिं भाखा ॥
 करुणामय गुरु अन्तर्यामी । करहु दया अब मोपर स्वामी ॥
 जो नहिं दर्शन पाऊं आजू । तजौं प्रान मैं तुम्हरे काजू ॥
 हे साहिब तुम पथ जो दीन्हा । तातें तुमहि बूझ हम लीन्हा ॥

साखी—धर्मदास बिलखत बदन, करुणा बहुविधि कीन्हा ॥
 दर्शन बिन अति विकल ह्वै, जल बिन तलफत मीन ॥

सद्गुरु वचन—चौपाई ।

तबहिं कबीर दया चित आई । धर्मदास तव दर्शन पाई ॥
 दर्शन पाय भयो आनंदा । जैसे चकोर मिलत है चंदा ॥

गहि गुरुचरण बंदगी कीन्हा । चरण धोय चरणामृत लीन्हा ॥
 बिन्ती कीन्ह चरण चितलाई । महा प्रसाद दीजिये साईं ॥
 आमनिको आज्ञा तब दीन्हा । नाना व्यंजन तुर्तहि कीन्हा ॥
 कंचन थार आरती चारी । सेवा बहुत हृदयमें धारी ॥
 सुत नारी सब चरणन लागे । प्रेम प्रतीत भक्ति मन पागे ॥
 चरणामृत सबही मिल लीन्हा । दिव्य ज्ञान सबकहँ कर दीन्हा ॥
 साहिब चौका बैठे जाई । बहुत भांति कर आसन लाई ॥
 परस थार जब आमनि नारी । सुन्दर बदन प्राण अतिधारी ॥
 मार मार प्रसाद लै आवहिं । प्रेमभाव साहिब मन भावहिं ॥
 पाय प्रसाद पुनि अचवन लीन्हा । धर्मदास तब बिन्ती कीन्हा ॥
 दया करहु अब मोपर स्वामी । बन्दी छोड वर अन्तर जामी ॥
 तब दीन्हउं प्रसाद गुसाईं । धर्मदास हर्षे मन माईं ॥
 जेतक साथ रहे घर माहीं । वह सब आनंद भये मन माहीं ॥
 आमनि तबही पलँग बिछावा । सतगुरु तहां आन पौढावा ॥
 धर्मदास तब पंख डुलावैं । आमनि चरण चापि सुख पावैं ॥
 सकल साध मिल बंदगी कीन्हा । तन मन धन साहिबकहँ दीन्हा ॥
 मेटी सकल जगतकी लाजा । तातें होय जीवको काजा ॥
 धर्मनि तहां निछावर करहीं । बार बार बिन्ती अनुसरहीं ॥

साखी—यह तन लेव गुसाईं, जो होवे मम काज ।

तन मन धन कर निछावर, सुख संपति कुल लाज ॥

सद्गुरुवचन—चौपाई ।

कर धर सिज्या पर बैठावा । अन्तर गति स्थिर ठहरावा ॥
 जोई मुख सौं भीतर देखा । सबहिं कसौटी कीन्ह परेखा ॥
 साहिब तब ही दाया कीन्हा । मस्तिक हाथ आमनिके दीन्हा ॥
 जाहु न अपने घरके माहीं । सत्य तुम्हार देखे मन माहीं ॥

यह मन कर्म अकर्म करावे । देहके स्वारथ नाच नचावे ॥
 ताते तुम मन थिर हम जाना । काल चरित्र छूटा अभिमाना ॥
 हमरे देह काम नहीं होई । तुम अहंकार सकल हम खोई ॥
 धर्मदास तुम वंश उजागर । हंसन पहुँचावहु सुख-सागर ॥
 निश्चय हुई है मुक्ति परवाना । सत्यलोक कहिं देव पयाना ॥
 वंश तुम्हार जहाँ लग होई । इनके हाथ मुक्ति सब लोई ॥
 वंश ब्यालिस अचल तुम्हारा । तिनके हाथ मुक्ति संसारा ॥
 ब्यालिसमांहि त्रयोदश भाखा । अंश हमारहू हैं निज शाखा ॥
 नाम जानेते सबै उबारा । बिना नाम बूडा संसारा ॥

धर्मदास वचन ।

धर्मदास विनती अनुसारी । हे साहिब मैं तुम बलिहारी ॥
 हमरे वंश कहँ पारस देई । तुम्हरे दरश बहुर कब लेई ॥
 यही अर्ज मेरी सुन लीजे । वंश हमार आपनो कीजे ॥
 जिहिंते मुक्ति होइ सब केरा । सो मोहे स्वामी कहौ नवेरा ॥

सद्गुरु वचन ।

तुम्हरे वंश कौ कहौ उपदेशा । जाते होय हंसको भेषा ॥
 जो कोइ हंस होय जगमाहीं । सो उबरहिं वंशनकी वांहीं ॥
 वंश तुम्हार जे बालक होई । तिनसौं पारस ले सब कोई ॥
 जा कहँ नाहीं व्यापैं कामा । निशादिन रहै शब्दमें धामा ॥
 रहिन गहिनसौं स्थिर अंगा । मनसा वाच सत्य प्रसंगा ॥
 सत पारस को जानैं भेदा । आतम परसै सूक्ष्म भेदा ॥
 ऐसा सज्जन शब्द सनेहा । प्रकट कबीर तासुकी देहा ॥
 तिनसौं पारस भेद न कीजे । वंश मोर जो शब्द पतीजे ॥
 पारस माहिं भेद जो करई । कहैं कबीरसो किहिविधि तरई ॥
 बालक बोध कै पंथ चलाओ । बिना पंथ सोला नहीं पाओ ॥

बालक तेरे वंशके हाथा । पंथ दीन्ह मैं तिनके हाथा ॥
 मुक्ति जान कर राखै गोई । तेहि सम द्रोही और न कोई ॥
 शब्द जान कर पंथ चलावै । देश देश फिर सब समझावै ॥
 तौन देश गँवनइ कराई । सुर्त बंत हंसन मुक्ताई ॥
 पुरुष आज्ञा जो मोकहँ दीन्हा । मुक्ति भेदसों सब कहि दीन्हा ॥
 सार शब्दका भेद जो पावा । यह सब ज्ञान तोहि समझावा ॥
 बिना नाम मिट है नहिं संशा । नाम जान सो हमरे वंशा ॥
 नाम जान सो वंश करावै । नाम बिना सो मुक्ति न पावै ॥
 वंश तुम्हार नाम जब पाई । भवसागरतें लोक सिधाई ॥
 नाम न जान करै अहंकारा । सो जिव परि है भवजलधारा ॥
 नाम जान सो वंश हमारा । विना नाम बूडा संसारा ॥
 विना नाम सबही अभिमानी । नाम प्रचय कोइ कोई जानी ॥
 नाम निहअक्षर कहा बुझाई । अमरमूल महुँ देखो आई ॥
 निह अक्षर को पावै भेदा । सोई हंसा होय अछेदा ॥

साखी—कहै कबीर विचारकै, निः अक्षरको भेद ।

निःअक्षर जो पावहीं, सोई हंस अछेद ॥

चौपाई ।

निह अक्षर तुम ज्ञान सुनाओ । जंबू द्वीप हंस मुक्ताओ ॥
 ऐसा धरन धरे जो कोई । निश्चय पार पाय है सोई ॥
 तुम धर्मदास पंथके राजा । तुम्हरे हाथ जीव को काजा ॥
 यही मता हम तुम कहँ दीन्हा । दूसर कोइ न पावै चीन्हा ॥
 अक्षर भेद बसै जिहि अंगा । निस बासर हम ताके संग्गा ॥
 सत्य लोक महुँ बासा पाई । अमृत भोजन करै अघाई ॥

छन्द—यही महिमा जीव धरहै, वाम करै सतलोक हो ।

काल फन्दा काटकै लै, धरौ हंसन थोक हो ॥

सुम्रन सिज्या बास लीन्हो, असन अमृत पावहीं ।
 वस्त्र अम्मर पहिरकै तिन, जरा मरन नसावहीं ॥
 सोरठा-षोडश भान प्रवान, धर्मनि शोभा हंसकी ।
 पावो शब्द प्रवान, अत्रलोक बासा कियो ॥
 इति श्रीग्रंथ अमरमूल धर्मदास कसोटी, पारस भेद वर्णन-
 चतुर्थ विश्राम ।

धर्मदास वचन-चौपाई ।

धर्मदास तब बिन्ती कीन्हाँ । अबलग साहिब हम नहिं चीन्हा ॥
 जब तैं दाया भई तुम्हारी । भयो प्रकाश हृदयमें भारी ॥
 अमर लोक के हौ गुरु वासी । कारण बन आये अविनासी ॥
 मृत्तलोक आए किहि काजा । धर्मराय बड पापी राजा ॥

सद्गुरु वचन ।

धर्मनि सुनौ वचन चितलाई । जीवन काज पुरुष पठवाई ॥
 सत्यलोक तैं जग में आवा । धर्मराय मोहे देखन धावा ॥
 धर्मराय तब पूछी बाता । कवन काज तुम आयेउ ताता ॥
 मृत्तलोक में अब मैं जाऊँ । हंसन काज पुरुष पठवाई ॥
 धर्मराय तब बोलन लीन्हा । हमरे देश मुक्ति तुम दीन्हा ॥
 मैं तो तीन लोक कर राजा । तुम कस करौ जीव कर काजा ॥
 यह तो लोक पुरुष मोहे दीन्हा । तुम कस मोहे छुडावन लीन्हा ॥
 अजहुँ भली है जाहु गुसाँई । जीव जन्तु मारों सब ठाई ॥
 अगम अपार निरञ्जन देवा । तुम नहिं जानत मोरो भेवा ॥
 किहि विधि हंस उतारो पारा । कौन भेद लै करो पसारा ॥
 तब हम कहा सुनो धर्मराजा । जानत नहिं मर्म तुम काजा ॥
 हम बल एक शब्द का भाई । तेही के बल हंस मुक्ताई ॥

जहां नाम तहां तुम नहिं कोई । विना नाम है तुम्हरी छोई ॥
यह विधि होय हंस परवाना । आवा गमन तासु नहिं जाना ॥

धर्मराय वचन ।

जेतिक नामे मुख सुम्रन करिया । सो सब नाम हमारे धरिया ॥
जो कोइ धर्म करही संसारा । सो सब मोर आहि व्यवहारा ॥
बहुत भाँति मैं फंदा कीन्हा । शंकर सहित बांध मैं लीन्हा ॥
कवन नाम हंसन मुक्ताओ । सो स्वामी मोहे भेद बताओ ॥

ज्ञानी वचन ।

नाम हमार पुरुषके केरा । वही नाम सों हंस उबेरा ॥
धर्मराय तुम ताहि न जाना । अपने अवगुण भये बिगाना ॥
यही नाम आपन घट लेते । जीवन कष्ट नाहिं तुम देते ॥

धर्मराय वचन ।

परम पुरुष है मोरा नाऊं । दूसर पुरुष कहां निर्माऊं ॥
मोरे आगे कवन कहावा । सब कहैं मार जार भर्मावा ॥
तीन लोक महीं जीव पसारा । उन कहैं मार करौ संहारा ॥
ब्रह्मा पुत्र हमारो भयऊ । अंतकाल ताही दुःख दयऊ ॥
शिवसभाधि कीन्हा अहँकारा । प्रलय काल करौ जर छारा ॥
विष्णु बडे सबही में अंशा । तिनकहैं मार करौ निरवंशा ॥
अपने अंश यही गति दैहौं । सृष्टि संहार प्रलयकर लैहौं ॥
तुम तो आए हंस उबारन । कवन भाँति करिहौ जगतारन ॥

ज्ञानी वचन ।

धर्मराय कहैं तब समझाई । तुम जीवनके दुष्ट कहाई ॥
जब तुम कीन्हा चोरको काजा । तातैं पुरुष मोहिं उपराजा ॥
नाम एक मोहे दीन्हा अमोला । वोही नाम जीव बन्दी खोला ॥
ठाकुर नाम तुम्हारा होई । तीन लोक ठकुराई समोई ॥

पुरुष नाम तुम दीन्ह बिसारी । आपहि पुरुष रूप बिस्तारी ॥
 योग सन्तायन हमरौ नाऊ । तोहि कारण मोहे निर्माऊ ॥
 तुम निज धर्म करौ अहँकारा । आदि ब्रह्म अहै रखवारा ॥

धर्मराय वचन ।

धर्मराय तब उत्तर दीन्हा । हम कहँ दया पुरुष नै कीन्हा ॥
 तुमहीं दया करहु मोहि पाहीं । जिहिते मोर रहै जग छाहीं ॥
 तुम जेठे हम लहुरे भाई । हम ऊपर तुम काहि पठाई ॥
 पुरुष समानहिँ तुम कहँ जाना । अपने मन तुम दूसर ठाना ॥
 कहौ उपदेश सोइ उपदेशा । जातैं ऊजर होय न देशा ॥
 पुरुष वचन हम शिरपर मानी । आज्ञा भंग करों नहिँ ज्ञानी ॥
 ज्ञानी वचन ।

योग सन्तायन बोलन लीन्हा । यह उपदेश पुरुष तोहि दीन्हा ॥
 जो जिव पान प्रवाना पावै । ताके निकट काल नहिँ जावै ॥
 जो कोइ जीव हौइ है ज्ञानी । ताकी तुम कीजौ महिमानी ॥
 सार शब्द जो बालक पावै । तासों प्रेम बहुत तुम लावै ॥
 यह उपदेश हमारौ लीजे । पुरुषके वचन मान शिर लीजे ॥
 जो इतना नहिँ करौ कबूला । तौ तुम सहहु दुःख बहु शूला ॥
 पान प्रवाना शब्द न होई । जस जानो तस करिहौ सोई ॥
 इतना धर्मराय जब जाना । जो तुम कहा सोइ परवाना ॥
 बिन्ती एक हमारी लीजे । नाम सन्देश मोहि कहि दीजे ॥

साखी-मैं उपदेश जो पावहुँ, सो सब कहहुँ तुम्हार ।

तुमहि पुरुषके आगुवा, हंस छुडावनहार ॥

ज्ञानी वचन-चौपाई ।

तब साहिब जो कहिबे लीन्हा । तुम नहिँ पावहु नामको चीन्हा ॥
 जब तुम सत्यलोकमहँ रहिया । चौसठ युगलग सेवा करिया ॥

तबै पुरुष आज्ञा तोहि दीन्हा । सत्रह खण्ड राज्य तब दीन्हा ॥
 तब तुम मान सरोवर जाई । कन्या देख बहुत सुख पाई ॥
 पुरुष तोहि तब मार निकारा । तब हम भणऊ हंस रखवारा ॥
 शब्द वार तब पुरुष सम्हारी । तुम्हरे टारे टरत न टारी ॥
 मूल शब्द का पावै भेदा । सोई हंसा होय अछेदा ॥
 सोई भेद तुम नाहिंन पावा । कितनौ सेवा कर गुहरावा ॥
 तुम कुबुद्धि औगुण बड कीन्हा । पुरुष आय पेल जो दीन्हा ॥
 तब तै तुम्हरो भिन्न पसारा । राज पसारेउ यह संसारा ॥
 हम कहँ दया हंस की आई । दीन्ह प्यान लोक तैं भाई ॥
 बचन हमार मान सिर लीजे । शब्द खोज अब नाहिं करीजे ॥
 जब तुम पाहौ शब्द ठिकाना । लोक तुम्हार न रहै निदाना ॥
 सबै जीव सत लोकहि जाई । तुम्हरी नहीं रहै ठकुराई ॥
 येही मंत्र हमारो धरहू । शब्द खोज अब नाहीं करहू ॥

सारखी—महा प्रलय जब होय है, देखि हो लोक हमार ।

तब हम तुम कहँ मिलहिंगे, शब्द दोह टकसार ॥

चौपाई ।

सत्रह खण्ड तबहि मिटिजाई । रहै पुरुष तब शब्द समाई ॥
 धर्मराय तुम पुरुष के अंशा । मिलहै शब्द मिटै सब संसा ॥
 इतना वचन धर्म सौं कीन्हा । पीछे जगही प्याना कीन्हा ॥
 ता पाछे संसारहि आये । पेडरमों बहु जीव छुडाये ॥
 चार सिद्ध पर्वत पर पाये । तिनसों ज्ञान भेद समुझाये ॥
 चारों सिद्ध काल सों बाचा । दिव्य ज्ञान हृदय महुँ साचा ॥
 ता पीछे तुम्हरे ढिग आए । धर्मदास तुम दर्शन पाए ॥

धर्मदास वचन ।

धर्मदास विन्ती अनुसारी । हे सतगुरु तुम्हरी बलिहारी ॥
 अगम ज्ञान तुम मोहिं लखावा । हृदयकमल तुम मोर जुडावा ॥

धन्य भाग्य सतगुरु पगुधारा । अब भयो जीवन सुफल हमारा ॥
 एक बचन मोहि कहौ बुझाई । जिहितें जीव की संशय जाई ॥
 काल कठिन सो काहु न जाना । सो मोसौं कहिये परवाना ॥
 जीवत काल चीन्ह जब पावै । तब तुम्हरे सतलोक सिधावै ॥
 जीवत काल चीन्ह नहिं जाई । तो कैसे सतलोक सिधाई ॥
 तुम तो ज्ञान बहुत उपदेशा । बिन देखे सब लगै अन्देशा ॥
 दया करो अपनो जन जानी । काल चिह्न याऊ पहिचानी ॥
 बिन चीन्हे नहिं होय उबारा । भवसागर वांकी है धारा ॥
 काल कठिन है जमकौ फंदा । किहिं विधि जीव होय निरद्वन्दा ॥
 निरद्वन्दी मोहे करो गुसाई । तौ मैं पंथ चलाऊँ जाई ॥

सद्गुरु वचन ।

साहिब तब कहिबे चित धारा । धर्मदास सुन काल पसारा ॥
 काल अमल संशय है भाई । प्रथम काल तुम चीन्हौ आई ॥
 जेतक कर्म करै संसारा । सो सब आहि काल व्यौहारा ॥
 काल ख्याल जानत नहिं कोई । कर विपरीत सबन कहँ खोई ॥
 दस औतार कालने छलिया । काल अपर्बल सब कहँ दलिया ॥
 मीन स्वरूप काल औतारा । कूर्म स्वरूप महा जो धारा ॥
 बारह रूप औतार जो कीन्हां । नरसिंहरूप औतार जो लीन्हा ॥
 वामन होके बलि कहँ छलऊ । परसराम होय छत्री दलऊ ॥
 राम रूप होय रावन मारा । कृष्ण रूप होय कंस पछारा ॥
 बौध रूप जगन्नाथ औतारा । लीला बहुत भांति सम्हारा ॥
 दस औतार कालके धरिया । म्लेच्छ मार सतयुग सो करिया ॥
 इनही देह धरी युग माहीं । काल अमल व्यापै तिन पाहीं ॥
 काल मर्म काहू नहिं जाना । सब कहँ पकर कीन्हे पिसवाना ॥
 काल पुरुष काहू नहिं चीन्हा । काल पाय सबहिन गहि लीन्हा ॥

काल पायकर जागहि योगी । कालकष्ट सुन फिरहिं वियोगी ॥
 काल पायकर पाप जो करहीं । काल पाय सब पुण्यहि धरहीं ॥
 काल पायकर सतयुग भयऊ । काल पाय त्रेता है गयऊ ॥
 द्वापर काल पायकर आवा । कलयुग काल पाय निरमावा ॥
 कालहि पाय चला सब जाई । काल पाय संसार समाई ॥
 काल पाय कर भक्ति करावै । काल पायकर लोकहि आवै ॥
 काल भेद में कहा विचारी । धर्मदास तुम ज्ञान सम्हारी ॥
 काल कालको मर्म न जाना । सत्य पुरुष तैं भए उत्पाना ॥
 अलख निरञ्जन नाम कहावा । पुरुष प्रसंग रूप बनि आवा ॥
 पुरुष प्रगट जब रूप बतावा । सत्य लोक जब नाम धरावा ॥
 तबही पुरुष गुप्त होय गयऊ । काल रूप यह मनकर भयऊ ॥

साखी—काल काल सब कोइ कहें, काल न कीन्ह विचार ।

मन थिर होवे शब्द महँ, काल रहे झकमार ॥

चौपाई ।

ना कहूँ आवै ना कहूँ जाई । शब्दहि माहीं सहज समाई ॥
 जा देखहुँ तैसा है सोई । गुप्त प्रगट वे रहैं समोई ॥
 गुप्त ये प्रगट एक कर भयेऊ । दुतिय भावकर ज्ञान नशयेऊ ॥
 दुतिया दुर्मत दासी होई । ज्ञान विचार कहां रहो सोई ॥
 तीन कालसां जो रहै थीरा । सोई पुरुष कायाको बीरा ॥
 सोई बीर शब्द निज मूला । मंत्र ध्यान सोई स्थूला ॥
 वही शब्द तैं काल डराई । नातर करि हैं कोट उपराई ॥

साखी—दुनिया चेरी काल की, मूरख बूझै नाहिं ।

जाकी दुनिया मिट गई, ते आतम ब्रह्म समाहिं ॥

चौपाई ।

जैसा है तस कहा न जाई । ज्ञान विना बूझै नहिं भाई ॥
 आय ज्ञान तब परगट भयऊ । दुतिया भाव सबै मिट गयऊ ॥

दीपक ज्ञान भयो उजियारा । काल तिमिर मिटगा अँधियारा ॥
 भए आनन्द गुरु जब पाये । ऊँच नीच सब दूर बहाये ॥
 ऊँच नीच सब समकर जाना । ऊँच नीच सब झूठ बखाना ॥
 ऊँच नीच सब झूठहि लागै । जब आतम परमातम पावै ॥
 झूठा लोग न बूझै कोई । सब संसार झूठ है सोई ।
 समता ज्ञान प्रकाश कराई । और ज्ञान सब झूठ हैं भाई ॥
 झूठ साँच संसार समाना । सत्य शब्द नाहीं पहिचाना ॥
 झूठ साँच दोई मिट गयऊ । ज्ञानप्रकाश जाहि घट भयऊ ॥
 धर्मदास तुम बूझहु ज्ञाना । काल मर्म सुनहु अब काना ॥
 सद्गुरु दया जाहि पर होई । अमरमूल कहँ जानै सोई ॥

साखी-अमर मूल कहँ जानई, काल दगा मिट जाय ।

काल परख कर बूझ है, तब नहिँ काल समाय ॥

चौपाई ।

काल निहकालका भेद सुनाऊँ । धर्मदास मैं तोहि लखाऊँ ॥
 निह अक्षरका भेद निज पावै । निहअक्षर माहिँ जाय समावै ॥
 जो नहिँ जान निहअक्षर भेदा । ता महुँ काल करत है छेदा ॥
 निह अक्षर बिन काल न जीतै । यज्ञ दान केता कर बीतै ॥
 योग यज्ञ तप काल पसारा । यज्ञ दान सब काल व्योहारा ॥
 काल गती संसार है भाई । बिरला जन कोई लख पाई ॥

साखी-संशय काल शरीर महिँ, विषम काल है दूर ॥

ताहि लखत कोइ संतजन, जार करै सब धूर ॥

चौपाई ।

जीव बुद्धिसों नाहिन चीन्हा । काल न चीन्हत मतिके हीना ॥
 कबहुँ सुख कबहुँ दुख होई । काल जाल जानत नहिँ कोई ॥
 मानस कह मनमाहिँ विचारी । निरालंब होय प्रभुहिँ पुकारी ॥

कबहुँ कहै प्रभुने सब कीन्हा । कबहुँ कहत सब मोर अधीना ॥
स्वारथ रूप सदा चित लावै । परमारथ कबहुँ नहिं भावै ॥

साखी—कहै कबीर धर्मदास सों, तुम सुनियो चितलाय ।

काल भेद नहिं जानहीं, मूरख रहे भुलाय ॥

चौपाई ।

जो देखा सो काल पसारा । जो बिनसे सो काल अहारा ॥
धर्मदास तुम चित थिर करहू । मनकी डगमग सब परिहरहू ॥
भूत भविष्य वर्तमान जो कहिये । यहि विधि तीन काल निर्वहिये ॥
भूत सबै है कालकी काया । भविष्य होय सोइ जीव कहाया ॥
वर्तमान परमात्म जानो । यहि विधि तीन काल पहिचानो ॥
जोई भूत सोई वर्तमाना । सोई भविष्यत भर्म कर जाना ॥
भूत भविष्यत और वर्तमाना । मन थिर भए सबै पहिचाना ॥
शब्द मांहि हंसा निरबहई । मन बिच कर्म नामको गहई ॥
मनके रूप समानी माया । सब संसार व्याप्त यह छाया ॥
मन थिर कर परमात्म जाना । यहि विधि तत्त्व लेहु पहिचाना ॥
काल जाल तैं तेही लूटै । काल बिचारै ताहि न लूटै ॥
यही भेद धर्मन सुन लीजै । शब्द माहिं वासा तुम कीजै ॥
काल ज्ञान संसार बखाना । काल स्वरूप नहीं पहिचाना ॥

साखी—इतना भेद सुन लीजिये, काल को ज्ञान बखान ।

काल पायकर होत है, हम सों फिरफिर ज्ञान ॥

धर्मदास बचन—चौपाई ।

धर्मदास तब पांयन परई । सतगुरुसों बिलिनी अनुसरई ॥
जो तुम कही सोई परवाना । काल पाय कर फिर २ ज्ञाना ॥
तुम प्रसाद मुक्ति फल पावा । यह भवसागर बहुर न आवा ॥
हम सों ज्ञान कहा फिर होही । सोई बात कहो निज मोही ॥

सद्गुरु वचन ।

तब साहिब अस कहिबे लीन्हा । तुम नहिं पाओ ज्ञानको चीन्हा ॥
हम तौ सत्यलोकके वासी । तहँ नहिं काल बसै अविनाशी ॥
मैं जो कहा मृतलोक व्यवहारा । काल पाय सब होय औतारा ॥
काल पाय बिनसै संसारा । कालै सब विनास जग डारा ॥
काल कर्म काहू नहिं जाना । जीव जन्तु सब काल समाना ॥
कालहि पाय सृष्टि निर्माई । काल पाय फिर माहिं समाई ॥

साखी—काल पाय जग उपजो, काल पाय वर्त्ताय ।

काल पाय सब विनसही, काल काल कहँ खाय ॥

धर्मदास वचन—चौपाई ।

यह सुन धर्मदास हर्षाने । सद्गुरु रूप हिये पहिचाने ॥
तुम साहिब मोहे कीन्ह निहाला । आपन जान कीन्ह प्रतिपाला ॥
बिन्ती एक करत संकाई । हे सतगुरु मोहे भाख सुनाई ॥
कालहिकी गति कहि समुझावा । अचरज बात मोर मन आवा ॥
प्रथम पुरुषकी प्रथमहि काला । मोहि बतावहु भेद रसाला ॥

सद्गुरु वचन ।

तब सतगुरु कहिबे अनुसारा । धर्मदास सुन शब्द हमारा ॥
प्रथम हते जब शून्य स्वभाऊ । शून्य ते पुरुष शब्द निर्माऊ ॥
शब्दते पुरुष शब्द निर्मावा । यही भेद बिरले जन पावा ॥
जाकौं कहीये शून्य स्वभाऊ । काल शून्य एकै समुझाऊ ॥
काल भेद कोई नहिं जाना । धर्मदास तुम सुनियो ज्ञाना ॥
शून्यहि माहिं शब्द उच्चार । धर्मरायको भयो पसारा ॥
प्रथमहि जिन्द रूप इक भयऊ । सत्तर युग सोवत चल गयऊ ॥
तब साहिब मोहे आज्ञा दीन्हा । जिन्द जीवकहँ तुम नहिं चीन्हा ॥
जिन्द जीव कहँ आन बुलाई । सत्तर युग उन सोय सिराई ॥

तब हम जाय शब्द अस बोला । सोवत जिन्द नाहि चित डोला ॥
 का सोवत तोहि पुरुष बुलाई । नहि जागहि तिहि नींद सुहाई ॥
 तब हम तेहि जगावन लागे । जिन्द न जाग परम अनुरागे ॥
 जगै न नींद भर्म बहु आवा । तब हम एक शब्द उपजावा ॥
 काल शब्द कहँ टेर पुकारा । सुनकर जिन्द भयो संचारा ॥
 काल शब्द सुन जिन्द डराना । तबही आय चरण लिपटाना ॥
 काल नाम सुन ऐसा भाई । काल नाम सुन भक्ति कराई ॥
 धर्मदास सुन कालको भेदा । काल विना नहि करै निषेदा ॥
 काल नयन भर देख न कोई । कालहि पढ पढ गये बिगोई ॥
 वेद शास्त्र सुन पंडित कहाई । काल पुरुष सब जिव भर्माई ॥
 साधू मिलकर भक्ति कमाई । जातैं काल फांस नहि आई ॥
 काल शब्द ना होतौ भाई । तौ काहे को भक्ति कराई ॥
 कालके डर तपसी तप साधा । इन्द्री पांच काल डरबांधा ॥
 कालहिके डर योग जो करई । कालहि डरतैं दान जो भरई ॥
 कालहि डर भाखै सत जाना । कालहि डर छोडै अभिमाना ॥
 सत्यहि बचन काल डर कहहीं । कालहि डरसे झूठ परिहरहीं ॥
 ऐसा डर है कालहि केरा । धर्मदास तुम करहु न बेरा ॥

साखी-ऐसा डर है कालका, सुनहु हो धर्मदास ।

एक नाम कहँ जानकै, निडर रहौ सुखवास ॥

चौपाई ।

कालहि डर दुनियां सब बूडी । काहु न देखी कालकी मूडी ॥
 तुम धर्मदास निडर हो रहहु । नाहिन काल झूठ परिहरहु ॥

छंद-यह भांति पंथ चलाव जगमें हंस लोक पठाइबौ ।

ज्ञान गम्य लखायकै फिर शब्दसार लखाइबौ ॥

हृदय जेहि पर होय गुरुकी रहन गहन समावही ।

काल कष्ट निवारकै सोई पुरुषलोक सिधावही ॥

सोरठा-आप सरीखा जान, ता कहँ शब्द लखाइयो ।

धर्मदास लेव मान, यही सिखावन पुरुषको ॥

इति श्रीग्रंथ अमरमूल धर्मराय बाद कालको वर्णन ।

पंचम विश्राम ।

धर्मदास बचन-चौपाई ।

धर्मदास आनंद समाना । विगसेउ कमल उदे जनु भाना ॥
 बहुत भांतिसों बिन्ती कीन्हा । मनबच कर्म चरण चित दीन्हा ॥
 पदरज लीन्हीं तृपा मिटाई । छूछी सीप स्वाति जिमि पाई ॥
 रंकहि निधी मिलगई जैसे । अहिमणि मिलै मगन भए ऐसे ॥
 चरणामृत बह विधिसों लीन्हा । गुरु चरणनकों में आधीना ॥
 अब मैं भेद कीन्ह परवेशा । प्रथम न मानऊँ तुम उपदेशा ॥
 अब प्रतीति मोरे मन आई । निश्चय बचन मान तुव साँई ॥
 अबही जाय लोक मैं देखा । ज्ञान गम्यसों पाएउ लेखा ॥
 भक्ति मुक्ति दोनों हम जाना । दया तुम्हारे परी पहिचाना ॥
 जेपर दया तुम्हारी होई । ऐसे पदको पहुँचै सोई ॥
 हम जानकै मान उपदेशा । बिन सतगुरु नहिं मिटत अँदेशा ॥
 तुम सतगुरु और सब शिष्या । यही ज्ञान परगट हम देख्या ॥
 सतगुरु आप और सब वंशा । सत्य पुरुषको तुम निज अंशा ॥
 तुम्हारे बचन लोक पहिचाना । तुम्हारी दया परी अब जाना ॥
 यह मन बूझ शब्द है लोका । ज्ञान भयो मिट गयो सब शोका ॥
 लोक अलोक एक कर जाना । तुम्हारे बचन सत्य हम जाना ॥
 अब मोरे जिव परचय आई । बिन जानै बूडी दुनियाई ॥
 नहिं बूडौ नाहीं उतराना । यह पाया हम केवल ज्ञाना ॥
 एक बचन मैं बूझा साँई । बिन्ती करौं चरण चित लाई ॥

तुम सतगुरु मोहि दिय उपदेशा । में हंसनसों कहौ सँदेशा ॥
यह तौ बात कही नहिं जाई । जब पावे तब ज्ञान समाई ॥
जब तुम दया करौ हिय माहीं । तबही पाऊं नामकी छाहीं ॥
कहिये वचन मोर मन भावै । जातैं हंसा लोक सिधावै ॥

सद्गुरु वचन चौपाई ।

तब साहिब अस कहिये लीन्हा । सब कहँ देहु शब्दका चीन्हा ॥
जो नहिं पाव शब्द सहदानी । तो कस करहु लोक पहिचानी ॥
सब कहँ ज्ञान गम्य कर देहु । शब्द लखाय आपन कर लेहु ॥
प्रथमहि देहु पान परवाना । ता पीछे फिर ज्ञान लखाना ॥
समय जान सब कहौ विचारी । यही भांति सब जिव निर्वारी ॥
साधन की सेवा चित लावै । सो जिव भवसागर नहिं आवै ॥
गुरुकी दया मान सिर लीन्हा । भावसहित पूजा तिन कीन्हा ॥
इतनौ भेद एक नहिं जानी । सो कैसे पुन शिष्य बखानी ॥
ज्ञानवंत कहँ यह उपदेशा । मूरखसों जिन करहु सँदेशा ॥
सार शब्द जाके घट होई । तिहि हंसा सम और न कोई ॥
धर्मदास तुम कहँ नहिं भारा । सबके तारन है करतारा ॥
यह उपदेश कहहु बहु भाँती । माने सोई हंस की जाती ॥
जो नहिं मानै कहा तुम्हारा । सो चल जैहै यम के द्वारा ॥
यमके हाथ परै सो आई । बहता जाय थाह नहिं पाई ॥

साखी—कहै कबीर धर्मदाससों, दीजो पान प्रवान ।

यही हंस जो पावहीं, पहुँचे पद निर्वान ॥

धर्मदास वचन—चौपाई ।

हे स्वामी तुम्हरी बलिहारी । अब चौकाको कहौ विचारी ॥
कवन शब्दसों आरति साजी । कवन शब्द सतगुरुकी पाँजी ॥

कवन शब्दसों नरियर मोरा । कवन शब्दसों तिनका तोरा ॥
 कवन शब्द सों चौका करई । कवन शब्दसों दीपक बरई ॥
 कवनै शब्द पान लिख दीन्हा । कवन शब्द प्रसाद जो लीन्हा ॥
 कवन शब्द मिष्टान्न चढावा । कवन शब्दसों छत्र तनावा ॥
 कवन शब्द पनवारौ साजा । धोती कवनै शब्द विराजा ॥
 कवन शब्दसों चंदन दीजे । कवन शब्दसों पुहुप चढीजे ॥
 दल प्रसाद किहिं शब्द बनाई । यही भेद गुरु कहु समुझाई ॥

सद्गुरु वचन ।

यहै भेद अब तोहिं बताऊँ । चौका साज सकल समझाऊँ ॥
 प्रथमहि तौ चौका अनुसारा । सोई शब्द में कहौं पसारा ॥
 सेत सिंहासन चौका चारी । कंचन थार आरती वारी ॥
 तहाँ धनी जीव बैठे आई । लिखनी लिख बहु भाँति बनाई ॥
 धर्मदाम उठ बिन्ती कीन्हा । चन्द्र सूर्य दोइ साखी दीन्हा ॥
 शब्द माहिं बहु भाँति समावा । कदली पत्र जो आन धरावा ॥
 अमर शब्द उच्चार कराया । अमर प्रवान अमर भइ काया ॥
 अमर प्रवान अमरकर जाना । अमर शब्द बिरले पहिचाना ॥
 अमर शब्दका पावै भेदा । कहैं कबीर प्रवान अच्छेदा ॥
 बीज एक धरती कहैं दीन्हा । पान सुपारी नरियर कीन्हा ॥
 सो प्रसाद संतन कहैं आई । सत्त सुकृत के लोक सिधाई ॥
 तीन लोक सों भिन्न पसारा । बाहर भीतर शब्द पसारा ॥
 दूजी दुर्मत चित सो मेंटो । एकहि चीन्ह कबीरहि भेंटो ॥
 यही शब्द मिष्टान्न चढावा । कदली पत्र जो आन धरावा ॥
 सवा सेर मिष्टान्न मैगावहु । सत्य पुरुषकहैं आन चढावहु ॥
 सत्य सुकृत कहैं आन चढाई । दीन भाव कर बिन्ती लाई ॥

धर्मदास वचन ।

अर्ज एक अब सुनो हमारी । तुम गुरु लीन्हा जीव उबारी ॥
शोध देख हम सकल शरीरू । पीरा मेटौ बाप कबीरू ॥
केते लाख चूक जो परई । किहि कारण नरिअर अनुसरई ॥

सद्गुरु वचन ।

धर्मदास तुम सुनो ये वाणी । ताकर भेद कहौ परवानी ॥
सवा लाख चूक जो परई । तिहिकारण नरिअर अनुसरई ॥
बहुत भांति सों तत्त्व लगावै । मृत्युलोकमें बहुरि न आवै ॥

सुमिरन नरिअर तिलकको ।

मृत्यु लोक यम को स्थाना । खैंच कबीर ने मारा बाना ॥
बान मार जक्त यश लीन्हा । तिलक काढ धर्मन कहँ दीन्हा ॥

सारखी-पाक नरिअर मोरकै, हंस उतारो पार ।

कंचनकपूरमिलगए, साहिब जीवको करौ उधार ॥

खिरचा अचवन लैकै, यकटक सुमरौ ध्यान ।

कहैं कबीर धर्मदाससों, सोहं शब्द प्रधान ॥

सम्पूर्ण ।

चौपाई ।

तबही दीपक आन प्रकाशा । मानो सत्य लोक कियो बासा ॥
अब्र शब्द का पावै भेदा । कहे कबीर तब जोत अछेदा ॥
तबहि पानका लिखनी नीका । अब्र शब्दका पावे टीका ॥
सत्यका अंक तहाँ लिख दीन्हा । मंत्र उचार एक तब कीन्हा ॥
सुख सागर मोरौ स्थाना । तहँवा सेत चढाए पाना ॥
सेत पानका अम्मर काया । सीपमांहि जिमि स्वातिसमाया ॥
भर्मत पवन बिहरत संसारा । निर्मल पवन हंस रखवारा ॥
तबही तिनका बेग तुरावा । जन्म जन्म के पाप बहावा ॥

सुम्रन तिनका तुरावेका ।

असन बसन मन कल्पना, देखो सर्वहि भूत ।

कहे कबीर सतगुरु मिले, मिथ्याके मुख थूँक ॥

सम्पूर्ण ।

चौपाई ।

तबै प्रवाना दीजौ जानी । मुक्ति होय हंसा पहिचानी ॥

दहिने छोड धर्म स्थाना । बांये दुर्गदानी को थाना ॥

आगे चित्र गुपित्र कौ भारा । नाम सुनायकै हंस उवारा ॥

टूटे घाट अठासी क्रोरी । हंसा उतरै नामकी डोरी ॥

साखी-कितरे वृक्ष कितरे पक्षी, कहां विलमेऊ आय ।

कहैं कबीर जो गुरु मिलै, हंस देहि पहुँचाय ॥

चौपाई ।

दे परवाना हंस बचावा । ज्ञान परम पद घटहि समावा ॥

घट की परिचय कोई पाया । जाते जीत चले यमराया ॥

तब स्नान का शब्द सुनावा । विना शब्द पानी नहिं पावा ॥

विना शब्द जो पीवे पानी । मानहु मदिरा रुधिर समानी ॥

सुम्रन जल पीवनेका ।

आगम सरोवर विमल जल, हंसा पिये अघाय ।

काया कंचन मन मगन, कर्म भर्म मिटजाय ॥

सुम्रन स्नानका ।

सत्य सुकृत के नीर मँगावा । धनीके बालक स्नान करावा ॥

कर स्नान पुनि शीश नवावा । साहिबके चरणन चित लावा ॥

कहै कबीर सुनौ धर्मदासा । आदि अंत इक ज्योतिनिवासा ॥

साखी-आदि अंत एक ज्योति है, अमरनाम स्थीर ।

चौदह भुवन नौ खंडमें, एकहि सत्य कबीर ॥

सम्पूर्ण ।

सुम्रन प्रसाद मालूम करनेका ।

निर्भय पदका चौका दीन्हा । शील संतोष लै मज्जन कीन्हा ॥
 प्रेम प्रतीत परम उजियारा । सत्य सुकृत है जेवनहारा ॥
 सत्य सुकृत की फिरी दुहाई । जल भयो पाक संतन सुखदाई ॥
 सब सन्तन मिल कियो प्रसादा । जेवै कतीर जिवावै धर्मदासा ॥
 सब संतन प्रसाद जब लीन्हा । मुक्ति अभयपद कहँतब चीन्हा ॥

साखी—कहे कबीर धर्मदाससों, आरतिकों परमान ।

ये बिधि सेवक जो करै, पावै पद निर्वान ॥

धर्मदास वचन—चौपाई ।

धर्मदास विनती कर जोरी । स्वामी सुनिये विनती मोरी ॥
 कवन वस्तु आरति महुँ धरई । कवन शब्द लै सेवा करई ॥
 सो सब मोहिं कहौ समुझाई । आरति विधि में करौ बनाई ॥

सद्गुरु वचन ।

प्रथमहि मंदिर सेत सम्हारा । सुर्त निर्त भक्त चितधारा ॥
 कञ्चन केर थार बनवाओ । तामें मोती आन धराओ ॥
 मुक्ता तो अन बेधे होई । ऐसी विधि प्रकार है सोई ॥
 झारी एक कञ्चनकी होई । ता महुँ दल प्रसाद कर सोई ॥
 नरियर इकसत एक प्रवाना । सवा तीन मन लै मिष्टाना ॥
 पाटम्बर धोती तहुँ चहिये । दीपमालिका बहुतक लहिये ॥
 नई वेद तहुँ आन धराई । कञ्चन और कपूर मँगाई ॥
 जरी केर तहां छत्र तनावा । पान सहस्र द्वादश बनवावा ॥
 लौंग सुपारी लायची लीजै । मेवा अष्ट भांति धर दीजै ॥
 ता पीछे प्रसाद सहिदानी । सुखपूजा साधन करजानी ॥
 आरति फल तबही जिव पावै । सवा सेर महाकंद मँगावै ॥
 सोना केर कलस धरवाई । तहां प्रवाना लिखे बनाई ॥

परमाना बालक कहँ दीजै । हंस रूप ता कहँ कर लीजै ॥
 ऐसी आरती धरे धर्मदास । सोई पावै लोक निवास ॥
 मनमें बहु आनन्द बडाई । आरत फल सोई पुन पाई ॥
 अपने स्वार्थ आरती करई । भवसागर तैं कैसे तरई ॥

धर्मदास वचन ।

धर्मदास बिनती अनुसार । तुम सतगुरु मोरे करतारा ॥
 ऐसी विधि आरति नहिं करई । सो जिव किम भवसागर तरई ॥
 कलि में जीव दरिद्री होई । द्रव्य विना किमि भक्ति सँजोई ॥
 जिहि विधि होय हंस मुक्ताऊ । सो मोहे स्वामी भेद बताऊ ॥

सद्गुरु वचन ।

तब साहिब अस कहिवे लीन्हा । यही मती हम तुम कहँ दीन्हा ॥
 एतिक विधि जापै नहिं होई । सहज भाव आरति करै सोई ॥
 सवा सेर मिष्ठान मँगावै । नरियर इक तहँ आन चढावै ॥
 सवा सौ पान कहै परवाना । लौंग लायची एही बँधाना ॥
 धोती एक आन तहँ धरई । सतगुरु केर निछावर करई ॥
 साधन सों बहु प्रेम बढावै । सत्य रूप होय ज्ञान सुनावै ॥
 ज्ञान गम्य कर शब्द बुझावै । सन्तन सों बहु प्रेम बढावै ॥
 पांचो पद ताही महँ लावै । साधन की सेवा मन लावै ॥
 ऐसी विधि सों आरति करै । सो प्राणी भवसागर तरै ॥

धर्मदास वचन ।

जो इतना नहिं करै कडिहारा । ताको मोसो कहौ बिचारा ॥
 हे साहिब मोहे कहौ पुकारी । बन्दी छोड जाउँ बलिहारी ॥

सद्गुरु वचन ।

जो इतना नाहीं बन आवै । सो कडिहार पार किमि पावै ॥
 बारह आरति जो नहिं करै । दो आरति सेवाचित धरै ॥

फागुन औ भादों परवाना । दो आरति नहिं छोड सुजाना ॥
साधन को परवाना देई । वर्ष रोज के कर्म नसाई ॥

साखी-पान प्रवाना पावही, सतगुरु महिमा जान ।

तबही हंसा सत्य है, और झूठ सब ज्ञान ॥

चौपाई ।

धर्मदास में तुमहिं सुनाऊं । आरति भेद ज्ञान समझाऊं ॥
अक्षर सार आरती सोई । बिन अक्षर सब गए बिगोई ॥
अक्षर भेद जान परसंगा । ताके काल रहै नहिं संगी ॥
आरति बहुत भांति सो करई । अक्षर भेद हिये नहिं धरई ॥

साखी-अक्षर भेद जाने नहीं, बातें कहै बनाय ।

ताको कहौ न मानिये, आपन जीव नशाय ॥

चौपाई ।

आरति भक्ति औ अक्षर सारा । और सकल सब झूठ पसारा ॥
जा कहँ अक्षर परिचय होई । आरति फल पावत है सोई ॥
मूल शब्द घट मांहि विराजै । शून्य शिखर अक्षर धुन साजै ॥
ताकी महिमा तुलै न कोई । ऐसा साधू विरला होई ॥
सो कडिहार जो अक्षर जाना । और गुरु सब झूठ बखाना ॥
गुरु सोई जो अक्षर जाना । बिन अक्षर मूरखसम जाना ॥
कडिहार वही जीवन कहँ तारै । अक्षर बिन जिव नरकहि डारै ॥
जो गुरु दगा शिष्य कहँ देता । नरक परै गुरु शिष्य समेता ॥
अक्षर बिन गुरु आरति करई । धर्मराय के फन्दा परई ॥
इतना भेद न जानत प्राणी । पेटके कारण ज्ञान बखानी ॥
जैसे ठगिया करै ठगिहारी । जैसे जानहु सो कडिहारी ॥
अक्षर की परिचय नहिं पावे । आपहि आप जो गुरु कहावे ॥

छन्द—कडिहार सोई सांच है, जिन शब्द सों परिचय करी ।
 सूत नित्त समेट कै सोई, नाम निह अक्षर धरी ॥
 रहन शूरे ज्ञान पूरे पंथ परमारथ लहौ ।
 दुष्ट मित्र समान यकचित, दुतिय भाव न चितगहौ ॥

सोरठा—सद्गुरु सिन्धु कबीर, उन पटतर अब को लहै ॥
 सुनियो धर्मनि धीर, सरिता सब कडिहार हैं ॥
 इति श्रीग्रंथ अमर मूल चौका बंधन वर्णन ।

पष्ट विश्राम ।

धर्मदास वचन—चौपाई ।

यह सुन धर्मदास हर्षाना । जिमि पंकज विकसे लखि भाना ॥
 हे सद्गुरु मोपर दया कीन्हा । जन्म स्वार्थ अब मैंने चीन्हा ॥
 धर्मदास कहै कर जोरी । स्वामी सुनिये विन्ती मोरी ॥
 यक संशय मोरे घट मांही । कौनउ विधि सों छूटत नाही ॥
 मृतलोक में पाखंड धर्मी । कैसे जीव होय निह भर्मी ॥
 तुम सद्गुरु निजज्ञान सुनाया । शिष्य पाखण्ड तजै नहिं माया ॥
 सो मोहे सतगुरु भेद बताओ । तासों जीव होय मुक्ताओ ॥

सद्गुरु वचन ।

धर्मदास तुम सुनो विचारी । पाखंडी गति सब निर्वारी ॥
 सत्य शब्द घट माहिं समावै । ता लग सब पाखण्ड कहावै ॥
 तुम जानतहौ शब्द प्रवाना । विना ज्ञान नहिं शब्द समाना ॥
 पाखण्ड जिव मुक्ति न होई । कितो उपाय करै पुनि सोई ॥
 पाखण्ड जाके हृदये होई । सो हंसा कर मुक्ति बिगोई ॥
 जप तप ज्ञान बहुत कर जाना । नेम धर्म बहुतक लिपटाना ॥
 इतना कष्ट कीन्ह अधिकाई । तौ पाखण्ड भेट नहिं जाई ॥

ज्ञान शब्द घट मांहि समाना । सो पावेगा पद निर्वाना ॥
माथे तिलक गले जयमाला । हिय पाखंड न मिले गुपाला ॥

साखी—कहैं कबीर बिचारके, सुनियो हो धर्मदास ।

सत्य शब्द जिहिं घट बसे, तहैं पाखंड विनास ॥

चौपाई ।

धर्मदास तुम सत्त कै जानहु । पाखंड भर्म हृदय मत आनहु ॥
जाको मन पाखंड सों राता । सोई नरक कहैं निश्चय जाता ॥
पाखंड हिये भक्ति ना होई । सत्य वचन मानो घट सोई ॥
दान देय औ पूजा करई । पाखंड धर्म जीव नहिं तरई ॥
योग यज्ञ तीरथ फिर आवे । पाखंडी जिव ठौर न पावे ॥
धर्मदास निश्चय सुन लीजे । सत्य शब्दमें वासा कीजे ॥

साखी—धर्मदास सुन लीजिये, सत्य शब्द उपदेश ।

बिना सत्य पहुँचे नहीं, सत्य लोक निज देश ॥

चौपाई ।

सत्य शब्द सत पुरुषहि जानौ । नाम बिना सब झूठ बखानौ ॥
नाम छोड नहिं औरहि जानौ । निर्गुण सर्गुण एकहि मानौ ॥
निर्गुण सर्गुणतें नाम नियास । जो चीन्हे सो हंस हमारा ॥
जहँ देखे तहँ शब्द स्वरूपा । बोलन हारको अचरण रूपा ॥
अचरज बात कहनकी नाहीं । बिन सतगुरु नहिं पावै थाहीं ॥

साखी—निह अक्षर निज पावही, मिटि है सकल अँदेश ।

निह अक्षर जाने बिना, घटही में परदेश ॥

धर्मदास वचन—चौपाई ।

धर्मदास बिनती अनुसार । अर्ज एक सुनिये करतारा ॥
सकल भेद गुरु मोहि बतावा । बिना ज्ञान भेद नहिं पावा ॥

ज्ञान रूप कहे सों कहिये । ज्ञान भेद कैसे के लहिये ॥
बिन सत गुरुको भेद बतावे । किहिविधि मनकी संशय जावे ॥

सद्गुरु वचन ।

ज्ञान शब्द सत गुरुसों पावे । बिन सतगुरु को भेद बतावे ॥
ज्ञान नाम है बीज स्वरूपा । बिना ज्ञान सो यह को रूपा ॥
ज्ञान बीज प्रथम अनुसारा । ज्ञान बीजतैं सकल पसारा ॥
ज्ञान बीज सों द्वीप निर्माया । अमी अंकूर ज्ञान उपजाया ॥
प्रथमहि तहाँ पुरुष को मूला । जिहिं तैं भए सकल स्थूला ॥
सोलह सुत जब भए उतपानी । ज्ञान बीज तैं सबकी खानी ॥
तुम्ह सहज धर्मबल जोरा । धर्मराय को माथा तोरा ॥
सुर्तनाम ज्ञानी अनुसारा । धर्मलोक तैं दीन्ह निकारा ॥
विषम सरोवर आन विराजा । अति अहँकार महाबल गाजा ॥
भांति भांतिके बाजन बाजा । रंग छत्तीसों होत अवाजा ॥
पांच तत्त्व गुण तीन बनाया । तातैं सकल सृष्टि निर्माया ॥
जात पांच यहि तैं उतपानी । ब्राह्मण क्षत्री शूद्र बखानी ॥
ब्रह्मासों जब जाति पसारा । चार वर्ण कीन्हें निरधारा ॥
मुखसों ब्राह्मण कीन्ह उचारा । भुज सों क्षत्री कीन्ह पसारा ॥
जंघसों वैश्य करी उतपानी । पांव सों शूद्र कीन्ह मद्दिगानी ॥
चार वर्ण को सकल पसारा । वर्तमान बतैं संसारा ॥
ब्राह्मण धर्म ब्रह्मको जो जाना । तातैं ब्राह्मण वेद बखाना ॥
ब्राह्मण जानौ शूद्र समाना । बिन जाने बूडे अभिमाना ॥
गायत्री जप हैं दिनराती । समझत नहीं ज्ञानकी पाँती ॥
गायत्री जप कर अभिमाना । हमसम और कोइ नहिं आना ॥
संध्या तर्पण औ षट कर्मा । वेद विचार साध शुचि धर्मा ॥
सुमति बिचारकै ज्ञान बखानै । धर्म विधान कथा बहु आनै ॥

पिण्डा पार तर्पन कहि दीन्हा । आपनमन अहंकार बड कीन्हा ॥
 पित्र भक्ति कीन्ही ज्योनारा । मन में कीन्ह बहुत अहंकारा ॥
 हम तौ पित्र भक्ति लवलाई । हम सम भक्त और नहिं भाई ॥
 हम सम नाहिं कोइ कुलीना । पित्र भक्ति बहुतक लवलीना ॥
 जेवहि ब्राह्मण पुण्य बड होई । कुटुम समान और नहिं कोई ॥
 वेद शास्त्र पढ ज्ञान जो जाना । भाषा ज्ञान सुने नहिं काना ॥
 साध संत जो द्वारे आई । तिनकहें देखे बहुत रिसआई ॥
 इन तो नष्ट कर्म बढ कीन्हा । मूंड मुडायकै टोपी दीन्हा ॥
 जाति पांतिकी लज्जा त्यागी । निस दिन फिरहिं ब्रह्म अनुरागी ॥
 तातें इनहिं न मानत कोई । पेटके कारण जाति बिगोई ॥
 जाति समान न और बिचारा । जातें ब्राह्मण जाति सम्हारा ॥
 यह सब मत ब्राह्मणने कीन्हा । जातें सृष्टि कर्म में दीन्हा ॥
 जिन प्रभु रचा सकल संसारा । तिनहिं बिसार बूड अहंकारा ॥
 प्रभुही छोड अन्तचित बासी । जन्म अनेक फिरहिं चौरासी ॥
 ब्राह्मण प्रभुकी भक्ति न जानी । ब्रह्म रूप नाहिन पहिचानी ॥
 मुनिवर स्मृति पढकै राता । ज्ञानहीन मिथ्या मद माता ॥
 ब्राह्मण तो ऐसहि चलि गएऊ । ब्रह्म धर्म काहू नहिं गहेऊ ॥

साखी-ब्रह्म भेद जानैं नहीं, बहुत करै अभिमान ।

ताते ब्राह्मण बूडहीं, कहें कबीर बखान ॥

चौपाई ।

क्षत्री धर्म सुनौ व्यवहारा । गौ ब्राह्मण त्रियको रखवारा ॥
 गाय मार दैत्यन सब खाई । क्षत्री धर्म सबै नस जाई ॥
 ब्राह्मण से भरवावत पानी । क्षत्री धर्म कहाँ रहू जानी ॥
 आनकी त्रिया आन घर जाई । द्रव्य आन को आन लुटाई ॥
 न्यायहु पै ठाढा नहिं होई । क्षत्री धर्म सहज ही खोई ॥

धर्म न चलै न गुरुकहँ मानै । अपने मनमहँ ज्ञान बखानै ॥
 जो गुरु मिलै तो ज्ञान लखावै । बहुरि न योनी संकट आवै ॥
 एक नाम को करै नवेरा । चारों वर्ण तासु के चेरा ॥
 एक धर्म कहँ बिनवै प्रानी । चार वर्ण साधन कहँजानी ॥
 साधन की सेवा नहिं करई । बहु अभिमान हिये में धरई ॥

साखी-भक्त रूप चीन्हत नहीं, चाल चलै कछु आन ।

क्षत्री गए अभिमानमें, कहँ कबीर निदान ॥

चोपाई ।

तातें परसराम औतारा । उन क्षत्रिनको कीन्ह संहारा ॥
 बारन बूढन के भए काला । क्षत्री मार विप्र प्रतिपाला ॥
 मूर्ख लोग सब करें बखाना । सत्यभक्ति परचित नहिं आना ॥
 कोटिन हत्या क्षत्री करई । तिनकी लोग बडाई धरई ॥
 क्षत्री धर्म को होय निवाहा । तौ नहिं छोडै कालको चाहा ॥
 धर्मराय तिन करै संहारा । जारे वार करै जर छारा ॥
 क्षत्री सोइ क्षमा जिहिं आवै । परजा दुखी आप दुख पावै ॥
 वैश्य धर्म अब वेद बखानै । विष्णु जान मन और न कानै ॥
 भूखा देख दया चित धरई । वैश्य धर्म व्यवहारहिं करई ॥
 तीरथ व्रत करै विधि नाना । प्रभुकी भक्ति नहीं चित आना ॥
 जैनी जीव करे प्रतिपाला । जैननामगत आहि रिशाला ॥
 पानी छान पियें दिन राती । नहिं ज्योनार करें निगिगानी ॥
 हरिप्रतीत मन माहिं न आनै । सूखे काठ सों मन चितठानै ॥
 भक्ति रूप न्यारो धर्मदासू । जासौं मिटै कालकी फांसू ॥
 जीव श्वास ना धर्म चलावै । नाटक चेटक ज्ञान बतावै ॥
 लिंग पुजावै घर घर जाई । कामिनि सों बहु प्रेम बढाई ॥
 कामिनि काम न चितसौं छूटे । यहि विधि घर यम निशिदिन लूटे ॥

जप तप माया कीन्ह खुआरा । ऐसे जीव अटक यमद्वारा ॥
 पारसनाथ पुजा मन लाई । बहुत भौंति सों पूजहि जाई ॥
 पारसनाथ परम गुरु ज्ञानी । ताकी नहिं पावैं सहदानी ॥
 ताके कर्म काट सब जाई । सतगुरु चरण रहै लवलाई ॥
 जब सतगुरु की दाया होई । अक्षर भेद पाय नहिं सोई ॥
 ब्राह्मण क्षत्री वैश्य बखाना । अक्षर भेद नहीं पहिचाना ॥

साखी-अक्षर भेद जानैं नहीं, करें बहुत अभिमान ।

वैश्य सबै वे नष्ट हैं, सत्य वचन परमान ॥

चौपाई ।

चार वर्णमें शूद्र अधीना । सेवा कर सबसों लवलीना ॥
 इनहि भक्ति सतगुरु की पाई । चार वर्णमहैं सो अधिकाई ॥
 ब्राह्मण की सेवा अनुसारै । काम क्रोध औ लोभ निवारै ॥
 क्षत्री सों बहु करै मिताई । नित नये प्रेमसहित अधिकाई ॥
 वैश्य धर्मही विधि कर पूजे । सत्यधर्म दाया चित कीजे ॥
 ऐसे शूद्रहि ब्रह्म बखाना । ब्रह्मलोक में सेवा माना ॥
 कलियुग शूद्र धर्म अधिकारा । तीन धर्म को भयो संहारा ॥
 धन्य शूद्र जो सेवा करई । गुरुके चरण हृदय महैं धरई ॥

साखी-यह तौ करनी शूद्रकी, सुनियो हो धर्मदास ।

सतगुरु चरण जो सेवई, सत्य लोकमहैं वास ॥

चौपाई ।

धर्मदास तुम शूद्र औतारा । जाते सतगुरु भक्ति चित धारा ॥
 तुम्हरे पीछे ब्राह्मण तरि हैं । तुम्हरे पीछे क्षत्रि उबरि हैं ॥
 चारों वर्ण मुक्ति घर जैहैं । जो तुम्हरो चरणोदक लैहैं ॥
 कबहुँ न भव जल आवैं तेई । मुक्ति पदारथ पावैं जेई ॥

साखी-जो प्राणी जन्मत भये, शूद्र सकल संसार ।

कहँ कबीर जब बाचि हैं, करि हैं ब्रह्म विचार ॥

चौपाई ।

यह तुम सुनहु वर्णका लेखा । मुक्ति भेद तुम करहु विवेका ॥

तुम्हरे शिष्य शब्द जो पावैं । बिना शब्द नहिं शिष्य कहावैं ॥

शब्द भेद जो पावैं अंगा । ताको काल नहीं परसंगा ॥

बिन अक्षर सबकहँ दुख होई । येही विधि सब जाय बिगोई ॥

और सकल है यमको द्वारा । तिनको धर्मराय जो मारा ॥

धर्मदास वचन ।

धर्मदास विनती कर जोरी । स्वामी सुनियो बिन्ती मोरी ॥

तुम्ही दयाल हो अन्तर्यामी । करहु कृपा अब मोपर स्वामी ॥

तुम्हरे वचन मुक्ति हम पाई । हमरे वंश कस मुक्ति न पाई ॥

सद्गुरु वचन ।

तब कबीर जो कहिबे लीन्हा । अब मैं कहौं वंशकर चीन्हा ॥

जिहिं विधि मुक्ति होय रे भाई । सब अब तुम्हैं कहौं समुझाई ॥

प्रथमहि वंश ज्ञान मन लावै । सहज समाधि परमपद पावै ॥

निमोही हो जगसों रहई । मोह प्रीति मन हर्ष न करई ॥

जो मानै तौ अति भल जाना । नहिं मानैं तौ समता ज्ञाना ॥

जो कोई नाम कबीरहि लेही । तिनसों कछु न अंतर देही ॥

आपा छोड नाम लव लावै । देह छोड सतलोक सिधावै ॥

जो मनमें करि है अहंकारा । निश्चय बूडै सब परिवारा ॥

सत्य भक्ति सत्यहि मन लावै । आप तरै जीवन मुक्तावै ॥

जो कोई माया आन चढाई । साधन कहँ सब देय खवाई ॥

सत्य वचन सबही सों भाषै । सत्यनाम मनमें अभिलाषै ॥

कबहुँ न क्रोध करै मन मांही । जो बोलै सो नामकी छांही ॥

ज्ञान विचारै शब्द सुनावै । सब जीवन कहँ लोक पठावै ॥
 तुम्हरे वंश जो आगे होई । तिनके गर्व बहुत मन सोई ॥
 गर्वके किये भक्ति नहिं होई । बिना भक्ति सब जाँय बिगोई ॥
 सात पिढी लग गर्व गुमाना । आठै पिढी भक्ति परवाना ॥
 पावै सार शब्द परवाना । तब पुनि पावै लोक ठिकाना ॥
 सात बाल जो तुम्हरे होई । तब लग रहै अभिमान समोई ॥
 शब्द पेल कै करहि धिंगाई । पंथहि मेंट अपंथ चलाई ॥
 आठे वंश तबै औतारा । तिनसों होय पन्थ उजियारा ॥
 वे गुरु आइ करै संसारा । तीन लोक महुँ बास पसारा ॥
 स्वर्ग माहि नामी जिहि आहीं । धर्मराय तिनकी सुधि पाहीं ॥
 तब अपना वह दूत पठाहीं । बहुतक छल करहै तिनपाहीं ॥
 सार शब्द सों निकट न जाई । भागे दूत रहै पछताई ॥
 वंश तुम्हार केर यह लेखा । बिना नाम नहिं होय विवेका ॥
 जाकहँ अमर नाम मिल गयऊ । सो प्राणी निहसंशय भयऊ ॥
 अमरशब्द जो घट परकाशा । तहँवा है हमरौ निज बासा ॥

छन्द—जो अमरनाम न पाय है, सो अंध है पछताय हो ।

जन्म जन्मत कष्ट बहुतक, जरा मरन समाय हो ॥

हंस वंशन हंस पंगत, कही सब दरसायके ।

यह रहन रहै सो लोक पहुँचै, कहें कबीर समझायके ॥

सोरठा—दीन्ह जक्त को राज, धर्मन तुम्हरे वंश कहँ ।

करहि जीव कौ काज, सत्यनाम समझायके ॥

इति श्री ग्रंथ अमरमूल चारवर्णवर्णन वंशमहिमावर्णन ।

सप्तमविश्राम ।

धर्मदास वचन चौपाई ।

धर्मदास कहे कर जोरी । स्वामी सुनिये बिन्ती मोरी ॥
 जो तुम कही सोइ परवाना । गुरुके वचन सत्य हम जाना ॥
 हम जानी पुरुष रु गुरु माहीं । तुमहिं पुरुष कुछ अन्तर नाही ॥
 हमरे दिल यह पारख आई । तुम्हरी दया हंस मुक्ताई ॥
 हमरे बालक तुम्हरे पाछे । तुम्हरी दया नाम मिल आछे ॥

सद्गुरु वचन ।

तब साहिब अस कहि समुझाई । वंश तुम्हार मुक्ति घर जाई ॥
 जो कोइ बालक होय तुम्हारा । तिनसों भक्ति होय उजियारा ॥
 पंथ माहिं जे बालक आवैं । ते तुम वंशन माथ नवावैं ॥
 तिनसों भक्ति मर्यादा होई । सार शब्द चलि है निज सोई ॥
 नाँद केरि बालक जो होई । तिनकी मुक्ति नाम सों सोई ॥
 नाँदके बालक शब्दहि जाना । भवसागर तज लोक पयाना ॥
 बिन्दके बाल रहें अरुझाई । मान गुमान और प्रभुताई ॥
 वे तौ कहैं हम सम नहिं आना । सतगुरु वचन प्रतीत न ज्ञाना ॥
 सत्य शब्द जिहि बालक जानी । सोई पावे लोक सहिदानी ॥
 जेहो बालक प्रवाना पावा । तिन कहैं जानहु वंश स्वभावा ॥

साखी—हमरे बालक नामके, और सकल सब झूट ।

सत्य शब्द कहैं जानही, काल गहे नहिं खूंट ॥

चौपाई ।

धर्मदास सुन शब्द पसारा । बिना शब्द नहिं उतरहि पारा ॥
 बिना शब्द तुम मुक्ति न पाओ । केतो ज्ञान गम्य फैलाओ ॥
 वंश हमार शब्द निज जाना । बिना शब्द नहिं वंशहि माना ॥
 धर्मदास निर्मोह हिय गेहू । वंशकी चिन्ता छांड तुम देहू ॥
 तुम तौ भयऊ शब्द समाना । यही वचन तुम चित नहिं आना ॥

धर्मदास वचन ।

तुमहि कही अस बस्तु गुसाई । मैं बूझों यह संशय जाई ॥
तुम्हरी दया आज जो पाऊं । तौ सब बालक लोक पठाऊं ॥

सद्गुरु वचन ।

तब साहिब अस कहि समुझाई । बिना नाम नहिं लोक पठाई ॥
नाँद बिन्दु के बालक दोई । बिना नाम कोइ मुक्ति न होई ॥
के तौ पढ़ै गुणै औ गावे । बिना नाम भव भटका खावे ॥
हमरे माया मोह न होई । सब संसार सत्य कर सोई ॥
धर्मदास तुम बडे हौ ज्ञानी । यह संशय कस मन महँ आनी ॥
गुरु को भार सबन कर होई । तुम मनमें पछताव न कोई ॥
तारन तरन सत्य हम सोई । विन सतगुरु बूडा सब कोई ॥
सतगुरु तौ सब सृष्टि उबारा । तुम बालक अब कौन है भारा ॥
तुम जिन चिन्ता मनमहँ करहु । सद्गुरु नाम हृदय महँ धरहु ॥
एक काल आवे जब भाई । सबै सृष्टि यह लोक सिधाई ॥
जहँ लग जीव जन्तु सब कहिये । तहँ लग सब सद्गुरुमहँ लहिये ॥
सबै भार सद्गुरुके कांधे । पार लगावहिं यम नहिं बांधे ॥
यमका अमल छूट जब जाई । सद्गुरु शरण जीव जब आई ॥

सारखी—कहे कबीर बिचारकै, सुनियो हो धर्मदास ।

अमरमूल जो जान है, ताकौ सब परकाश ॥

धर्मदास वचन—चौपाई ।

धर्मदास बिनवैं कर जोरी । स्वामी सुनिय बिनती मोरी ॥
तुम्हरे कहे जगत तर जाई । कौन मतासों लोक सिधाई ॥
ज्ञान दिव्य जो घट नहिं होई । सोइ कवन विधि लोक समोई ॥
तब मैं जानौं ज्ञान तुम्हारा । सकल सृष्टि कौ होय उबारा ॥

सद्गुरु वचन ।

कहै कबीर तबै समुझाई । यह संशय तुम कवन कराई ॥
 तुम तौ आपन हंस उबारो । जीवन शोच कहा निर्धारो ॥
 सतगुरु लीन्ह जगतको भारा । तेई करि हैं सृष्टि उबारा ॥
 जापर गुरु चितवैं चितलाई । ताकर हंस विगोय न जाई ॥
 जब यह सृष्टि कीन्ह परकाशा । हंस अनंत सतलोक निवासा ॥
 अबहूँ अनंत लोक कहँ जाई । सत्यलोक महुँ जाय समाई ॥
 तुमको संशय कछु न भाई । आपन हंस करौ मुक्ताई ॥

साखी-सतगुरु तारनहार हैं, कहैं कबीर बिचार ।

तुम क्या शंका करत हो, आपन करौ उबार ॥

धर्मदास वचन-चौपाई ।

धर्मदास बिनवै कर जोरी । बिनति साहिब सुनिये मोरी ॥
 तुम शिर आहि जक्तको भारा । सब जीवनको करौ उबारा ॥
 हमको नहिं गुरुवाई दीजे । आपन भार आप शिर लीजे ॥

सद्गुरु वचन ।

तव सतगुरु अस वचन उचारा । तुम कहँ दीन्ह जक्तको भारा ॥
 तुम्हरे मुहर चलै संसारा । अक्षर अशर करै पुकारा ॥
 तुम्हरे कहे खोज जो करई । अक्षर पाय हंस निस्तरई ॥
 जो नहिं मानै कहा तुम्हारा । सो चल जैहैं यमके द्वारा ॥
 धर्मदास बिनती अनुसारी । हे सतगुरु तुम्हरी बलिहारी ॥
 तुम तो सत्य लोकके वासी । किहिं कारण आये अविनासी ॥
 मृत्यु लोकमें कवनै काजा । धर्मराय बड पापी राजा ॥
 तहँवां कवन काज पगु धारा । सो मोहिं स्वामी कहौ बिचारा ॥
 तुम साहब सत पुरुष कहाए । मृत्यु लोक में काहे आए ॥

सद्गुरु वचन ।

तब साहिब बोले बिहसाई । अब यह ज्ञानसुनौ मन लाई ॥
जब नहिं हते शून्य बे शून्या । तब नहिं हते पाप औ पुन्या ॥
तब नहिं धरती गगन अकाशा । मेरु मन्दर नाहीं कैलाशा ॥
तब नहिं चन्द सूर्य औ तारा । तब नहिं शेष सकल विस्तारा ॥
तब नहिं इन्द्र कुबेर समोई । वायु वरुण तहँवां नहिं कोई ॥
सात वार पन्द्रह तिथि नाहीं । आदि अंत नहिं कालकी छाहीं ॥
तब नहिं ब्रह्मा विष्णु महेशा । आदि भवानी गौरि गणेशा ॥
आदि पुरुष तब हते अकेला । उनके संग हता नहिं चेला ॥
आप पुरुष अस कीन्हौ साजा । शब्दहि माहि लोक उपराजा ॥
प्रथमहि शब्द सुर्त अनुसार । तेहि पीछे सब द्वीप सर्वाँरा ॥
तेहि पीछे पुन मूल बनावा । तेहि पीछे सोहं उपजावा ॥
ता पीछे अचिन्त जो कीन्हा । ते पीछे अक्षर रच लीन्हा ॥
ता पीछे कूर्महि निर्मयऊ । ताहि भार पृथ्वीको दयऊ ॥
तब जल रंग सूत इस भाखा । सप्त पाताल के नीचे राखा ॥
जिहितैं भयो जलको विस्तारा । सकल सृष्टि कौ भयो पसारा ॥
तिहि तैं तेज तत्त्व अनुसार । जेहि गुण तैं काल अवतारा ॥
पांच तत्त्वतैं सब निर्मावा । तीनों गुण तिहि माहिं समावा ॥
तीनों गुण स्वरूपके धामा । ब्रह्मा विष्णु महेश्वर नामा ॥
रज गुण तैं ब्रह्मा उतपानी । सतगुण भाव विष्णु कर जानी ॥
तमगुण शिव संहार पसारा । इनते भयो सकल संसारा ॥
तेजकै गुणहि काल उतपानी । तासों भये जीव दुखदानी ॥
तातैं पुरुष दया चित आई । हंसन कारण मोहिं पठाई ॥
यातैं मृत्यु लोकही आए । धर्मदास तुम दर्शन पाए ॥
तुम जीवनकै बंद छुड़ाये । सुमरन सत्य नाम समुझाये ॥

तुम्हरे हाथ सृष्टि तरजाई । सार शब्द हम तुम्हें लखाई ॥
 या कारण संसारहि आये । नाम पान सों हंस बचाये ॥
 जो तुम कहौ कहा अस कीन्हा । आज्ञा मान पुरुषकी लीना ॥
 पुरुष शब्द तैं जीव उबारा । तुम कहँ कवन बात कर भारा ॥
 यह चरित्र कछु कहा न जाई । अचरज खेल पुरुष निर्माई ॥
 आपहि पुरुष आपही काला । आपहि काल कीन्ह बे हाला ॥
 आपहि सकल सृष्टि निर्माई । आपहि न्याव करै सब काई ॥
 आपहि कर्म कुकर्म बखानै । आपहि आपन आप पहिचानै ॥
 यही ज्ञान धर्मन सुन लेहू । इत उत चित जप मत देहू ॥
 जिमि बालक मन्दिरहि सवाँरा । आपहि भेंट आपहि हारा ॥
 माता सौं तब रुदन कराई । मंदिर अब मम देहु बनाई ॥
 एही खेल बिधाता कीन्हा । यही मता कोइ बिरले चीन्हा ॥
 धर्मदास तुम सत्यहि मानौ । हमरौ बचन झूठ जिन जानौ ॥
 यह चरित्र मैं तुम्हें सुनावा । लीला पुरुष केर समझावा ॥
 आपहि पुरुष आपही नारी । आपहि काम विषय अधिकारी ॥
 आपहि सृष्टि कीन्ह उतपानी । आपहि कर्म धर्म लपटानी ॥
 कर्म भर्म आपहि उपजाई । आपहि स्तुति कीन्ह बडाई ॥
 आपहि निंदक आपहि ज्ञानी । आपहि धर्म अधर्म बखानी ॥
 आपहि अपनी स्तुति करई । आपहि मूर्ख चतुरता धरई ॥
 आप कुलीन आप अकुलीना । आप धनाढ्य आपही दीना ॥
 सतकुल आपहि असत बनाया । आपहि सत्य असत्य समाया ॥
 यह तौ भेद पाय है सोई । सतगुरु मिले जाहि कहिं होई ॥
 येही भेद धर्मनि लेव जानी । निर्मल जल गंगा सम मानी ॥
 यहै ज्ञान मैं तुम्हें सुनावा । बिरला जन बूझै यह भावा ॥
 यही मता गुप्त तुम राखहु । हमरी बात अंत जिन भाखहु ॥

जो कोई शब्दका खोजी होई । ता कहँ भेद बतावहु सोई ॥
 इक मन इक चित जाकर होई । ता कह ज्ञान न भाषहु सोई ॥
 दुतिया मन जाही कर भाई । तासों राखौ भेद छिपाई ॥
 जो गुरु सों कोई अन्तर राखा । धर्मराय मुगदर चाखा ॥
 साखी-गुरुकी महिमा अगम है, अकह कही नहिं जाय ।

गुरु पद रज हियमें धरै, सत्यलोक कहँ जाय ॥

चौपाई ।

सत्यलोक सतगुरुकौ बासा । ब्रह्म कीन्ह गुरु मांहि निबासा ॥
 गुरुके चरण रहै लवलाई । ताकी महिमा वर्णि न जाई ॥
 गुरु औ शब्द एक कर जाना । ताकी त्रास धर्म भय माना ॥
 जो कोई यह भेद न जानै । धर्मराय ता कहँ सन्मानै ॥
 आतम ज्ञान जाहि कहँ होई । ताकौं काल न चापै कोई ॥
 ऐसी धरण धरौ धर्मदास । भवसागर तैं होउ उदास ॥
 सकल पसारा शून्य समाना । शून्यहि माहीं शब्द बखाना ॥
 शून्य शिखरकी डोरी पावै । देह छोड सतलोक सिधावै ॥
 धर्मदास वचन ।

धर्मदास कह सुनौ गुसाई । आतम ज्ञान गम्य नहिं पाई ॥
 आतम ज्ञान मोहिं समुझाऊ । जासों सकल हंस मुक्ताऊ ॥
 सद्गुरु वचन ।

धर्मदास यह मता अपारा । ताकर जो मैं कहौं विचारा ॥
 तब साहिब दया चितलाई । आतम ज्ञान तुम्हें समुझाई ॥
 गम्य अगम्य ज्ञान जब पावै । आतम ज्ञान तब घटहि समावै ॥
 सत्य शब्द जब रहै समाई । सबही ठाम लोक है भाई ॥
 शत्रु मित्र एकहि कर जाना । सांच झूठ एकहि कर माना ॥
 सांच झूठ दोनों मिट गयऊ । दिव्य ज्ञान जाके घट भयऊ ॥

आपहि गुरु आपही शिष्या । आपहि पाय आपही दिख्या ॥
 आपहि आप लगावे लेखा । आपहि व्यापे अगम अलेखा ॥
 आपहि स्वर्ग नर्क भर्मावै । आप ज्ञानि हिय मुक्ति समावै ॥
 आपहि दाता आपहि भुक्ता । आपहि अकृत आपही कृत्ता ॥
 आपहि जन्म मरण उपजावै । आप मृत्यु है लोग रुवावै ॥
 आपहि जिन्दा जग उपजावा । आपहि आशा तृष्णा लावा ॥
 आपहि आप धर्म है काला । दोहू दीन ज्ञान तब चाला ॥
 आपहि कुल अरु आपहिजाती । आपहि मूरत आपही पाती ॥
 आपहि डाल आपही बेला । आपहि गुरु आपही चेला ॥

साखी—कहैं कबीर विचारके, आपहि सकल पसार ।

आप आप महँ रम रहै, आपहि सत्य आधार ॥

धर्मदास वचन चौपाई ।

धर्मदास कहैं सुनौ गुसाई । यहै भेद तुम मोहि सुनाई ॥
 ऐसा शब्द जो मोहि सुनावा । जन्म मरणकी त्रास मिटावा ॥
 एक वचन मैं बूझौं साई । सोइ शब्द तुम मोहि सुनाई ॥
 तुम जो कहेऊ ब्रह्म समाना । जीवरूप किमि होय अज्ञाना ॥
 कबहुँ अज्ञान रूप है बतैं । ज्ञानी होय ज्ञान पुनि कतैं ॥
 कबहुँ कहै यह ब्रह्म समाना । कहुँ राजा कहुँ भिक्षुक जाना ॥
 कबहुँ जीव स्वभाव उपजावै । कबहुँ ब्रह्म हो सबहि बुझावै ॥
 ब्रह्म एक काहै अस कीन्हाँ । साहिब मोहि बतावहु चीन्हाँ ॥
 कहैं कबीर सुनौ धर्मदास । यह सब भेद कहौं तुम पास ॥

सद्गुरु वचन ।

ब्रह्म रूप है बीज समाना । पारब्रह्म अंकूर प्रमाना ॥
 ताही माहिं पत्र दोय कीन्हा । एक शक्ति एकै सब चीन्हा ॥
 डार पात तब प्रकृतिसमाना । मूल वृक्ष ईश्वर सम जाना ॥

ता महुँ पांच डार निर्मावा । आकाशादि तेज उपजावा ॥
 प्रथमहि वायु रूप जो कीन्हा । वायुके मध्य तेज धर दीन्हा ॥
 तेजके मध्य नीर निर्माया । जैसे बीजसे वृक्ष जमाया ॥
 ऐसे उत्पति सबकी होई । धोखामें सब गए बिगोई ॥
 सतगुरु जा कहँ दाया कीन्हा । सकल भेद ते पावैं चीन्हा ॥
 तत्त्व मांहि निहतत्त्व लखावै । हृद मांहि अनहद कहँ पावै ॥
 अनर्थ मेंटके अर्थ बतावै । लघु दीर्घ पूरा समझावै ॥
 पूर्णज्ञान जाही घट होई । सतगुरु भेदको पावै सोई ॥
 ब्रह्मज्ञान बिन मुक्ति न होई । कैसे सन्त कहावै सोई ॥
 जाकी महिमा कही न जाई । ज्ञान गम्य तैं शब्दहि पाई ॥
 शब्द सार निर्मोलक पावैं । सो हंसा सतलोक सिधावैं ॥

साखी-सो पहुँचे सतलोक कहँ, काल मर्म नहि जान ।

ते हंसा अवरन भये, सत्यपुरुषके ध्यान ॥

धर्मदास वचन-चौपाई ।

धर्मदास कहैं सुनौ गुसाई । आप अपन पर सब बिसराई ॥
 सतगुरु जापै दाया कीन्हाँ । तिन पायो निज बिजको चीन्हा ॥
 सूक्ष्म रूप दरश जन आवै । लघुता विलै दीर्घ पद पावै ॥
 लघुता मति प्रभु आवत कैसे । समझ परै घट कहिये तैसे ॥

सद्गुरु वचन ।

कहँ कबीर सुन सुकृती बानी । यह घट समझ लेहु सहिदानी ॥
 सूक्ष्म रूप शब्द कर आही । सतगुरु मिलहिं लखावहिं ताही ॥
 सुर्त निर्त जब शब्द समाना । अहंकार मन केर बिलाना ॥
 दीन भाव गति तबही आई । सब घट आतम एक समाई ॥
 पूरण ज्ञान जाहि घट होई । तब यह भेद पाय है सोई ॥
 ज्ञानी महिमा एही जाना । सब घट आतम एक समाना ॥
 सो हंसा सतलोक सिधावे । दुबिधा भाव सबै बिसरावे ॥

छन्द-भाव दूसर तजहु धर्मनि, एक ब्रह्म विचारकै ।
 इमि जीव जगमें देखिये, जलबिन्दु लहर सम्हारकै ॥
 परमात्मासों आत्मा, जिमि भानु किरण प्रकाश हो ।
 उलट कर जब आप चीन्हे, भाव दूसर नाश हो ॥
 सोरठा-जिमि तिल मध्ये तेल, कंचन औ आभूषणा ।
 जिव ब्रह्म इमि मेल, पुहुप मध्य जिमि बासना ॥
 इति श्री अमर मूल आत्मज्ञान वर्णन ।

अष्टम विश्राम ।

धर्मदास वचन-चौपाई ।

अर्ज एक अब करौ गुसाँई । कृपासिन्धु मोकहँ समझाई ॥
 जीव सीव कर भेद न जाना । कैसे ज्ञान करौ परवाना ॥
 जीव सीव कर भेद बताओ । यहै ज्ञान मोकहँ समझाओ ॥

सद्गुरु वचन ।

धर्मदास सुनियो चितलाई । जीव सीव में कहौ बुझाई ॥
 पांच तत्त्व गुण तीन जो साजा । ताते सृष्टि कीन्ह उपराजा ॥
 शुद्ध सतोगुण सीव कहावै । रज तम मिश्रित जीव बनावै ॥
 सत रज तम तीनों सो न्यारा । पारब्रह्म सबही तैं पारा ॥
 पारब्रह्म अस कीन्ह समाजा । त्रिगुण रूप कर सृष्टि उपराजा ॥
 उपजा सृष्टि गुणकी खानी । ताते जीव बुद्धि कर जानी ॥
 रज तम सत्त्व एक है भाई । बिना ज्ञान भूली दुनियाँई ॥
 तत्त्व ज्ञान जाके घट होई । जीव सीव कहँ जानै सोई ॥
 बिना तत्त्व जाने नहिं कोई । केतौ यत्न करे नर लोई ॥
 भर्म भर्म भूला संसारा । आप न चीन्हाँ भूल गँवारा ॥
 सब अभिमान छूट जब जाई । ब्रह्म भेद कहँ पावै भाई ॥

ब्रह्म ज्ञान जाके घट होई । परम पुरुष कहैं जाने सोई ॥
 सत्य शब्दका मर्म जिन जाना । और सकल जग झूठ बखाना ॥
 सबमें ब्रह्म रहौ भर पूरी । बाहर भीतर तत्त्व हजूरी ॥
 दूजा काहु न देखै कोई । सत्य शब्द जाके घट होई ॥
 जाकों सद्गुरु दाया कीन्हा । सो पावेगा शब्दका चीन्हा ॥
 अगम भेद लख पावै जोई । सतगुरु सांच और सब छोई ॥
 सतगुरु महिमा ही लख पाई । सो सतलोक पहुँचि है जाई ॥
 यहै ज्ञान धर्मन सुन लेहू । सब कहैं सत्य शब्द कह देहू ॥
 मिथ्या ज्ञान करहु उपदेशा । तो नहिं पावहु लोक सन्देशा ॥
 जो तुम काज आपना चाहू । तौ जीवन कहैं सत्य लखाहू ॥
 जो कोइ शब्द सुनै तुम पासा । सोई करि है लोक निवासा ॥
 जाके सत्य ज्ञान घट भयऊ । करै प्रीति निज घरकहैं गयऊ ॥
 अनमोलिक हीरा निज जाना । ताका मोल नहीं परमाना ॥
 सोहं सम निर्मोलक भयऊ । साहिब सेवक इक मिल गयऊ ॥
 कञ्चन और अभूषण जाई । ऐसे ब्रह्म जीव मिलजाई ॥
 दूजा भाव न एका रहिया । संशय मेट अमर पद लहिया ॥
 अमर मूल अमरपद भई काया । अमरशब्द जिन हंसन पाया ॥
 अमर शब्द सतगुरु सों पावै । विन सतगुरु सब मूल गँवावै ॥
 कहैं कबीर सुनौ धर्मदास । ऐसा भेद करौ परकास ॥
 यहै भेद संसार सुनावहुँ । सब जीवन कहैं लोक लेजावहुँ ॥
 तुम कहैं दीन्ह जक्त कडिहारी । तुम्हरी बांह उतर भवपारी ॥
 जा कहूँ तुम बकसो सहिदानी । सो कडिहार जक्त महैं जानी ॥
 जापर दाया तुमने कीना । सोई जीव मुक्ति कहैं चीना ॥
 मुक्ति भेद जब पावै प्राणी । सतगुरु ने दाया उतपानी ॥
 रजगुण तमगुण त्याग कराई । सतगुण धर्महिं परसैं भाई ॥
 सतगुण धर्म कर पावै भेदा । कहैं कबीर सोइ हंस अछेदा ॥

धर्मदास वचन ।

धर्मदास विन्ती अनुसारी । हे सतगुरु मैं तुम बलिहारी ॥
सतगुण धर्म मोहि समुझाई । जिहि तैं मन संशय चलिजाई ॥

सद्गुरु वचन ।

धर्मदास चित केहु विचारी । सतगुरु धर्म कहैं निरवारी ॥
प्रथमहि भोजन सब परिहरही । रजगुण भोजन मध्यम करही ॥
उत्तम तंडुल आन भरावै । बार छानकै तहाँ मँगावै ॥
उत्तम चोका दीन्ह बहुभांती । शब्द बोल मल कीन्हौ स्वांती ॥
दुग्ध खांड घृत असन करावा । तासौं कहिये सतगुण भावा ॥
जितनी क्षुधा होय घट प्रानी । लेव अहार सोई अनुमानी ॥
शब्द बोले परसाद चढावै । भाजी बनै तो अति मनभावै ॥
भाजी नहीं तौ जल भर आना । गुरु कहैं देय अधिक सुखमाना ॥
ऊगुर लेय बहुत मन मानी । यह विधि कहिये साखिक ज्ञानी ॥
तीसर भाग अभ्यागत देई । तब प्रसाद पवित्र करलेई ॥
अभ्यागत नहिं आपहू पावै । राजस धर्म नर्क कह जावै ॥
सतगुरु धर्म छूट जब जाई । राजस तामस आन समाई ॥
सतगुण धर्म करौ प्रतिपाला । निश्चय पावे लोक रसाला ॥
चैतन्य पुरुषमें जाय समाई । दुविधा भाव सबै मिटजाई ॥
रजगुण तमगुण सतगुण कहिये । सब मिट जाय ज्ञान जो पइये ॥
सब कहैं भर्म भूत करडारा । झूठी बात मेट औटारा ॥
सबै ब्रह्म ना दुसरे कोई । दूजा भर्म मिट गये सोई ॥
वेद शास्त्र सब कहै बखानी । वचन विलास कहैं सब ज्ञानी ॥
छऊ शास्त्र मिल झगरा कीन्हा । ब्रह्म रूप काहू नहिं चीन्हा ॥
चीन्है तौ जो दूसर होई । भर्म विवाद करें सब कोई ॥
एकै ब्रह्म अखंडित कहई । खंडित ज्ञानमहँ निसदिन रहई ॥

ताकी बात कहत परवाना । झूठ न छोडै मूर्ख अज्ञाना ॥
 मूर्ख किमि कर कहिये भाई । ब्रह्म सकलमें रहा समाई ॥
 आपहि मूर्ख आपहि ज्ञानी । आप कथा सब कहै बखानी ॥
 आपहि ऊँच नीच दिखलावै । ज्ञानी होय जगत समुझावै ॥
 आपहि बूझ आपही नाहीं । आप आपमहँ सकल समाहीं ॥
 आपहि सुप्रिन करे बनाई । जप तप ज्ञान आप ठहराई ॥
 स्वर्ग नर्क सब आपहि बासा । बाजीगर ह्वै करे तमासा ॥
 आप तमासा आप भुलाया । आपहि है सब मांहि समाया ॥
 आप आप को चीन्है नाहीं । आपहि ज्ञानी आप समाहीं ॥

साखी-आप आपको चीन्हकै, आप ब्रह्म हो जाय ।

आप न चीन्है आप कहँ, परौ भर्म महँ जाय ॥

चौपाई ।

अकह कहन कही नहिं जाई । आप अकथ हो कथा सुनाई ॥
 आपहि मनका रूप बनाया । दूजा होके जगत दिखाया ॥
 ऐसा भाव विधाता कीन्हा । तातै कोइ न पावै चीन्हा ॥

साखी-आप आपको चीन्हकै, सब संशय मिटजाय ।

कहैं कबीर निर्दोष भये, ब्रह्म स्वरूप समाय ॥

चौपाई ।

जबहि ब्रह्म रूप कहँ जाना । तब संसार झूठ कर माना ॥
 किहँ न देखे दूजा नाऊ । सब घट ब्रह्म जो रहा समाऊ ॥
 जाहि ज्ञान अनुभव परगासा । सकल कर्मको भयो तब नाशा ॥
 कर्म धर्म जो दोउ मिटाये । ना कहँ गये ना कहँ आये ॥
 जैसा रहा तैसा है सोई । बीचको भर्म मेंट सब खोई ॥
 कर्म भर्म की छूटी आशा । एकै नाम करहु विश्वासा ॥
 नाम छोडकै और न जाने । तीरथव्रत कछु मन नहिं आने ॥

(२५६)

अमरमूल ।

आपहि तीर्थ आपही देवा । आपहि आप लगावै सेवा ॥
आपहि मूरत पिंड बैधावै । आप जन्त्रि है जन्तर लावै ॥
आपहि महिमा सबकी कीन्हा । आपहि निन्दक मिथ्या चीन्हा ॥

साखी-आप सकल जग व्यापिया, आपहि अलख अपार ।

आपहि जग उपजावही, आपहि दस औतार ॥

चौपाई ।

आपहि देव दैत्य संहारा । आप युद्ध कीन्ह असरारा ॥
आपहि महाभार्थ करवाया । पांडौको शुभ ज्ञान सुनाया ॥
आपहि कौरव पांडव भयऊ । आपहि द्रोह सबनसौं कियऊ ॥
आपहि है अहंकार स्वरूपा । आपहि रय्यत आपहि भूपा ॥
आपहि चाकर हो सेवा लावा । आप पंडित हो वेद पढावा ॥
आपहि भला बुरा अनुसारा । आप अमीर न्याव निर्बारा ॥
आप ले आवै आपहि खाई । आप अतीत आप सिक्काई ॥
आपहि न्याव आपही बादा । आपहि तीता आपहि स्वादा ॥
आपहि खाटा मीठा भयऊ । आपहि सर्वस्वादकर लयऊ ॥
आपहि लघु दीरघ हो देखा । आपहि दूर निकट हो लेखा ॥
आपहि सकलौ वेद पुराना । आपहि पोथी आप बखाना ॥
आपहि छऊ शास्त्र बनावा । वाद विवाद कर ज्ञान सुनावा ॥
आपहि जीत आपही हारा । आपहि तरे आपही तारा ॥

साखी-ऐसी महिमा ब्रह्म की, कहत कही नहीं जाय ।

जो कोइ यह मति समझ है, तेही ब्रह्म समाय ॥

चौपाई ।

ब्रह्म अखंड खंड नहीं होई । खंडित ब्रह्म ध्यावे सब कोई ॥
आप कहैं है ब्रह्म अखंडा । आपहि खंडित कह सब खंडा ॥
आपहि मनुष्य रूप कहावै । आपहि दूजा भाव स्वभावै ॥

आप अवचन वचन नहिं आवै । आप वचन कहि सब समुझावै ॥
आप अरूप रूप नहिं कोई । आपहि सकल स्वरूप है सोई ॥
आपहि निर्गुण रूप जो कहिये । ज्ञान गम्यते यह मत लहिये ॥
आपहि ज्ञान मुक्तिके दाता । आपहि दाता आपहि मुक्ता ॥
कहैं कबीर सुनो धर्मदासा । ऐसा ज्ञान घट करौ प्रकाशा ॥

धर्मदास वचन ।

धर्मदास बिनती अनुसारी । हे साहिब मैं तुम बलिहारी ॥
यह मत मोकह अगम लखावा । हृदय कमल अब आन जुडावा ॥
एक बात मैं बूझहुँ साई । सोइ कहौ जिहि संशय जाई ॥
तुम सब ब्रह्म कहो समुझावा । मोरे मन निश्चय यह आवा ॥
औरन सों कह कहौ गुसाई । यह तौ ज्ञान कहौ नहिं जाई ॥
मैं जाना सब तुम्हरी दाया । और जीव नहिं शब्द समाया ॥
ताकर मोह कहौ उपदेशा । सो हंसन सों कहौ सन्देशा ॥

सद्गुरु वचन ।

धर्मदास तुम ज्ञान सुनाउँ । जो मानैं सो सन्त स्वभाऊ ॥
जो नहिं माना शब्द तुम्हारा । फिर पछतै है बारम्बारा ॥
धर्मदास तुम आपन सोधौ । तब तुम सकल सृष्टि पर बोधौ ॥
जो तुम्हरो मन थिर नहिं होई । तबलग पंथ चलैं नहिं कोई ॥

साखी—जब मन कहैं परबोध हू, सकल भर्म मिटजाय ।

एक नाम कहैं सेवहू, आवागमन मिटाय ॥

चौपाई ।

धर्मदास मैं कहौ नवेरा । जासों हंस मुक्त होय तेरा ॥
मुक्ति होय सत नामहि पावै । बहुरि न योनी संकट आवै ॥

धर्मदास वचन ।

धर्मदास कहैं सुनो गुसाईं । मुक्ति वस्तु सो मोहि सुनाई ॥
 तुम तो मुक्ति भर्म कर डारा । तुमते पायँउ ज्ञान भंडारा ॥
 मुक्ति करौ जो बन्धा होई । यह तौ हंस निबन्धक सोई ॥
 नहिं कोइ बन्धा नहिं कोइ छूटा । संशयके बस सब जग लूटा ॥
 तुम्हरी दाया सो हम जाना । मुक्ति अमुक्ति दोउ भर्माना ॥

सद्गुरु वचन ।

अब तुम्हरे जिव निश्चय आई । हम जाना तुम सिखहौ भाई ॥
 निज मंत्रहि जानहु धर्मदासा । अब कह बूझहु सत्त विलासा ॥
 जो कहिये सो वचन विलासा । यह तौ साखी पद परकासा ॥
 ग्रंथ कहेउ सब जगत प्रबोधा । जो बूझे सो पावै सोधा ॥
 जो बूझे ग्रंथनकी वानी । तब पावै गम निज सहिदानी ॥
 जब पावै शब्दहि कर लेखा । तब जानहु जैसे सब धोखा ॥
 धोखा योग यज्ञ तप कीन्हा । धोखा दान पुण्य सब लीन्हा ॥
 धोखा कर्म करे संसारा । धोखा कोटिन ज्ञान पसारा ॥
 धोखा पुरान सकल जहांना । धोखा शास्त्र वेद मत ठाना ॥
 धोखा साखी पद है भाई । धोखा कह सब ज्ञान सुनाई ॥
 धोखा प्रथम सांच कर माना । समझे धोखा सबै नसाना ॥
 जस निर्गुण तस सर्गुण माना । निर्गुण सर्गुण एक समाना ॥
 अगुण सगुण दोनों मिट गयऊ । आदिब्रह्म सौ परिचय भयऊ ॥
 धर्मदास यह मति सुनि लेहू । धोखा ज्ञान चित्त मत देहू ॥
 प्रथमहि भक्त रूपकर ज्ञाना । ता पीछे फिर तत्त्व समाना ॥
 जबही तत्त्व समाना भाई । तबही जीव लोक कहँ जाई ॥
 जबही सत्त्व हदै महुँ आवै । धोखा रूप सबै मिट जावै ॥
 जब तुम अपना तत्त्वहि जानौ । गुरु औ शिष्य दोउ पहिचानौ ॥

तुमही शिष्य गुरु हौ सोई । तुम गुरुही शिष्य सब कोई ॥
गुरु अरु शिष्य एककर जाना । दूजा भाव सो सबै बिलाना ॥
दूजा भाव वसत है जाके । नहीं शिष्य नाहीं गुरु ताके ॥

साखी-गुरु शिष्यकी महिमा, कहैं कबीर बिचार ।

अमरमूल जो जान हौ, उतरौ भौजल पार ॥

चौपाई ।

तुम कहैं शब्द दीन्ह टकसारा । सो हंसन सों कहौ पुकारा ॥
शब्द सार का सुम्रन करिहै । सहजै सत्यलोक निस्तरि है ॥
सुम्रन का बल ऐसा होई । कर्म काट सब पलमहँ खोई ॥
जाके कर्म काट सब डारा । दिव्य ज्ञान सहजै उजियारा ॥
जा कहैं दिव्यज्ञान परकाशा । आपहिमें सब लोक निवासा ॥
लोक अलोक शब्द हैं भाई । जिन जाना तिन संशय जाई ॥
तत्त्व सार सुम्रन है भाई । जातें यमकी तपन बुझाई ॥
सुम्रन सों सब कर्म बिनाशा । सुम्रन सों दिव्यज्ञान प्रकाशा ॥
सुम्रन सों जैहै सतलोका । सुम्रन सों मिट है सब धोखा ॥
धर्मन सुम्रन देहु लखाई । जासों हंस सबै मुक्ताई ॥
गुरु धोबी सिख कपडा जानी । सुम्रन साबुन है परवानी ॥
बस्तर को तब मैल नसाई । तैसे ज्ञान हिये दसाई ॥
हृदे ज्ञान परकट जब होई । कर्म भर्म सब मिटगए दोई ॥
ज्ञान दीप जबही परकाशा । मोह तिमिरको भयो विनाशा ॥
सत्य पुरुष महँ जाय समाना । हंस पुरुष एकहि कर जाना ॥
दुतिया धोखा मिट तब गयऊ । एक रूप महँ एकसम एऊ ॥

धर्मदास वचन ।

धर्मदास बिनती अनुसारी । हे सतगुरु तुम्हरी बलिहारी ॥
एक बात अब बूझौ साई । जिहितें मनकी संशय जाई ॥

तुम तौ एक एक ठहरावा । एक महातम निज हम पावा ॥
 सत्य लोक का कहौ ठिकाना । केतक है विस्तार प्रमाना ॥
 केतक ऊँच नीच है भाई । सो मोहिं साहिब देहु बताई ॥
 केतक लंबा औ चकराई । सो सब लेखा कहु समुझाई ॥

सद्गुरु वचन ।

कहैं कबीर सुन सुकृत वानी । लोक कथा सब सुन बिलछानी ॥
 सब विस्तार तोहि समझाऊं । लेखा नहीं अलेख लखाऊं ॥
 कहिये तो लेखा हो भाई । अलेख बात मुख कही न जाई ॥
 जासौं कहिये अगम अपारा । ताको अंश न पावहिं पारा ॥
 जहँ लेखा तहँ परलय होई । अलेख अंत न पावहि कोई ॥
 एक समय ऐसो धर्मदासा । अपने चित्तको कहौ प्रकाशा ॥
 जब हम सत्यलोकमें रहिया । सो वृत्तान्त तुम्हें नहिं कहिया ॥
 सत्यलोक तैं आगे गयऊ । अचरज तहँवा देखत भयऊ ॥
 सो अचरज अब कहौ न जाई । तुम पूछौ तौ देहु बताई ॥
 ऐसी बात तहिं काहू जानी । ना काहू फिर पूछी आनी ॥
 धर्मदास प्राण हित मोरा । सुनहु ज्ञान यह दीप अंजोरा ॥
 केतक सत्यलोक में देखा । पुरुष प्रमाण न जात बिशेखा ॥
 ऐसा लोक यही व्यवहारा । ऐसहि रूप तहँ पुरुष सवाँरा ॥
 तहवां देख सुत सौं जाई । जिन मोहिं दीन्हा अगम लखाई ॥

साखी-अनंत कला तहँ देखऊ, सत्यलोक विस्तार ।

गिन्ती कहँ लग कीन्हिये, धर्मदास निर्धार ॥

चौपाई ।

गिन्ती कहाँ गिनौ निज धामा । को वर्णै सो पुरुष प्रवाणा ॥
 गिन्ती की मर्याद मिटाई । सार शब्द सब घटन समाई ।

साखी-जो कछु गिन्ती आवही, ताकौ है सब नाश ।

परै न गिन किम गीनिये, ऐसा शब्द प्रकाश ॥

चौपाई ।

बचन भेद कर कथा सुनावा । जिहितैं तुम्हरा मन पतिआवा ॥

ब्रह्म अखंड लेख किम जानी । खंडित कर किमिज्ञान बखानी ॥

तहँ लग सुनी सो माया जानी । जो देखा सो भर्म बखानी ॥

कहिये जो तौ दुतिया होई । दुतिया भर्म मेंट सब कोई ॥

एक ब्रह्म दुतिया नहिं कोई । कैसे दुतिया कहिये सोई ॥

साखी-नहिं उत्पत्ति नहीं प्रलय, नहिं आवे नहिं जाय ।

नहिं गिन्ती अनगिनत वह, बूझ कै शब्द समाय ॥

चौपाई ।

तब हम आगे दीन्ह पयाना । जहँ देखा तहँ हंस समाना ॥

अक्षर एक हम सब में देखा । भाव अनेक कहो का लेखा ॥

तब हम चले आप स्थाना । ऊर्ध्वलोक सो कीन्ह पयाना ॥

मारगमें अचरज एक देखा । ताकर अब मैं कहौ विवेका ॥

अद्भुत लीला वर्णि न जाई । कहे सुने सौ को पतिआई ॥

धर्मदास मैं तुमहिं सुनाऊँ । अकथ कथा कथ ज्ञान बुझाऊँ ॥

तहँवां देख कबीर कर लोका । असंख्य कबीर कर देखा थोका ॥

हम जाना की हमहि कबीरू । जहँ देखा तहँ कबीर शरीरू ॥

तब अपने चित कीन्ह बिचारा । एकहि रूप सकल विस्तारा ॥

दूजा और आय नहिं कोई । सब घट रमें कबीर समोई ॥

साखी-हम कबीर हम कर्ता, सकल सृष्टि धर्मदास ।

दूजा और न देखिये, सत्य शब्द परकास ॥

चौपाई ।

नहीं कबीर नहीं धर्मदासा । अक्षर एक सकल घट वासा ॥
 सत्य पुरुष वाही सों कहिये । आदि अंत अक्षर गह रहिये ॥
 अक्षर मूल और सब डारा । शाख रमैनी पत्र पसारा ॥
 कथा जो कहि २ ज्ञान सुनावा । यही भांति संसार बुझावा ॥
 जिन बूझा तिन धोखा माना । सकल बात मिथ्याकर जाना ॥

सारखी-कथैं कबीर यह मनहि है, मनका सकल पसार ।

चिन्ह यह मन कहैं, बूझिया, आवागवन निवार ॥

धर्मदास वचन-चौपाई ।

धर्मदास ुबिन्ती कर जोरी । बंदिछोर सुन बिन्ती मोरी ॥
 निश्चय ज्ञान मोहिं समुझायो । निश्चय सकल हम तुमसों आओ ॥
 सो यह बात अब बूझौं साई । सो साहिब मोहि देहु बताई ॥
 आवागवन कवन विधि होई । बन्दी छोर सुनावहु सोई ॥

श्रीसाहिब कबीर वचन ।

तब साहिब कहवे अनुसारा । कहौं विचार तासु व्यवहारा ॥
 पांच तत्त्वका पुतरा बनावा । तामहँ परगट आप समावा ॥
 त्रिगुण आतमा रूप बनाई । दुख सुख ताहि सबै भुगताई ॥
 इन महँ मन राजा कर दीन्हा । तातें जीव बुद्धि गह लीन्हा ॥
 आपन रूप आप नहिं चीन्हा । तातें आवागवन कर लीन्हा ॥
 ना कोई आया ना कोई गया । मनके मते जन्मते भया ॥
 मनही ज्ञानी मूरख कहिये । मनही ब्रह्मरूप यह लहिये ॥
 मनका है यह सकल पसारा । मनही पाप पुण्य विस्तारा ॥
 मनही मोह काम उपजावै । मनही आशा तृष्णा लावै ॥

मनही देहरा देव पसारा । मनही पूजे पूजन हारा ॥
मनही नार पुरुष कर जाना । मनहि पुत्र मन बाप बखाना ॥
मनही राजा रय्यत कहिये । मनहि दिवान मनहि मिलरहिये ॥

साखी—कहैं कबीर यह मनहि है, मनका सकल पसार ।

मन चीन्हे ते अमर हैं, गह निहअक्षर सार ॥

चौपाई ।

कहँलग कहिये मनकी बानी । झूठ पसारा मनहिं बखानी ॥
एक ब्रह्म सब घटहि समाई । नहिं कहूँ आवै नहिं कहूँ जाई ॥
मनकी वृत्ति यह कथा सुनावा । मनही वेद पुरान पढावा ॥
मनहि शास्त्र शुभ घडी बिचारी । उत्तम मध्यम कह निर्वारी ॥
मनही भाव वृत्त सब करई । मनके भाव योग तप धरई ॥
मनके भाव यज्ञ जो कीन्हा । मनके भाव दान जो दीन्हा ॥
मनके भाव प्रतिग्रह लेई । मनके भाव तुला सब देई ॥
यह सब है मन केर खुटाई । सतगुरु मिल सब कर्म छुटाई ॥

साखी—यह सब मनकी दौर है, मनका सकल पसार ।

ज्ञान चीन्ह मन अचल है, कहैं कबीर विचार ॥

चौपाई ।

मनकी कथा कहेउ प्रसंगा । अचरज बात कहेउ सब रंगा ॥
यह मत तौ हम तुमसों कहिया । ज्ञानी होय कोइ कोई लहिया ॥
इक अक्षरका यह है लेखा । ज्ञानी हों सोइ शब्द विवेका ॥
धर्मदास अक्षर दृढ जानौ । दूजा भाव न मनमहँ आनौ ॥
दूजा कहिये मनका भाऊ । ताते सत्य ज्ञान समझाऊ ॥
झूठा है मनका पैसारा । ताते चित महँ शब्द सँभारा ॥

साखी-कहै कबीर बिचारकै, सुनियो संत सुजान ।

हम तुम कहैं निज भाखऊ, सत्य शब्द परवान ॥

चौपाई ।

धर्मदास सुन सत्य सँदेशा । सत्य शब्द कहियो उपदेशा ॥
जाके पास होय दिव्य ज्ञाना । सोई पावहि पद निर्वाणा ॥

छंद-निर्वाण पद कहैं पाय है सोइ ज्ञानदीपक उर धरै ।

अज्ञान तमको नाश कर परकाश आत्मको करै ॥

जिमि भानु है आकाशमें प्रतिबिम्ब सब घट देखिये ।

ब्रह्म जीव है भेद इतनौ धर्मदास विवेकिये ।

सोरठा-सत्य नाम परवान, कहैं कबीर विचारकै ।

पहुंच लोक ठिकान, यहै भेद जो पावही ॥

इति श्रीअमरमूल, जीव सीव भेद लोकवर्णन ।

नवम विश्राम ।

धर्मदास वचन-चौपाई ।

धर्मदास उठ पांयन परई । सतगुरुसों विनती अनुसरई ॥
सत्यलोक मोहे बरन सुनावा । वचन तुम्हारे सब लखि पावा ॥
तुम तौ कहै अवचन है सोई । चरचा शब्द कहौ किमि होई ॥
जब तुम शब्दजो कहि समुझावा । वचन भावमें सब जो आवा ॥
अवचन बात वचन किमि कहिये । सो मोहे स्वामी भेद बतइये ॥
प्रथहि तौ तुम शब्द सुनावा । ता पीछे फिर ज्ञान दृढावा ॥
औ तुम कहे वचन अनलेखा । हम सेवक किमि करें विवेका ॥
एक वचन कहिये समुझाई । जिहिते चित्त अन्त नहिं जाई ॥

साहिब कबीर-वचन ।

तब कबीर अस कहिबे लीन्हा । ज्ञान भेद सकल कहि दीन्हा ॥
 धर्मदास मैं कहौ विचारी । जिहितैं निबहै सब संसारी ॥
 प्रथमहि शिष्य होय जो आई । ता कहँ पान देहु तुम भाई ॥
 जब देखहु तुम दृढता ज्ञाना । ता कहँ कहहु शब्द प्रवाना ॥
 शब्द मांहि जब निश्चय आवै । ता कहँ ज्ञान अगाध सुनावै ॥
 अनुभवका जब करै विचारा । सो तौ तीन लोकसों न्यारा ॥
 अनुभव ज्ञान प्रकट जब होई । आतमराम चीन्ह है सोई ॥
 शब्द निहशब्द आप कहलावा । आपहि बोल अबोल सुनावा ॥
 आपहि चुप जो बोलत रहिया । आप वचन अवचन जो कहिया ॥
 आप गुरू हैं शब्द सुनावै । आप शिष्य हैं सुत समावै ॥
 आपहि गुरू शिष्य जो होई । देखैं सुनै आपही सोई ॥

सारखी-देखै सुनै कहै सबै, आपहि रूप अपार ।

आप न चीन्है आप कहँ, भूला सब संसार ॥

चौपाई ।

यह मति हम तौ तुम कहँ दीन्हा । बिरला शिष्य कोइ पावै चीन्हा ॥
 धर्मदास तुम कहौ सन्देशा । जो जस जीव ताहि उपदेशा ॥
 बालक सम जाकर है ज्ञाना । तासों कहहु वचन प्रवाना ॥
 जा कहँ सूक्ष्म ज्ञान है भाई । ता कहँ सुम्रन देहु लखाई ॥
 ज्ञान गम्य जा कहँ पुनि होई । सार शब्द जा कहँ कहु सोई ॥
 जा कहँ दिव्य ज्ञान परवेशा । ता कहँ तत्त्व ज्ञान उपदेशा ॥
 अनुभव ज्ञान जाहि कहँ होई । दूसर कितहु न देखै सोई ॥
 उग्र ज्ञान जा कहँ परकाशा । आतमराम घटमाहिं निवासा ॥
 आतमरामकी परचय होई । आपहि आतमराम है सोई ॥

दूजा कितहुं न देखहि भाई । आप रहा सब ठांव समाई ॥
 यही भांति तुम जग समझावो । जो समझै तिहिं लोक पठावो ॥
 आत्मारामकी परिचय पाई । ताके निकट लोक है भाई ॥
 हम तौ एक लोक कहैं दीन्हा । अनंतलोक घट नाही चीन्हा ॥
 अनंतलोककी परिचय पावै । कहैं कबीर भव बहुरि न आवै ॥
 एक बचन तोहि देउँ लखाई । जिहि तैं तुम्हरो संशय जाई ॥
 एक समय सत लोकहिरहिया । सत्य पुरुष इक मोसन कहिया ॥
 हे कबीर हम तुम हैं एका । दूजा भाव मति राखहु ठेका ॥
 सुर्त स्वरूप तुम्हारा भाई । शब्द रूप हमही निर्माई ॥
 सुरत शब्द निकट इक भाखा । पर्दा अंतर कछू न राखा ॥
 ब्रह्म स्वरूप मोहिं कहैं जानौ । केवल ब्रह्म स्वरूप बखानौ ॥
 शब्द मोहिं यक सुर्त उतपानी । सो मोकों तुम निश्चय जानी ॥
 धर्मराय है मेरो अंशा । सो निज जानहु हमरो वंशा ॥
 आदि भवानी रूप बनावा । तामें निश्चय जाय समावा ॥
 तीनों गुण हैं मोर प्रकाशा । पांच तत्त्व महुँ मोर निवासा ॥
 जीवन रूप कियो हम भाई । आतम रूप जु हमहिं बनाई ॥
 पांच तत्त्व परकट हम कीन्हा । निश्चय वास तहां हम लीन्हा ॥
 आपहि सों सब खलक बनाई । आपहि आप जो रहे समाई ॥
 आपहि मनुष्य रूप अवतारा । रामकृष्ण परकट संसारा ॥
 यह सब रूप मोर है सांचा । इनहि चीन्ह सो यमसों बाचा ॥
 यम माहीं है मोरौ रूपा । सब पृथ्वीमहुँ मोर स्वरूपा ॥
 चौरासी लख योनी कीन्हा । आप वास योनीमहुँ लीन्हा ॥
 हम से दूसर नाहिन कोई । भर्म माँह सब रहे समोई ॥
 भर्म रूप हम सृष्टि बनाई । भर्म माँहि सब रहे समाई ॥
 सुर नर मुनिगण यक्ष अपारा । राची सृष्टि भर्म व्यवहारा ॥

इनते भर्म न छूटत भाई । ब्रह्मादिक से रहे भुलाई ॥
हे कबीर हम तुमसौ कही । निश्चय जान बात यह सही ॥
पुरुष बात यह मोहि सुनाई । सो मैं तुम कहैं आन जनाई ॥
धर्मदास निरखहु निज नैना । निश्चय जान परख मम वैना ॥

धर्मदास बचन ।

धर्मदास बिनवै कर जोरी । साहिब सुनहू बिनती मोरी ॥
यहै कथा तुम मोकहैं भाखी । दूसर और कवन है साखी ॥
सद्गुरु वचन ।

तब कबीर बोले अस वानी । सत्य बात यह सुनियो ज्ञानी ॥
यहै कथा हम त्रेता भाखी । मधुकर विप्र ताहिकर साखी ॥
साखी--यहै कथा त्रेता कही, मधुकर सों समुझाय ।

और न दूजा जानही, धर्मदास सुन भाय ॥

धर्मदास बचन-चौपाई ।

अमृत कथा मोहि समुझावा । हृदयकमल मम आन जुडावा ॥
सतगुरु सप्रथ की बलिजाऊँ । बहुर न भवसागर महँ आऊँ ॥
अस्तुति कवन एक मुख करऊँ । सतगुरु चरण हृदय महँ धरऊँ ॥
गद गद गिरा नयन भर दयऊ । अहो नाथ मोहि बड सुख भयऊ ॥
बहुत अनंद भयउ मन माहीं । अचरज सुख कछु कहीन जाहीं ॥
बचन सुधा रवि किरण समूहा । मम संशय यामिनि गत जूहा ॥
बहुत अनंद भयउ हियमाहीं । बह्व अनंद कहो नहिं जाहीं ॥
बिनती एक सुनो गुरु ज्ञानी । तुम महिमा किमि कहौं बखानी ॥
जो अब दाया करो गुसाईं । सोई शब्दमहँ रहौं समाई ॥

श्रीसाहिब कबीर वचन ।

कहै कबीर सुनौ धर्मदासू । हम तुम एक शब्दमहँ बासू ॥
दूसर भाव नहीं है आशा । सोई कबीर सोई धर्मदासा ॥

एक रूप धर्मदास कबीरा । लख चौरासी एक शरीरा ॥
 काया वीर नाम है धीरू । सब घट रहे समाय कबीरू ॥
 जो बोलत सो शब्दप्रवाना । शब्दहि रूप कबीर समाना ॥
 शब्दहि रूप कबीर कहाई । शब्द रूप है रहै समाई ॥
 निजही शब्द कबीर है सारा । जाका है निज सकल पसारा ॥
 एकै रूप शब्द पुन एका । एक भाव दुतिया नहि देखा ॥
 एकहि हम तुम एक शरीरा । एक शब्द है मति के धीरा ॥
 एकौ रूप एकै अनुहारी । एकहि पुरुष सकल बिस्तारी ॥

साखी-रंग रूप सब एक है, एकहि सकल पसारा ।

एक जान सोइ एक है, दूजा यह संमारा ॥

विनती एक करौ कर जोरी । सतगुरु संशय भेटहु मोरी ॥
 जो तुम ऐसा ज्ञान सुनावा । हृदयकमल मम आन जुडावा ॥
 इक संशय उपजी मन माहीं । चार कर्म देखे जिमि पाहीं ॥
 कर्म ज्ञान कहे सब कोई । कर्म करे सो निश्चय होई ॥
 कर्म सकल जीवन कहँ फाँसा । कर्म संग यह भयो विनाशा ॥
 कर्म करे तैसा फल पाई । ऊँच नीच योनिन भरमाई ॥
 काल पाय कोइ ज्ञान बिचारा । काल पाय सब कर्म सँचारा ॥
 ऐसी कथा सुनी सब ठाई । सोइ कहौ जिहि संशय जाई ॥
 तुम तो एक एक ठहरावा । दूसर भाव कवन उपजावा ॥
 सब घट ब्रह्म एक ठहराई । तौ किमि कष्ट सहै जिव आई ॥
 जो तुम कहौ सब ब्रह्म समाना । कोई जीव होहि अज्ञाना ॥
 जो कहिये सब एकहि आई । तौ कस ज्ञान कथा अब गाई ॥
 एक ब्रह्म तौ सबघट चीन्हा । गुरू शिष्य काहे कहँ कीन्हा ॥
 यह तो आप आप ठहराई । काहे कहँ तुम पंथ चलाई ॥

जो अस कहौ सकल प्रभु कीन्हा । ज्ञान गम्य कैसे कै चीन्हा ॥
काहे कहँ तुम कथा सुनाई । काहे कहँ अब ज्ञान बताई ॥
काहे कहँ गुरु शिष्य कहावा । कर्म अंक काहे फल पावा ॥
को बूझे अरु कवन बुझावै । कवन गुरुको शिष्य कहावै ॥

साखी—यह संशय गुरु मेटहु, बिनती सुनो हमार ।

बलिहारी तुव नामकी, क्षणमें लीन्ह उबार ॥

साहिब कबीर वचन चौपाई ।

तब मद्गरु बोले इक बानी । अचरज बात लेहु पहिचानी ॥
कर्म रेख तुम पूछेउ आई । सो सब कथा तुम्हें समझाई ॥
मात पिता मिल कर्म कमावा । ताही कर्म देह बनि आवा ॥
ब्रह्मलोक सों जव जिव आवा । कर्म रहित निर्मल पद पावा ॥
जलनिधि वारी मेघ लै आई । बूंद बून्द निर्मल बर्पाई ॥
भूमि परी डाबर पहिचानी । इमि जीवहि माया लपटानी ॥
पवन लगै निर्मलता होई । माया मलिन दूर सब खोई ॥
जलकहँ पवन जीव कहँ ज्ञाना । ज्ञान भएते कर्म नसाना ॥
कर्मनसे निर्मल पद पावा । ज्योंका त्यों तब आप कहावा ॥
आप चीन्ह भव जलतें न्यारा । तन छूटे पहुँचै दरबारा ॥
जब जन्मा तब कर्मका लेखा । तन छूटा तब आंखन देखा ॥
जन्म मरनतें थिर नहिं कीन्हा । ऐसी विधि है कर्मको चीन्हा ॥
जाहि समय जैसी बनि आई । ताहि समय तैसा है भाई ॥
तिहितें कर्म काल ठहराना । सब शास्त्रिनमिल कीन्ह बखाना ॥
जीव रूप ताहीसौ जानी । आपको आप नहीं पहिचानी ॥
तातें ज्ञान सुनायउ आई । जीव बुद्धि जातें मिटजाई ॥
गुरु शिष्य यह कारण आई । कर्म अंक लिखनी मिट जाई ॥
तातें पंथ चलाएउ आई । यह कारण हम ज्ञान सुनाई ॥

एही तैं है सकल पसारा । याहीतैं है सब व्यवहारा ॥
 आतम राम चीन्ह जब पावा । सकल पसारा मेंट बहावा ॥
 आतम परमातम मिल जाई । जैसे सरिता सिन्धु समाई ॥
 जब लग यह चीन्हें नहिं आतम । तबलग नहिं मिलि है परमातम ॥
 शब्द बिना आतम दृग हीना । सद्गुरु संघ यही कहि दीना ॥
 शब्द नेत्र जबही लख पावा । सद्गुरु मिलनिज घरहि सिधावा ॥
 ऐसी मति जाही घट होई । हंस हिरम्भर कहिये सोई ॥
 तिनकहैं जानहु हमहिं स्वभाऊ । हमहुं नहीं कछु ताहिं दुराऊ ॥
 धर्मदास यह बूझहु ज्ञाना । जातैं हंस होय निर्वाणा ॥
 जा कहैं आतम ज्ञान प्रकाशा । वही कबीर वही धर्मदासा ॥
 आतमराम देख जिन पाई । आप आप सब ठांव समाई ॥
 जहैं देखा तहैं आप समाना । ब्रह्म छोड दूसर नहिं आना ॥
 सोहं सोहं सत्य कबीरा । शब्द मंत्र है प्रगट शरीरा ॥
 यहां ग्रंथ में मंत्र सुनावा । चारहि वेदका मूल बतावा ॥
 पटै शास्त्र मिल करहिं विचारा । प्रगट ब्रह्म यह ज्ञान विचारा ॥

साखी-ऐसा ज्ञान जब ऊपजै, सुनहू हो धर्मदास ।

परकट ब्रह्म स्वरूप है, एक नाम विश्वास ॥

चौपाई ।

यहै ग्रंथ सब सुनै सुनावै । निश्चय प्रेम भक्ति को पावै ॥
 जो ज्ञानी है बूझै ज्ञाना । निश्चय है है ब्रह्म समाना ॥
 चार पदार्थ को फल होई । निश्चय जानहु यह मत सोई ॥
 ऐसो ज्ञान अखंडित भारी । अमरमूल में कहेउँ बिचारी ॥

साखी-अमर मूल यह ग्रंथ है, सकल ज्ञान भंडार ।

सुनत अमर पद पावहीं, कहैं कबीर विचार ॥

धर्मदास वचन-चौपाई ।

धर्मन हिय में अतिही हर्षैउ । गद्गद गिरा नयन जल बर्षैउ ॥
 सतगुरु चरण गहे हियमाहीं । भातु उदय पंकज विकसाहीं ॥
 मोह निशा व्याकुल अति भारी । तामहँ सोवत नाहिं सम्हारी ॥
 गुरु दयाल मोहिं लीन्ह जगार्ई । आवागमन रहित घर पाई ॥
 अब सन्देह रहा कछु नाहीं । शब्द तुम्हार बसा हियमाहीं ॥
 स्तुति कहा तुम्हारी कीजे । अमृत कथा श्रवण भर पीजे ॥

छन्द-तुम आदिब्रह्म अपार सतगुरु, जीवकारण आयऊ ।

काट फन्दा सकल यमके, अमरलोक पठायऊ ॥

भवसिंधु कठिन कराल भारी, पार काहू ना लयो ।

तुम कृपा गोपद जान सोई, पार धर्मनि कर दयो ॥

सोरठा-दीन्हों मोहि लखाय, परमात्म आत्म सकल ।

अमर मूल समुझाय, अमर वस्तु गुरु दीन्हैऊ ॥

इति श्रीग्रन्थ अमरमूल धर्मदास सम्बोधन विज्ञात मतवर्णन ।

दशम विश्राम सम्पूर्ण ।

इति अमरमूल ग्रन्थ समाप्त ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास, | गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीविष्णुशेखर" | अध्यक्ष-"लक्ष्मीविष्णुशेखर"

स्टीम-प्रेस, बम्बई.

प्रेस, कल्याण-बम्बई.

“श्रीवेङ्कटेश्वर” (स्टीम्) यन्त्रालयकी
परमोपयोगी स्वच्छ, शुद्ध, और
सस्ती पुस्तकें ।

यह विषय आज ४० । ५० वर्षसे अधिक हुआ ; भारतवर्षमें प्रसिद्ध है, कि इस छापाखानेकी छपी हुई पुस्तकें सर्वोत्तम और सुन्दर प्रतीत तथा प्रमाणित हुई हैं । सो, इस यन्त्रालयमें प्रत्येक विषयकी पुस्तकें जैसे—वैदिक, वेदान्त, पुराण, धर्मशास्त्र, न्याय, मीमांसा, छन्द, ज्योतिष, साम्प्रदायिक, काव्य, अलंकार, चम्पू, नाटक, कोष, वैद्यक तथा स्तोत्रादि संस्कृत और हिन्दीभाषाके प्रत्येक अवसर पर विक्रीके लिये तैयार रहती हैं । शुद्धता, स्वच्छता तथा कागजकी उत्तमता और जिल्दकी बँधाई देशभरमें विख्यात है । इतनी उत्तमता होनेपर भी दाम बहुत ही सस्त रखे गये हैं और कमीशन भी पृथक् काट दिया जाता है । ऐसी सरलता पाठकोंको मिलनी असंभव है । संस्कृत तथा हिन्दीके रासिकोंको अवश्य अपनी अपनी आवश्यकतानुसार पुस्तकोंके मँगानेमें झुटि न करनी चाहिये । ऐसा उत्तम, सस्ता और शुद्ध माल दूसरी जगह मिलना असम्भव है, —) भेजकर ‘सूचीपत्र’ मँगा देखो ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास,

‘श्रीवेङ्कटेश्वर’ (स्टीम्) यन्त्रालयाध्यक्ष-मुम्बई.

